BED II- PE 4

अधिगम एवं शिक्षण

Learning and Teaching

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-70-1
BED II- PE 4 (BAR CODE)

BED II- PE 4

अधिगम एवं शिक्षण

Learning and Teaching

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर मुहम्मद मियाँ** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया व पूर्व कुलपति, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद □**प्रोफेसर एन० एन० पाण्डेय** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली □**प्रोफेसर के० बी० बुधोरी** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, एच० एन० बी० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड □**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर सी० बी० शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा □**प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय व सामाजिक विज्ञान संकाय, अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल □**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

दिशाबोध: प्रोफेसर जे० के० जोशी, पूर्व निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कार्यक्रम समन्वयक:	कार्यक्रम सह-समन्वयक:	पाठ्यक्रम समन्वयक:	पाठ्यक्रम सह समन्वयक:
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रधान सम्पादक	उप सम्पादक
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

विषयवस्तु सम्पादक	भाषा सम्पादक	प्रारूप सम्पादक	प्रूफ़ संशोधक
सुश्री ममता कुमारी सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

सामग्री निर्माण

प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**प्रोफेसर आर० सी० मिश्र** निदेशक, एम० पी० डी० डी०, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

© उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, 2017

ISBN-13-978-93-85740-70-1

प्रथम संस्करण: 2017 (पाठ्यक्रम का नाम: अधिगम एवं शिक्षण, पाठ्यक्रम कोड- BED II- PE 4)

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश को ज्ञान के किसी भी माध्यम में प्रयोग करने से पूर्व उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। इकाई लेखन से संबंधित किसी भी विवाद के लिए पूर्णरूपेण लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निपटारा उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल में होगा।

निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, एम० पी० डी० डी० के माध्यम से उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए मुद्रित व प्रकाशित।

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय; **मुद्रक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

कार्यक्रम का नाम: बी० एड०, कार्यक्रम कोड: BED- 17 पाठ्यक्रम का नाम: अधिगम एवं शिक्षण, पाठ्यक्रम कोड- BED II- PE 4		
इकाई लेखक	**खण्ड संख्या**	**इकाई संख्या**
डॉ० नृपेन्द्र वीर सिंह सहायक प्रोफेसर सह सहायक निदेशक, शिक्षा पीठ, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार	**1**	**1** व **2**
	2	**1**
डॉ० गीता राय प्राचार्य, माया कॉलेज ऑफ एज्यूकेशन, माया ग्रुप ऑफ कॉलेजेज, देहरादून, उत्तराखण्ड	**1**	**3** व **4**
	2	**3**
	4	**4**
डॉ० विवेक नाथ त्रिपाठी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश	**2**	**2**
डॉ० सुभाष मिश्र सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम	**3**	**1**
श्री जैन बहादुर प्रौढ़ सतत शिक्षा व विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	**3**	**2** व **3**
सुश्री रूचि गर्ग सहायक प्रोफेसर, प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, माता सुंदरी कॉलेज फॉर विमेन, नई दिल्ली	**4**	**1**
डॉ० प्रदीप सिंह दहल सहायक प्रोफेसर, आई० सी० डी० ई० ओ० एल०, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश	**4**	**2** व **3**

BED II- PE 4
अधिगम एवं शिक्षण
Learning and Teaching

खण्ड 1		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	अधिगम की विमाएं	2-25
2	अधिगम एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में, पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ, ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ	26-45
3	अधिगम सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में	46-59
4	कक्षा अध्ययन के निहितार्थ व्यवहारवादी सिद्धान्तों का तार्किक उपयोग	60-79

खण्ड 2		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	अधिगमकर्ता के रूप में प्रगतिशील या वृद्धिमान एवं विकासशील मानव वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पक्ष- शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा नैतिक	81-107
2	अधिगमकर्ता एवं अधिगम : अधिगम के विभिन्न स्तरों पर जिज्ञासा, रुचि, सक्रिय-सहभागिता एवं परिपृच्छा (जाँच-पड़ताल) के महत्त्व की परिचर्चा	108-130
3	अधिगमर्ता ज्ञान के निर्माता के रूप में	131-144
4	इकाई: चार	-

खण्ड 3		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	अधिगम को केवल विद्यालय तक सीमित रखने के नुकसान और अधिगम को केवल विद्यालय की जिम्मेदारी ठरहाने के दुष्प्रभाव	146-158
2	विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने की अवधारणा	159-172
3	विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने की अवधारणा में सम्बन्ध	173-183

खण्ड 4		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	शिक्षण: एक जटिल गतिविधि	185-195
2	शिक्षण का मूल्यों पर प्रभाव, शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच निजी सम्बन्ध	196-211
3	शिक्षार्थियों के आपस में सम्बन्ध,स्वायत्तता,आत्मसम्मान,स्वतंत्रता: शिक्षार्थियों द्वारा स्वयं अनुभव	212-227
4	शिक्षण एक व्यवसाय	228-253

खण्ड 1

Block 1

इकाई 1- अधिगम की विमाएं

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अधिगम के आयाम या विमाएं
  1.3.1 ज्ञान की सम्प्राप्ति या प्राप्ति
1.4 कौशलों का अर्जन या अभिग्रहण
  1.4.1 संज्ञानात्मक
  1.4.2 साहचर्य या सहचारी
  1.4.3 स्वायत्त
1.5 मूल्यों की शिक्षा या उपदेश
  1.5.1 मौजूदा पाठ्यक्रम में शामिल मूल्यों के माध्यम से
  1.5.2 सह पाठ्यचारी क्रियाओं के माध्यम से मूल्य शिक्षा या उपदेश
1.6 स्वीकारना -अस्वीकारना, रचना या निर्माण, विश्वासों की धारणा या पकड़
  1.6.1 विश्वास को स्वीकारना-अस्वीकारना
  1.6.2 विश्वास का धारणा एवं बनाना या रचना होना
1.7 अभिवृति या दृष्टीकोण परिमार्जन या सुधार, परिवर्तन या बदलाव, धारण या युक्त रहना
  1.7.1 अभिवृति का निर्माण, धारण रहना और परिवर्तन
  1.7.2 विद्यार्थियों में कक्षा के वातावरण के प्रति सकरात्मक अभिवृति के विकास में सहायता
1.8 आदतों का संवर्धन या उन्नयन
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अधिगम या सीखना शिक्षा के सभी स्वरूपों में में केन्द्र बिन्दु माना जाता है। शिक्षा का स्वरुप चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक या निरौपचारिक तीनों में ही अधिगम केन्द्रीय रहता है। अधिगम की प्रक्रिया सभी जीवों में होती है किन्तु उनकी विशिष्टताएं अलग-अलग होती है और यहाँ इस इकाई का सम्बन्ध केवल मानवीय अधिगम से है। अत: यहाँ पर केवल मानवीय अधिगम की चर्चा की जा रही है। अधिगम को मानवीय संदर्भ में एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है। यह प्रक्रिया मानव शिशु के इस यथार्थ जगत में जन्म से ही प्रारंभ नहीं मानी जाती है अपितु गर्भावस्था में ही इस प्रक्रिया का प्रारंभ हो जाता है। इस तथ्य का प्रमाण न केवल पौराणिक ग्रंथों में मिलता है अपितु विभिन्न वैज्ञानिक अनुसाधनों में भी इसको सत्यापित किया गया है। मानव अपने प्रारंभिक विकास क्रम में पराश्रित या असहाय जीव के रूप अधिगम करता है किन्तु धीरे-धीरे वह आत्मनिर्भर, स्वतन्त्र एवं आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में अधिगम करता है।

अधिगम शिक्षण प्रक्रिया का केन्द्रीय बिन्दु है। अधिगम और अधिगमकर्ता को ही केन्द्र में रख कर सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रियाओं का संचालन किया जाता है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि अधिगम क्या है? सामान्य अर्थों में अधिगम को व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में स्वीकार किया जाता है। अब यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि व्यवहार में परिवर्तन और अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन से क्या आशय है? इन दोनों पर क्रमबद्ध रूप से विचार करते है। सबसे पहले व्यवहार में परिवर्तन पर। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। इनका मानना है कि सभी प्रकार के व्यवहार परिवर्तन अधिगम की परिधि में नहीं आते है। मनोवैज्ञानिकों ने केवल अभ्यास, अनुभूति, प्रशिक्षण, शिक्षण, अनुभव आदि के फलस्वरूप व्यवहार हुए परिवर्तनों को ही अधिगम माना है। इनका मानना है कि व्यवहार में परिवर्तन कई कारणों से हो सकता है किन्तु इनको अधिगम नहीं माना जा सकता है। जैसे- मानसिक य शारीरिक थकावट, मादक द्रव्यों, बीमारी, औषधि खाने, परिपक्वन, क्रोध, भय आदि के फलस्वरूप व्यवहार में हुए परिवर्तन।

अधिगम के लिए व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन आवश्यक माना गया है। अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन व्यवहार में होने वाले स्थायी व अस्थायी परिवर्तनों के मध्य की स्थिति माना जाता है। अपेक्षाकृत स्थायी व्यवहार परिवर्तनों से आशय ऐसे धारण योग्य व्यवहार परिवर्तनों (Retainable Behavioral Change) से है जोकि किसी समय विशेष तक स्थायी प्रकृति का होता है। समय विशेष की कोई निश्चित सीमा नहीं निर्धारित की गई है। यह कुछ दिनों या कुछ महीनों या कुछ वर्षों तक भी हो सकती है। कभी-कभी व्यवहार में अभिप्रेरणात्मक अवस्थाओं के कारण भी परिवर्तन होते है किन्तु इन परिवर्तनों की प्रकृति क्षणिक होती है। **हाउस्टन (Houstan)** ने इस संदर्भ में कहा है कि "व्यवहार में अभिप्रेरणात्मक स्थिति में उतार-चढ़ाव होने से उत्पन्न अस्थायी परिवर्तन अधिगम के श्रेणी में नहीं आते है।"
यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि व्यवहार परिवर्तन से क्या आशय है ? व्यवहार शब्द एक अत्यंत व्यापक संप्रत्यय है। इस संदर्भ में वुडवर्थ जी ने कहा है कि " जीवन की किसी भी अभिव्यक्ति को क्रिया कहा

जाता है और व्यवहार ऐसी सभी क्रियाओं का ही एक समन्वित नाम है।" इसी प्रकार जेम्स ड्रेवर ने भी अपना मत व्यक्त किया है कि "जीवन की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया ही व्यवहार है।" सामन्य अर्थ मे यह कहा जा सकता है कि मानव अपने दैनिक क्रिया-कलापों मे जो भी प्रतिक्रियाएं करता है वे ही उसका व्यवहार है। व्यवहार को तीन पक्षों में संदर्भित करते हुए अध्ययन किया जाता है। ये पक्ष है-ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष। मानव व्यवहार के इन पक्षों में जब कोई परिवर्तन किसी कारण से होता है तो उसे व्यवहार परिवर्तन को अधिगम माना जाता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

1. अधिगम को परिभाषित कर सकेंगे।
2. अधिगम के आयामों को परिभाषित एवं व्याख्या कर सकेंगे।
3. अधिगम के आयामों के महत्व को स्पस्ट कर सकेंगे।
4. ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया एवं ज्ञान के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेगें।
5. कौशल एवं इसके अर्जन की प्रक्रिया की विवेचना कर सकेंगे।
6. मूल्यों की शिक्षा के महत्व और उनके विकास के माध्यमों की चर्चा कर सकेंगे।
7. विश्वास को परिभाषित करते हुए उसकी विवेचना कर सकेंगे।
8. अभिवृति को स्पस्ट करते हुए उसके महत्व की चर्चा कर संकेंगे।
9. आदत और उसके महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 अधिगम के आयाम या विमाएं

अधिगम के आयाम अनुदेशनात्मक योजना के लिए एक अधिगम केन्द्रित रुपरेखा या संरचना है जोकि संज्ञान और अधिगम क्षेत्र के नवीनतम शोध को व्यवहारिक कक्षागत कार्यनीतियों में परिवर्तित करते है। ऐसा माना जाता है कि यह रूप-रेखा कम से कम तीन मुख्य प्रयोजनों को स्वयं में निहित रखती है। पहला है कि अनुसंधान आधारित शिक्षण कार्यनीतियों को आयोजित, व्याख्यायित एवं विकसित करने के लिए एक रूप-रेखा प्रदान करता है जोकि विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के चिंतन या विचार में भागीदार अर्थपूर्ण अधिगम में व्यस्त रखें। दूसरा है कि यह विभिन्न तरीकों से एकीकृत अनुदेशानात्मक प्रतिमानों के माध्यम से यह प्रयास करती है कि अनुदेशानात्मक प्रतिमान कैसे सम्बंधित है और कहाँ ये परस्पर व्यापत है, का प्रदर्शित करती है। तीसरा है कि यह पाठ्यक्रम और अनुदेशन की योज़ना एवं पहुँच के लिए एक प्रक्रिया प्रदान करती है जोकि अनेकों शोधों के आधार पर शिक्षण और अधिगम के लिए प्रभावी हो।

अधिगम के आयाम को एक ऐसी विधा के रूप मे स्वीकार किया जाता है जोकि नवीनतम शोधों और सिद्धांतों पर आधारित एक व्यवहारिक रूप-रेखा या संरचना है जो किसी भी विषय क्षेत्र के शिक्षण और अधिगम की गुणवत्ता में उत्कृष्टता लाता है। अधिगम आयाम प्रतिमान या रूप-रेखा को पांच मुख्य अवधारणाओं पर आधारित माना जाता है जो निम्न है-

- अनुदेशन में निश्चित एवं सर्वोत्तम रूप से यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि हम क्या जानते है और अधिगम कैसे पूर्ण होता है।
- अधिगम को एक जटिल तंत्र की सवंदात्मक प्रक्रियाएं से निहित माना जाता है जो स्वयं में विभिन्न प्रकार के चिंतन को समाहित रखता है और ये चिंतन के विभिन्न प्रकार ही अधिगम के आयामों को प्रदर्शित करते है।
- पाठ्यक्रम में सुस्पस्ट रूप से अधिगम में सुधार या परिमार्जन करने वाले शिक्षण के विभिन्न नजरिए, प्रत्यक्षण, मानसिक आदतें, कौशल, विश्वास आदि समाहित होना चाहिए।
- एक व्यापक उपागम के रूप में अनुदेशन में कम से कम दो भिन्न प्रकार के अनुदेशन समाहित होने चाहिए- एक जोकि मुख्यत: शिक्षक निर्देशित हो और दूसरा जो कि मुख्य रूप से शिक्षार्थी निर्देशित हो।
- आंकलन (assessment) शिक्षार्थी के सूचना या ज्ञान के प्रत्यास्मरण की अपेक्षा ज्ञान के अनुप्रयोग एवं जटिल तर्क-वितर्क प्रक्रिया पर केन्द्रित होना चाहिए।

अधिगम के आयाम एक व्यापक प्रतिमान है जो अनुसंधानकर्ताओं एवं विचारकों द्वारा अधिगम के विषय को समझने तथा अधिगम की प्रक्रिया को परिभाषित करने में अनुप्रयुक्त किया जाता है। अधिगम के आयाम कुछ निश्चित या विभिन प्रकार की चिंतन प्रक्रियाओं के व्यक्त आधार है जो प्रभावी एवं सफल शिक्षण हेतु आवश्यक माने जाते है। अधिगम आयाम की रूप-रेखा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के लिए निम्न परिप्रेक्ष्य में सहायक होती है-

- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अधिगम को केन्द्रीय बनाए रखने में।
- अधिगम प्रक्रिया का अध्ययन करने में। और
- पाठ्यक्रम, अनुदेशन और आंकलन की योजना बनाने में जोकि सुस्पस्ट एवं सुनिश्चित अधिगम आयाम के आधार पर निर्धारित विषयवस्तु तथा क्रियाओं व प्रक्रियाओं समाहित करने में सहायक होता है।

अधिगम के आयामों को कितने पक्षों में विभाजित किया जाए इसकों लेकर विद्वानों में मतभेद है। इसका सबसे पहला प्रतिमान डॉ. राबर्ट मर्जानो (Dr. Robert Marzano)ने विकसित किया था। यह एक कक्षा प्रतिमान जो इन्होनें अपने तीस वर्षों तक शिक्षा के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों के आधार पर विकसित

किया था।इनके इस कार्य का मुख्य ध्येय शिक्षक और शिक्षार्थी के लिए अधिगम प्रक्रिया के अंदर निहित अनुदेशनात्मक साधनों का सामान्यीकरण करना है। इनके अधिगम आयाम निम्न थे-

- अभिवृति तथा अनुभूति या प्रत्यक्षण (Attitude and Perceptions)
- अर्जन एवं एकीकृत ज्ञान (Acquire and Integrated Knowledge)
- विस्तृत एवं परिष्कृत ज्ञान (Extend and Refine Knowledge)
- ज्ञान का अर्थपूर्ण उपयोग (Use Knowledge Meaningfully)
- मन की आदतें (Habits of Mind)।

इसी प्रकार का एक वर्गीकरण समसामयिक अधिगम सिद्धांत में क्नुद इल्लेरिस (Kund Illeris) के द्वारा दिया गया है। इसमें अधिगम आयामों को तीन पक्षों में वर्गीकृत कर अधिगम प्रक्रिया को स्पस्ट करने का प्रयास किया गया है। ये अधिगम आयाम निम्न है-

- संज्ञानात्मक (Cognitive)
- भावात्मक (Emotional)
- सामाजिक (Social)

इसी प्रकार अन्य अधिगम आयामों का वर्गीकरण भी विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए है जोकि ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक अधिगम अनुक्षेत्रों से सम्बंधित है। इसी प्रकार के एक वर्गीकरण के माध्यम से अधिगम आयामों या विमाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है जो न केवल शिक्षार्थियों अधिगम के लिए प्रभावी है अपितु शिक्षकों के शिक्षण को प्रभावशाली बनाने में अत्यंत सहायक है। यह वर्गीकरण निम्न है-

1. ज्ञान की सम्प्राप्ति या प्राप्ति (Attainment of knowledge)
2. कौशलों का अर्जन या अभिग्रहण (Acquisition of skills)
3. मूल्यों की शिक्षा या उपदेश (Inculcation of values)
4. स्वीकारना –अस्वीकारना, रचना या निर्माण, विश्वासों की धारणा या पकड़ (Accepting vs. rejecting, making, holding of beliefs)
5. अभिवृति या दृष्टीकोण परिमार्जन या सुधार, परिवर्तन या बदलाव, धारण या युक्त रहना(Possessing, changing, modifying attitudes)
6. आदत का संवर्धन या उन्नयन (Promotion of habits)

1.3.1 ज्ञान की सम्प्राप्ति या प्राप्ति (Attainment of knowledge)

अधिगम से विद्यार्थी में होने वाले व्यवहार परिवर्तन के फलस्वरूप विद्यार्थी में निश्चित धारणा या ज्ञान की सम्प्राप्ति होती है जो संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक किसी भी अधिगम अनुक्षेत्र से सम्बंधित हो

सकता है। विद्यार्थी अधिगम मुख्यतः दो तरीकों से करते है। पहला एक निष्क्रिय अधिगमकर्ता के रूप मे और दूसरा एक सक्रिय अधिगमकर्ता के रूप में। एक निष्क्रिय अधिगम में स्मरण और अवबोध पर ही केन्द्रित रहता है जो विद्यार्थी विभिन्न परिस्तिथियों से अधिगमित करता है। जैसे- पुस्तक या लेख पढकर, भाषण या व्याख्यान सुनकर तथा अवलोकन करके। सक्रिय अधिगम में अधिगम क्रिया करने या परीक्षण द्वारा संपन्न होता है। इसमें विद्यार्थी स्वयं क्रिया संपन्न करके या क्रिया में सक्रिय भागीदार रहते हुए या अपनी त्रुटियों में परिमार्जन करते हुए और अपनी आत्म-अभिप्रेरणा , वचनबद्धता तथा योग्यता के आधार पर अधिगम करता है।

विद्यार्थी को ज्ञान सम्प्राप्ति में सहायता करने के लिए इस अधिगम आयाम या विमा का अत्यंत महत्व है। जब विद्यार्थी किसी नई सूचना को अधिगमित करता है तो वो पहले से उस संबंध में जो कुछ भी जानता है, उस संगठन में नई सूचना को संयोजित करते हुए अपनी स्मृति में दीर्घ काल के लिए संचित कर लेता है। विद्यार्थियों को अधिगम कराने से पूर्व शिक्षक को ज्ञान के प्रकारों को जानना आवश्यक है क्योकि इनके ज्ञान के आभाव में ज्ञान की सुस्पस्ट सम्प्राप्ति व उसका एकीकरण कर पाना संभव नहीं है। अधिकांश संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक यह धारणा रखते है कि ज्ञान को दो आधारभूत वर्गों में संगठित किया जा सकता है: वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान तथा प्रक्रियात्मक या क्रिया-विधि सम्बन्धी ज्ञान। इसकों कुछ उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। जैसे-

वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान	**प्रक्रियात्मक ज्ञान**
(Declarative Knowledge)	**(Procedural Knowledge)**
अधिगमकर्ता जानता या समझता है:	अधिगमकर्ता इस योग्य होता है:
प्रजातन्त्र को जानना या समझाना	इसमें कुछ जोड़ एवं कम कर सकना
एक अंश या विशेषता या भाग	एक लेख लिखना
एक सामान्य या तथ्यात्मक सूचना	एक जटिल पाठ ढांचा जैसे कार चलाना
जैसे-नाम, परिभाषा आदि	

प्रक्रियात्मक ज्ञान अधिगम में अपेक्षित रहता है कि अधिगमकर्ता एक प्रक्रिया का कार्य-निष्पादन या एक कौशल के प्रदर्शन जोकि किसी प्रकार की क्रिया में भाग लेते हुए ग्रहण करे। प्रक्रियात्मक ज्ञान में कुछ क्रियाएं प्राथमिक रूप से मानसिक क्षेत्र से और कुछ शारीरिक क्षेत्र से सम्बंधित होती है। प्रक्रियात्मक ज्ञान में अधिगम एक श्रेणीबद्ध सोपानों में होता है पहले कोई एक कार्य, उसके बाद दूसरा, फिर तीसरा.....दसवां आदि। इसी कारण प्रक्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया जटिल मानी जाती है।

वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान में सामान्य या प्रत्ययात्मक प्रकार की सूचना होती है जोकि अधिगमकर्ता को जानना या समझना चाहिएं। जैसे एक संप्रत्यय प्रजातन्त्र ले तो इसमें विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि उसे प्रजातन्त्र का अर्थ, प्रक्रिया, वोट का मतलब, प्रजातन्त्र की सामान्य विशेषताएं आदि की सूचना या

जानकारी का स्मरण करने से है। संक्षेप में सूचक या वर्णनात्मक ज्ञान से आशय ऐसी सूचना या जानकारी से है जो तथ्यों, संप्रत्ययों और सामान्यीकरण के रूप में विषयवस्तु ज्ञान होने से है।

ज्ञान की प्रकृति के बोध का महत्व (The Importance of Understanding the Nature of Knowledge) - विद्यार्थियों की अधिगम में सहायता हेतु केवल अधिगम प्रक्रिया को ही समझना आवश्यक नहीं है अपितु ज्ञान की प्रकृति को भी जानना आवश्यक है। शैक्षिक गतिविधियों या क्रियाओं को रुचिपूर्ण ढंग से नियोजित करने हेतु ज्ञान की पहचान होना चाहिए। शिक्षक को यह समझ होनी चाहिए कि कैसे सूचक या वर्णनात्मक ज्ञान का शिक्षण और आंकलन प्रक्रियात्मक ज्ञान के शिक्षण और आंकलन से अलग होता है। इसी क्रम में आगे कुछ व्याख्याओं और वर्णन के माध्यम से ज्ञान की प्रकृति और अधिगम के आयामों या विमाओं के प्रतिमान को एक संगठित योजना एवं पाठ्यक्रम, अनुदेशन व आंकलन में नियोजित व उपयोग करने हेतु चर्चा की जा रही है।

वर्णनात्मक या सूचक तथा प्रक्रियात्मक ज्ञान में सम्बन्ध(Relationship Between Declarative and Procedural Knowledge) - अधिकांश पाठों या नियत कार्यों में सूचक और प्रक्रियात्मक दोनों ज्ञान का अनुप्रयोग समाहित रहता है। किसी भी पाठ के समापन का निर्णय लेने या समस्या-समाधान करने या प्रायोगिक अन्वेषण की प्रक्रिया के लिए अधिगमकर्ता का निष्पादन निश्चित विशिष्ट सोपानों के अनुरूप होता है जोकि सामान्यत: प्रक्रियात्मक ज्ञान में निहित होता है। किन्तु यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि किसी भी पाठ या कार्य को सम्पादित करने की प्राथमिक शर्त है कि विद्यार्थी को पाठ या प्रकरण से सम्बंधित वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान (जैसे- प्रकरण की जानकारी व बोध) होना चाहिए तभी विद्यार्थी किसी प्रकरण या पाठ का सफलतापूर्वक समापन एवं उपयोगी परिणाम प्राप्त कर सकते है। जैसे- किसी विद्यार्थी या कक्षा को यह प्रकरण दिया जाए कि प्रजातन्त्र की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता स्पस्ट कीजिए? यहाँ पर प्रजातन्त्र से सम्बंधित सामान्य जानकारी एवं अवबोध सूचक या वर्णनात्मक ज्ञान के भाग है और प्रजातन्त्र की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता हेतु प्रभावी सूचनाएं जोड़ना तथा कुछ को हटाते हुए प्रकरण को स्पस्ट करना प्रक्रियात्मक ज्ञान का भाग माना जाएगा। इस प्रकार या कहा जा सकता है कि दोनों ज्ञान एक दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रखते है जहाँ एक के आभाव में दूसरे की प्राप्ति संभव नहीं है फिरभी इन दोनों में अन्तर होता है।

ज्ञान की संरचना एवं व्यापकता के स्तर (Levels of Generality and the Organization of Knowledge)- वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान तथा प्रक्रियात्मक ज्ञान की सामान्य श्रेणियों के न्यूनतम अन्तर के ज्ञान पहचान की प्रक्रिया ही विद्यार्थियों को अधिगम के प्रभावी अवसर प्रदान करती है। यहाँ पर वर्णनात्मक तथा प्रक्रियात्मक के अन्तर का बोध करते हुए उसकी जाँच व संरचना से सम्बंधित पहलूओं पर विचार करेंगे।

वर्णनात्मक ज्ञान (Declarative Knowledge)- वर्णनात्मक ज्ञान की स्वरुप संरचना के अन्दर सूचना के अंशों में विशिष्ट विविध सम्बन्ध निहित माने जाते है। सूचनाओं का संगठन सम्बन्धी स्वरुप प्रारंभ में

विद्यार्थियों में इस रूप प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें सूचनाओं की पृथकता न प्रदर्शित होकर समग्रता परिलक्षित हो। तदोपरांत सूचना के पृथक-पृथक भागों या अंशों का अंतरसम्बंधित संयोजन किया जाता है जोकि सूचना की धारण शक्ति और अनुप्रयोग में लाने की क्षमता को बढाता है। वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान के छ: प्रचलित संगठन सम्बंधित स्वरूपों की चर्चा की रही है जो इसकी समझ को बढाने मे सहायक है-

i. **वर्णन या विवरण (Descriptions)**: एक मुख्य विशिष्ट स्तर पर, वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान विशिष्ट व्यक्तियों, स्थानों, विचारों, वस्तुओं व घटनाओं के वर्णन या विवरण के रूप में संरचित होता है। इसमें सूचना साधारण पारिभाषिक पदों की संरचना के रूप में या बुनियादी तथ्यों के संग्रह के रूप मे संग्रहित होते है जोकि किसी विषय के प्रारंभिक विषयवस्तु के विशिष्ट अंश है।

(a) पारिभाषिक पद: इसमें किसी पारिभाषिक पद से तात्पर्य किसी शब्द के अर्थ की समझ एक साधारण स्तर पर होने से है। इसमें किसी शब्द या पद को सुस्पस्ट रूप से वर्णित करने हेतु उपयुक्त सूचना निहित रहती है।

(b) तथ्य: तथ्यों में बहुत विशिष्ट व्यक्तियों, स्थानों, जीवित एवं अजीवित जीवों तथा घटनाओं आदि का विवरण संरचित रहता है। जैसे एक व्यक्ति या घटना की विशेषताएं आदि

समय अनुक्रमों: महत्वपूर्ण घटनाएं जोकि किन्हीं दो विशिष्ट बिन्दुओं के समय में व्यवस्थित रहकर एक समय अनुक्रम को बनाती है। जैसे किसी कहानी की घटनाएं अपने अन्दर एक समय अनुक्रम को व्यवस्थित रखती है।

ii. **प्रक्रिया या कारण-प्रभाव संबंध:** इसमें सूचनाएं एक कारण-सम्बन्धी तंत्र में व्यवस्थित रहती है। इसमें सूचनाएं एक विशिष्ट परिणाम की ओर एक श्रेणीबद्ध सोपानों में संगठित रहती है। जैसे हड़प्पा सभ्यता के पतन प्रकरण में सूचनाओं का कारण सम्बन्धी तंत्र देखने को मिल सकता है।

iii. **वृतान्त या प्रसंग(Episodes):** वृतान्त या प्रसंग एक विशिष्ट घटनाएं है जिसमें होता है (1) एक परिस्थिति (एक खास समय एवं स्थान की), (2) विशिष्ट प्रतिभागी (3) एक विशेष समय अवधि (4) घटनाओं के विशिष्ट अनुक्रम तथा (5) एक विशेष कारण एवं प्रभाव।

iv. **सामान्यीकरण / सिद्धांत (Generalizations / Principals):** सामान्यीकरण/ सिद्धांत एक नियम या कथन के रूप में अभिव्यक्त होते है और इनकी पुष्टिकरण हेतु अपेक्षित नियम या उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है। सिद्धांत एक सामान्यीकरण है जिसमें नियमों या सम्बन्धों का संयोजन संग्रह प्रकार का होता है जोकि अनेकों विशिष्ट परिस्थितियों में अनुप्रयोग में लाया जा सकता है।

v. **संप्रत्यय (Concepts):** संप्रत्यय ज्ञान के संदर्भ में चिंतन का एक साधारण ढंग है, जिसमें आम-तौर पर एक शब्द या वाक्यांश से सम्पूर्ण वर्ग या प्रवर्ग के व्यक्तियों, स्थानों, घटनाओं आदि को अंकित किया जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि जब कई वस्तुओं के गुणों को एक सामान्य नियम द्वारा गुणित कर दिया जाता है तब इससे बनने वाले मानसिक प्रारूप को संप्रत्यय की संज्ञा दी जाती है। जैसे जंगली या पालतू पशु।

प्रक्रियात्मक ज्ञान (Procedural Knowledge)- प्रक्रियात्मक ज्ञान को किसी पाठ के निष्पादन में अभ्यासात्मक ज्ञान के रूप में जाना जाता है। प्रक्रियात्मक ज्ञान में अधिक ज्ञानेन्द्रियां, गामक योग्यताएं व अनुभव, समस्या समाधान का अभ्यास, एक विशिष्ट परिस्थिति की सीमओं का अवबोध आदि शामिल रहता है। जैसे एक कार के चलाने के लिए केवल सैद्धांतिक ज्ञान का होना ही पर्याप्त नहीं अपितु उसके व्यावहारिक या प्रक्रियात्मक ज्ञान का होना आवश्यक है क्योकि कार चलाने हेतु विभिन्न क्रियाओं को निश्चित क्रम में सम्पादित करने की कुशलता व प्रवीणता होनी चाहिए। प्रक्रियात्मक ज्ञान में कई कौशल और क्रियाओं का निष्पादन एक साथ किया जाता है। इस ज्ञान प्रक्रम में विद्यार्थी की शारीरिक व मानसिक कुशलताओं एवं प्रक्रियाओं के द्वारा किसी समस्या का समाधान करने या निष्पादित करने की योग्यता विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

1.4 कौशलों का अर्जन या अभिग्रहण (Acquisition of skills)

एक कौशल विशिष्ट व्यवहारों का वह समुच्चय होता है जिसमें एक विशिष्ट पदों या सोपानों के तंत्र का विद्यार्थी सुनिश्चित क्रम में अनुप्रयोग करते हुए अधिगम करता है। अधिगम की अपेक्षित सफलता कौशल की दक्षता पर निर्भर करती है अर्थात कोई विद्यार्थी जितनी कम त्रुटियों के साथ कौशल का संपादन कर लेता है उसे उस कौशल में उतना ही दक्ष या प्रवीण माना जाता है। कौशलों के अर्जन में तीनों अधिगम अनुक्षेत्रों अर्थात संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक का सम्मिलित प्रभाव रहता है।

जब कोई व्यक्ति या विद्यार्थी किसी नए कौशल का अधिगम करता है तब उस कौशल का विकास अधिगम की तीन अवस्थाओं पर आधारित होता है। ये तीन अवस्थाएं निम्न है-

1. संज्ञानात्मक(Cognitive)
2. साहचर्य या सहचारी(Associative) और
3. स्वायत्त (Autonomous)

कौशल की प्रत्येक अवस्था की अपेक्षित प्रतिपुष्टि, प्रदर्शन एवं अभ्यास की विभिन्न विशेषताओं होती है।

1.4.1 संज्ञानात्मक (Cognitive)

कौशल अर्जन की संज्ञानात्मक अवस्था के अंतर्गत अधिगम किए जाने वाले कौशल की प्रारम्भिक अभिज्ञान एवं अवबोध किया जाता है। इस अवस्था में विद्यार्थी, इस बिन्दु पर केन्द्रित रहता है कि उसे क्या करना है? इस अवस्था में की जाने वाली अधिगम गतिविधियों में विद्यार्थी को अधिक कार्य निष्पादन या अभ्यास की अपेक्षा देखने, विचार करने, विश्लेषण करने, तर्क करने, निर्णय एवं मानसिक चित्रण या प्रारूप बनाने आदि में अधिक केन्द्रित होना चाहिए। इस अवस्था में कौशल अर्जन से सम्बंधित गहन एवं अच्छी समझ के विकास का ध्येय निहित रहता है। इस अवस्था निम्न बिन्दुओं पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए-

- इस अवस्था में सबसे पहले एक कौशल से सम्बंधित अनुभव विद्यार्थी को दिया जाता है।
- विद्यार्थी को कौशल से सम्बंधित आवश्यक जानकारी या अनुदेश दिया जाता है।
- इस अवस्था में पर्याप्त प्रदर्शन आवश्यक है।
- जटिल कौशलों को छोटे-छोटे उप कौशल में विभाजित करके प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- शिक्षक का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना, अनुदेशनों को न्यूनतम प्रदान करना, रचनात्मक प्रतिपुष्टि प्रदान करना एवं प्रदर्शन करना होना चाहिए।

1.4.2 साहचर्य या सहचारी (Associative)

कौशल अर्जन की साहचर्य अवस्था में विद्यार्थी अधिगम कैसे किया जाए के अभ्यास के विचार पर वास्तविक रूप से केन्द्रित रहता है। विद्यार्थी की किसी पाठ या कौशल में निष्पादन की योग्यता को इस अवस्था में अभ्यास द्वारा बढाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि विद्यार्थी किसी कौशल में पूर्ण उत्कृष्ट निष्पादन करने लगे किन्तु यह आवश्यक है कि उसमें कौशल के सम्पादन या प्रदर्शन कैसे किया जाए, की समझ होनी चाहिए। अधिकांश विद्यार्थी इस अवस्था में एक दीर्घ समय अवधि के लिए रुक जाते है और कुछ अगली अवस्था में जाने के लिए अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाते है। इस अवस्था को दीर्घ एवं व्यापक माना जाता है जिसकी मुख्य विशेषता अत्यधिक अभ्यास है। इस अवस्था में निम्न क्रियाएं एवं कार्य निहित माने जाते है-

- इस अवस्था को एक अभ्यास अवस्था के रूप में जाना जाता है।
- कौशल की आवृति में मानसिक एवं पेशीय गति को एक समय में होना चाहिए।
- सम्पूर्ण अवस्था में अवृतियों की संख्या अधिक होने पर त्रुटियों को न्यूनतम होना चाहिए तथा कौशल को परिष्कृत होना चाहिए।
- किसी कौशल में परिष्कार लाने में प्रतिपुष्टि एक अपेक्षित सहायता के रूप में दिया जाना चाहिए तथापि आन्तरिक प्रतिपुष्टि कौशल की प्रगतिशील बनाने में अधिक उपलब्ध रहती है।
- कुछ विद्यार्थी या अधिगमकर्ता इस अवस्था से निकलकर अगली अवस्था में कौशल की जटिलता के कारण कभी पहुँच नहीं पाते है।

1.4.3 स्वायत्त (Autonomous)

स्वायत्त अवस्था में कौशल अर्जन के सभी परिभ्रमण कालों का क्रियान्वयन एक कौशल में स्वत: बिना किसी विराम के और इस चिंतन के इसे कैसे करना है? या अगले क्रम में क्या करना है? आदि के, होने लगता है। यह एक विकसित स्तर का निष्पादन होता है जहाँ कोई विद्यार्थी किसी कौशल का निष्पादन धाराप्रवाह एवं सहज बोध से करने लगता है और जहाँ बाहरी प्रभाव परिणाम को प्रभावित नहीं कर पाता

है। कोई विद्यार्थी किसी कौशल के उद्देश्य को दीर्घ समय में प्राप्त कर इस अवस्था तक पहुँच पाता है जबकि बहुत विद्यार्थी इस अवस्था तक कभी पहुँच नहीं पाते है। विद्यार्थियों के यहाँ तक नहीं पहुँच पाने के कई कारण हो सकते है लेकिन मुख्य रूप से प्रशिक्षण आवश्यकता, कौशल या पाठ की जटिलता और अभिप्रेरणा के आभाव को माना जाता है। इस अवस्था में निम्न क्रियाएं एवं कार्य निहित माने जाते है-

- उप कार्यों का एक अनुक्रम में साथ किसी एक कौशल के निष्पादन में धाराप्रवाहिता एवं निपुणता प्रदान करता है।
- इस अवस्था में विद्यार्थी उच्च संज्ञानात्मक क्रियाओं का साहचर्य कौशल के साथ करने में सक्षम हो जाता है।
- विद्यार्थी इस स्वायत्त अवस्था में प्राय: अभ्यास द्वारा कौशलों में प्रवीणता लाते है और यह परिस्तिथियाँ उन्हें खेंल के समान उद्दीपित करती है।
- किसी कौशल का स्वायत्त अवस्था में प्रशिक्षण सामान्य आशय कौशल में धीरे-धीरे परिमार्जन लाने से है। इसीलिए इसके प्रक्षिक्षण में उच्च स्तर की अभिप्रेरणा की आवश्यकता मानी जाती है।

शिक्षा के परम्परागत प्रतिमानों में अधिगम प्राय: सुनिश्चित विषय क्षेत्रों के विषयवस्तु और इस विषयवस्तु के अंत में आंकलन एवं मूल्यांकन तक ही सीमित था। वर्तमान 21वी शताब्दी में इन प्रतिमानों में आवश्यकता एवं वांछनीयता के संदर्भ में कुछ परिवर्तन आया और परम्परगत विषयों के साथ समसामयिक विषय के प्रसंगों को अंतर्विषयक स्वरुप प्रदान करते हुए समाहित कर लिया गया। आधारभूत विषयों एवं प्रसंगों ने वर्तमान शताब्दी के अधिगम परिदृश्य को बदल दिया है और इनका मुख्य उद्देश्य नागरिक साक्षरता, वैश्विक जागरूकता, आर्थिक साक्षरता, स्वास्थ्य साक्षरता, और पर्यावरणीय साक्षरता है। इसी प्रकार शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यकता अनुरूप परिवर्तन हुए जिसके कारण इसके स्वरुप में भी परिवर्तन आया। इस प्रकरण का संबंध कौशल से है अत: चर्चा भी केवल उसी परिप्रेक्ष्य में की जा रही है। कौशल का महत्व शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के लिए समान है और इसको किस प्रकार अर्जित किया जा सकता है इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। यहाँ पर केवल उन बिन्दुओं को उल्लखित किया जा रहा है जोकि कौशल के अर्जन और प्रदर्शन में शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिए लाभकारी एवं प्रभावी हो सकते है-

- स्पस्ट एवं प्रभावी सम्प्रेषण तथा सहयोगपूर्ण वातावरण
- आलोचनात्मक चिंतन प्रवृति एवं समस्या-समाधान के लिए तत्परता
- सृजनात्मक कार्य-प्रणाली एवं नूतनव्यवहार सीखने की इच्छा
- जीवन और जीविका से सम्बंधित कौशलों को अर्जित करने की अभिप्रेरणा जैसे- नेतृत्व क्षमता एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार, उत्पादक क्षमता एवं दायित्व बोध, सामजिक एवं पार-सांस्कृतिक कौशल आदि।

- सूचना एवं संचार तकनीकी कौशलों में दक्षता जैसे- मीडिया साक्षरता, सूचना साक्षरता, तकनीकी साक्षरता आदि।
- नूतन अधिगम विधियों व प्रविधियों तथा तकनीकियों में कुशलता व दक्षता। जैसे- खेल-आधारित अधिगम, योजना-आधारित अधिगम, समस्या-आधारित अधिगम, डिज़ाइन-बेस्ड अधिगम आदि।
- मूल्यों की शिक्षा या उपदेश (Inculcation of values)

1.5 मूल्यों की शिक्षा या उपदेश (Inculcation of Values)

तनाव, अराजकता, हिंसा व अशांति ने इस 21वी शताब्दी निरंतर शिक्षित हो रही आवाम को दी जाने वाली शिक्षा या तालीम पर निश्चय ही एक गंभीर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। शिक्षा में संज्ञानात्मक विकास को अधिक तवज्जो प्रदान किया जा रहा है किन्तु मानव एवं समाज के लिए सबसे अधिक वांछनीय भावात्मक विकास की उपेक्षा की जा रही है। ऐसे में सामाजिक व सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों, आपसी द्वंद्वों व अन्य विखंडनकारी प्रवृतियों के रूप में व्याप्त प्रमुख चुनौतियों का सामना करने हेतु एक मूल्यपरक शिक्षा अनिवार्य है।

प्रत्येक समाज एवं देश ने विद्यार्थियों के सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट के लिए मूल्यपरक पाठ्यक्रम को नियोजित किया हुआ है। जहाँ प्रत्येक विषय के अधिगम के माध्यम से कुछ अन्तर्निहित मूल्यों का विकास करने का प्रयास किया जाता है। शिक्षा के आधारभूत स्तंभों में से एक शिक्षक का यह कर्त्तव्य माना जाता है कि वह पाठ्य-पुस्तकों में दिए गए 'मूल्यों' का महत्त्व समझे, उन्हें अपने जीवनचर्या व व्यवहार का एक अभिन्न हिस्सा बनाए, फिर विद्यार्थियों के दैनिक व्यवहार तथा जीवन में समाविष्ट करने का प्रयास करे।

शिक्षक शिक्षा, विद्यार्थी और अधिगम प्रक्रिया को किस प्रकार मूल्यपरक बनाया जाए कि प्रत्येक अधिगम के माध्यम से विद्यार्थी में अंतर्भूत मूल्यों का भी विकास किया जा सके तथा विद्यार्थियों के दैनिक व्यवहारों एवं आचरणों को मूल्यों के द्वारा नियंत्रित व निर्देशित किया जा सके। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को माध्यम से किस प्रकार मूल्यों की शिक्षा तथा इनका किया जा सकता है उसकी चर्चा कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर की जा रही है-

1.5.1 मौजूदा पाठ्यक्रम में शामिल मूल्यों के माध्यम से (Through the Incorporate values in Existing Curriculum)

प्रत्येक कक्षा के लिए एक निर्धारित पाठ्यक्रम होता है और पाठ्यक्रम में निश्चित विषयों, पाठ्य-क्रियाओं एवं सह पाठ्यचारी क्रियाओं का विवरण रहता है। प्रत्येक विषय के शिक्षण तथा पाठ्यचारी क्रियाओं एवं

गतिविधियों या क्रिया-कलापों में प्रतिभाग व सहभागिता के माध्यम से विद्यार्थियों में अधिगम के साथ-साथ मूल्यों का विकास किया जा सकता है। इनमें से दो प्रमुख है-

(i) **प्रर्थना सभा :** संभवतः प्रत्येक शिक्षण संस्थान का कार्य प्रारम्भ प्रर्थना के माध्यम से होता है। प्रर्थना स्थल पर शिक्षक एवं विद्यार्थी की उपस्थिति में मातृभाषा में प्रार्थनाओं का आयोजन एक शांत पूर्ण वातावरण में किया जाता है। यहाँ पर प्रर्थना के अतिरिक्त अन्य क्रियाएं जैसे-कहानी वाचन, नैतिक उपदेश, समसामयिक सन्दर्भों में चर्चा आदि की जाती है। इनके माध्यम से विद्यार्थियों में अपेक्षित मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

(ii) **विभिन्न आधारभूत विषयों के शिक्षण द्वारा:** प्रत्येक कक्षा के पाठ्यक्रम में कुछ निश्चित आधारभूत विषय रहते है और प्रत्येक विषय के शिक्षण व विषयवस्तु का अपना महत्व व उपयोगिता होती है। आधारभूत विषयों (सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, साहित्य, भाषा आदि)में शामिल प्रत्येक विषय के शिक्षण के माध्यम से अधिगम के साथ-साथ मूल्यों की भी शिक्षा दी जा सकती है। इन विषयों के शिक्षण-अधिगम द्वारा निम्न मूल्यों का विकास किया जा सकता है जैसे- सहयोग, पारस्परिक सम्मान, ईमानदारी, एकता, अनुशासन, सवेंदनशीलता, सामाजिक उत्तरदायित्व, राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयता, न्याय, स्वतंत्रता, भाईचारा, समानता, सहयोग, सद्भावना, सहिष्णुता आदि ।

15.2 सह पाठ्यचारी क्रियाओं के माध्यम से मूल्य शिक्षा या उपदेश (Value Inculcation Through the Co-Curricular Activities)

शिक्षा का मुख्य प्रयोजन विद्यार्थी का सर्वंगीण विकास है। विभिन्न विषयों के शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों के बौद्धिक व मानसिक विकास के प्रयोजन की प्राप्ति हो जाती है किन्तु व्यक्तित्व के सभी पक्षों का एक समान विकास नहीं पाता है। इसीलिए पाठ्यक्रम में सह पाठ्यचारी क्रियाओं का भी नियोजन किया जाता है जिनके माध्यम से व्यक्तित्व के उन पक्षों का विकास करने का प्रयास किया जाता है जिनका विकास विभिन्न विषयों के शिक्षण मात्र से नहीं किया जा सकता है। वास्तविक रूप में सह पाठ्यचारी क्रियाओं के माध्यम से उचित प्रकार से मूल्यों की शिक्षा या उपदेश दिया जा सकता है। यहाँ पर कुछ प्रमुख सह पाठ्यचारी क्रियाओं तथा उनसे सम्बंधित मूल्यों का वर्णन किया जा रहा है-

सह पाठ्यचारी क्रियाएं	मूल्य
विभिन्न स्थानों के भ्रमण, यात्रा आदि	ज्ञान के लिए खोज प्रवृति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण
खेत, जंगल, जानवरों व पेड़-पौधों आदि से सम्बंधित स्थानों का भ्रमण	प्रकृति के प्रति प्रेम एवं उत्तरदायित्व की भावना, पर्यावरण संरक्षण

विभिन्न वस्तुओं का संग्रहण	संग्रहित सामानों या वस्तुओं के महत्व के मूल्य का, संग्रह
सेमिनार, चर्चा, कार्यशाला	प्रतिभागिता, सम्प्रेषण एवं क्रियात्मक कौशलों का
डायरी लेखन	आत्म-नियंत्रण
विशेष विद्यालीय सभाओं का आयोजन	सहयोग, समय बोध व चेतना, नियमितता एवं ईमानदारी
राष्ट्रीय, अन्तराष्ट्रीय, सांस्कृतिक व धार्मिक दिवसों एवं कार्यक्रमों का आयोजन	राष्ट्रीय चेतना, सामाजिकता, विविधता में एकता के भाव, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्य
कहानियों, प्रार्थनाओं, ध्यान, योग्य आदि	समानता, विश्वास, भाईचारा, न्याय, दया, अहिंसा, शांति, आत्म-अनुशासन, स्व-आत्मसिद्धि
श्रमदान	श्रम बोध, श्रम मूल्य, श्रम की गरिमा
खेल-कूद की प्रतियोगिताओं तथा वार्षिक यात्राओं का आयोजन आदि।	इन्द्रिय नियंत्रण, कठिन परिश्रम, मित्रता

इसके अतिरिक्त अन्य भी सह पाठ्यचारी क्रियाओं या गतिविधियाँ आयोजन किया जा सकता है। इनके माध्यम से मूल्यों का विकास विद्यार्थियों के व्यवहारों में आसानी एवं रुचिपूर्ण ढंग से किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षण या अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप व्यवहार में हुए परिवर्तन को क्या कहते है?
2. ज्ञान को सामान्यत: कितने प्रकारों में विभाजित किया गया और उनके नाम क्या है?
3. अधिगम में आयाम का प्रतिमान सबसे पहले किसने दिया था?
4. कौशल विकास के अधिगम के कितनी अवस्थाएं होती है, नाम लिखिए?
5. कौशल विकास की सर्वोच्च अवस्था कौन सी है?

1.6 स्वीकारना -अस्वीकारना, रचना या निर्माण, विश्वासों की धारणा या पकड़ (Accepting vs. Rejecting, Making, Holding of Beliefs)

सामान्यत: विश्वास किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति आदि के प्रति मानव की मनोस्थिति का अभिव्यक्तिकरण है। विश्वास मानव के व्यक्तित्व का एक स्थायी एवं अभिव्यक्त रूप है जोकि उसके विचारों व क्रिया-कलापों के प्रदर्शन में दिखता है। विश्वास एक मानसिक शक्ति है। इसमें व्यक्ति अनुभाविक सक्ष्यों के आधार पर किसी विषय में तथ्यात्मक निश्चय के साथ कथन या कार्य करता है। एक व्यक्ति जो कुछ जानकारी रखता है उसे वह एक सकरात्मक या नकारात्मक कथन में व्यक्त करता है क्योकि इस पर उसका विश्वास होता है। विश्वास की सत्यता व असत्यता विषय एवं व्यक्ति की ज्ञान की सीमा पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति को ज्ञान केवल अनिवार्य सत्यों का जैसे गणित, विज्ञान, तर्कशास्त्र आदि का ही हो सकता है, शेष सभी विषय विश्वास की सीमा परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं जहाँ प्रत्येक अनुभाविक विषय के प्रमाण उपलब्ध होना संभव नहीं है। ज्ञान को एक सत्य विश्वास भी माना गया है जोकि किसी अटकल या अंदाज़ पर निर्भर न हो।

विश्वास के संदर्भ में दार्शनिको, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों आदि ने अलग दृष्टिकोण से चिंतन किया है। मनोविज्ञान एवं न्यूरोविज्ञान विज्ञान का मानना है कि विश्वास एक सत्य या वास्तविक मानसिक प्रारूप है जोकि व्यक्ति की संचित सूचनाओं पर आधारित होता है। एक सामान्य धारणा के अंतर्गत विश्वास के लिए आधारभूत साक्ष्य उपलब्ध भी हो सकते है और नहीं भी। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक विषय एवं गणित आदि विषय से सम्बंधित विषय सामग्री की सत्यता या प्रमाणन हेतु साक्ष्य मिल सकते है अन्य विषयों से सम्बंधित विषय सामग्री के लिए प्रमाणिक आधारों का मिलना कठिन है। विश्वास प्रक्रिया के लिए तीन विचारों को प्रस्तुत किया जाता है-

- विश्वास प्रक्रिया का गहरा संबंध वैयक्तिक प्रासंगिकता से होता है जोकि व्यक्ति के संज्ञानात्मक तथा भावात्मक पक्षों को जाने बिना नहीं समझा जा सकता है।
- विश्वास प्रक्रिया का सरोकार एक सुसंगत ज्ञान तंत्र से है जिसकी संरचना पदानुक्रमित रूप से संगठित होती है। दैनिक जीवन में विश्वास की विषयवस्तु मौखिक आधार वाक्यों द्वारा प्रबल नहीं होती है अपितु इसका निर्माण विभिन्न वर्ग के ज्ञान एकांशों, संवेदना, भावात्मक स्थिति एवं कार्य योजनाओं के संयोजन से होती है।
- विश्वास प्रक्रिया एक प्रबुद्ध या विवेकी आत्म-संगठन प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुकूलित कार्य निहित रहते है। जैसे- कोई व्यक्ति यह कथन करता है 'मै विश्वास करता हूँ' या मै जानता हूँ। ये दोनों तर्क कथन आत्मनिष्ट प्रकृति के है जो सत्य भी हो सकते है और असत्य भी। इनका प्रमाणन सत्य के द्वारा ही किया जा सकता है। इसीलिए ज्ञान को एक न्याययुक्त सत्य विश्वास माना जाता है।

1.6.1 विश्वास को स्वीकारना-अस्वीकारना (Accepting-Rejecting of Beliefs)

दार्शनिकों के एक वर्ग का मानना है कि तर्क द्वारा किसी विश्वास को स्वीकार किया जाता है जिसके लिए आधार या साक्ष्य उपलब्ध हो तथा उन विश्वासों को भी स्वीकार किया जाता है जिनके लिए साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। दूसरी तरफ कुछ विश्वासों को साक्ष्यों के आभाव में अस्वीकार दिया जाता है। इनका मानना है कि यह सभी साक्ष्यों पर एक सशर्त प्रायिकता है जो सुसंगत तरीके से किसी विश्वास के तकनीकी अर्थ के आधार पर उसको स्वीकारना या अस्वीकारना है। विश्वास को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के निश्चित आधार केवल वस्तुनिष्ठ आधार वाक्यों या ज्ञान या सूचना के द्वारा किया जा सकता है। जहाँ पर विषयवस्तु या सामग्री या ज्ञान के साथ आत्म-निष्ठता के भाव सन्नहित हो जाते है वहाँ उनके स्वीकार व अस्वीकार करने के आधार भी वैयक्तिक हो जाते है।

दर्शन का यह मानना है कि ज्ञाता को किसी ज्ञान में सत्य विश्वास होना इस बात का प्रमाण है कि उसके पास यथेष्ट आधार है जिसके आधार पर वह अपने विश्वास के औचित्य को प्रमाणित कर सकता है। उसका यथेष्ट आधार वास्तविक या धार्मिक या प्रत्यक्ष या संचित या अप्रत्यक्ष या वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित हो सकता है। अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ये सभी आधार या ज्ञान एक समान महत्व नहीं रखते है? यह तथ्य अपने आप में पूर्ण सत्य है इसी कारण सभी मानवों के विश्वास एक समान नहीं होते है यदि ज्ञान की प्रकृति आत्मनिष्ठ होती है।

मानव अपने ज्ञान अर्जन और अनुभव के माध्यम से अपने विश्वासों को परिष्कार या परिमार्जन या स्वीकार-अस्वीकार करता रहता है। ज्ञान और अनुभव के कारण एक मानव जो प्रारंभिक जीवन में जिन विश्वासों पर आस्था रखता है या मानता है उन्हें संभव है कि आगे के जीवन काल में उन विश्वासों को अस्वीकार दे। मानव अपने ज्ञान अर्जन एवं अधिगम के फलस्वरूप अपनी मानसिक दशाओं एवं स्थितियों में परिवर्तन लाता रहता है जिसके कारण विश्वासों के संदर्भ में उसकी धारणाओं में भी परिवर्तन होता रहता है।

1.6.2 विश्वास का धारणा एवं बनाना या रचना होना (Holding and Making a belief)

किसी भी विश्वास को धारण रखना एवं नए विश्वास का बनाना या रचना होना दोनों ही काफी सीमा तक वैयक्तिक होते है। कोई भी व्यक्ति केवल उन्ही विश्वासों को धारण रखता है जिनको वह सत्य मानता है या जिनके प्रति उसकी किसी प्रकार की आस्था होती है। जब कभी विश्वास की सत्यता या आस्था पर कोई प्रश्न चिन्ह उठाता है तभी विश्वास की धारणा में कोई परिवर्तन आने की संभावनाएं जन्म लेती है किन्तु यह आवश्यक नहीं की तत्काल उसके विश्वास में परिवर्तन हो जाए। यह एक दीर्घ प्रक्रिया है।

मानव को एक अधिगमशील प्राणी माना जाता है जो जीवनपर्यंत अधिगम के द्वारा अपने ज्ञान और अनुभव में अभिवृद्धि करता रहता है जिसके फलस्वरूप उसके मानसिक प्रारूपों एवं मनोस्थितियों में परिष्कार, परिमार्जन तथा परिवर्तन होता रहता है। इसका कारण नए-नए अधिगम के फलस्वरूप मानसिक प्रतिमाओं, संचित ज्ञान संरचनाओं एवं अनुभवों में नई सूचनाओं का आत्मीकरण होता है। नई सूचनाओं

की प्रकृति जितनी पूर्व संचित ज्ञान और अनुभव से भिन्न होंगी उतना ही पूर्व विश्वास धारणाओं में परिवर्तन या बदलने के संभावनाएं अधिक हो जाती है। यदि अधिगमित ज्ञान व सूचनाओं की प्रकृति पूर्व विश्वास धारणाओं से बिल्कुल अलग प्रकृति के होते है तब नए विश्वासों के बनने की संभावनाएं अधिक हो जाती है और यह प्रक्रिया अधिगम के समान जीवन पर्यन्त चलती रहती है।

1.7 अभिवृति या दृष्टीकोण परिमार्जन या सुधार, परिवर्तन या बदलाव, धारण या युक्त रहना (Possessing, Changing, Modifying Attitudes)

अभिवृति के वास्तविक अर्थ को स्पस्ट कर पाना संभव नहीं है। जितनी विचारधाराएं और चिंतन है उतने प्रकार से ही इसे व्याख्यायित किया गया है। सामान्य धारणा में अभिवृति को मानव के विश्वासों एवं मनोभावों का अभिव्यक्त रूप माना जाता है। इससे तात्पर्य मानव की उस मनोवृति से है जिसके कारण वह किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, मनोवैज्ञानिक पक्ष, संस्थान आदि के प्रति विशेष प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन करता है। अभिवृतियों का निर्माण अचानक न होकर एक दीर्घ प्रक्रिया के पश्चात होता है। इसके निर्माण में व्यक्ति के द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में अर्जित ज्ञान, विश्वास एवं अनुभव की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। ज्ञान, विश्वास, मनोभाव, अनुभूति और अनुभव का सामान्यीकृत रूप ही अभिवृति होता है।

अभिवृति के तीन मुख्य घटक होते है क्रमशः संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक। संज्ञानात्मक घटक का सम्बन्ध विश्वासों से, भावात्मक घटक में भावनाएं एवं मूल्यांकन शामिल रहता है और व्यवहारात्मक घटक में अभिवृति विषय के प्रति की जाने वाली क्रिया या प्रतिक्रिया निहित रहती है। अभिवृति के दो पक्ष माने जाते है एक सकरात्मक पक्ष और दूसरा नकारात्मक पक्ष। अभिवृति का सकरात्मक पक्ष अधिगम को रुचिप्रद, बोधात्मक एवं ग्रहणशील बनाता है जबकि नकारात्मक पक्ष में विपिरार्थक क्रियाएं होती है।

1.7.1 अभिवृति का निर्माण, धारण रहना और परिवर्तन (Formation, Possessing and Changing of Attitude)

अभिवृति निर्माण के विभिन्न तरीकें है। विद्यार्थी अपने माता-पिता की मॉडलिंग के आधार पर अभिवृतियों का अर्जन करते है। अधिगम के शास्त्रीय अनुबंधन सिद्धांत के आधार पर भी विद्यार्थी आकर्षक व्यक्तियों या वस्तुओं से भी अभिवृतियों का अर्जन करते है। क्रियाप्रसुत अनुबंधन, जोकि माता-पिता एवं शिक्षकों द्वारा पुरस्कार, के माध्यम से भी अभिवृतियों का निर्माण होता है। अबिवृतियों का निर्माण प्रत्यक्ष अनुभवों से भी होता है। अभिवृति निर्माण की प्रक्रिया को नीचे प्रदर्शित चित्र के माध्यम से भली-भांति समझ सकते है-

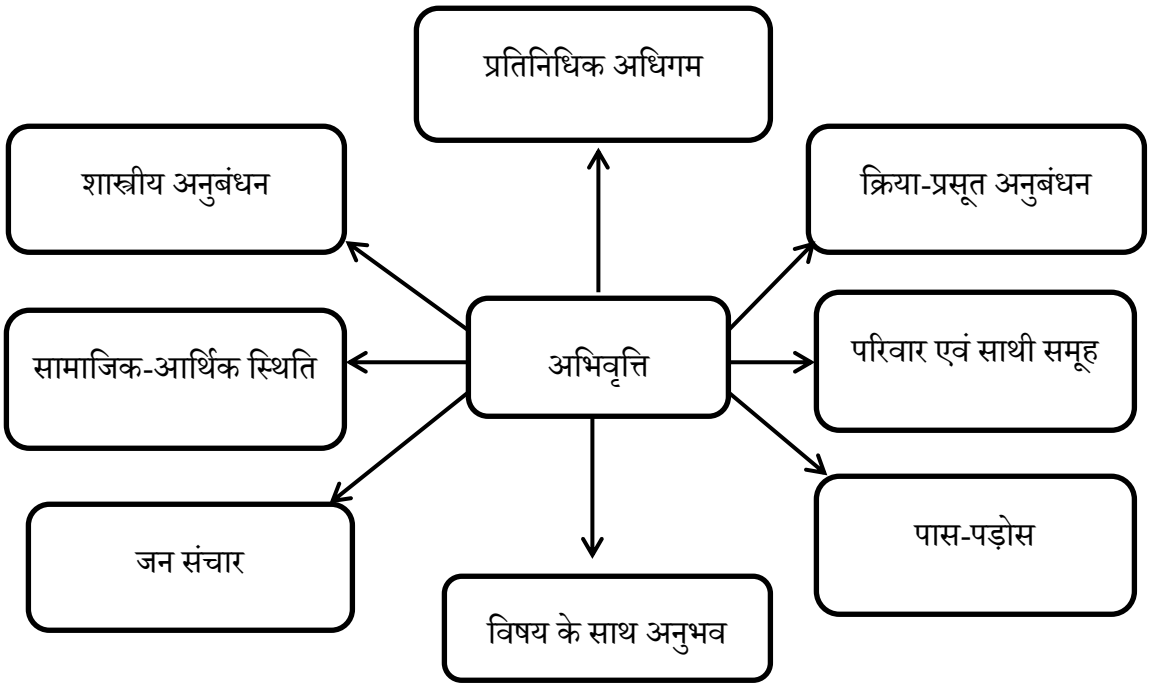

एक सामान्य धारणा में यह स्वीकार किया जाता है कि अभिवृति में परिवर्तन यथाशीघ्र नहीं होता है अर्थात यदि एक बार किसी पक्ष को लेकर कोई अभिवृति बन जाए तो वह काफी लम्बे समय तक बनी रहती है जब तक कि कोई ऐसी घटना न घटित हो जाए या स्पष्टीकरण न प्रदर्शित हो जाए जो विगत ज्ञान, अनुभव, विश्वास और अनुभूति व मनोभाव को पूर्ण परिवर्तित न कर दे। व्यक्ति अपनी अभिवृति को लम्बे समय तक धारण रखता है और उसमें नवीन अधिगम ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर परिमार्जन करता रहता है जब तक उसकी ज्ञान, अनुभव, विश्वास व मनोभाव की संरचना में कोई विकृति न आ जाए। अभिवृति परिवर्तन के कई कारण हो सकते है और इनके स्पष्टता हेतु कई सिद्धांतों का भी प्रतिपादन किया गया है। जैसे- संज्ञानात्मक असंगति सिद्धांत आदि।

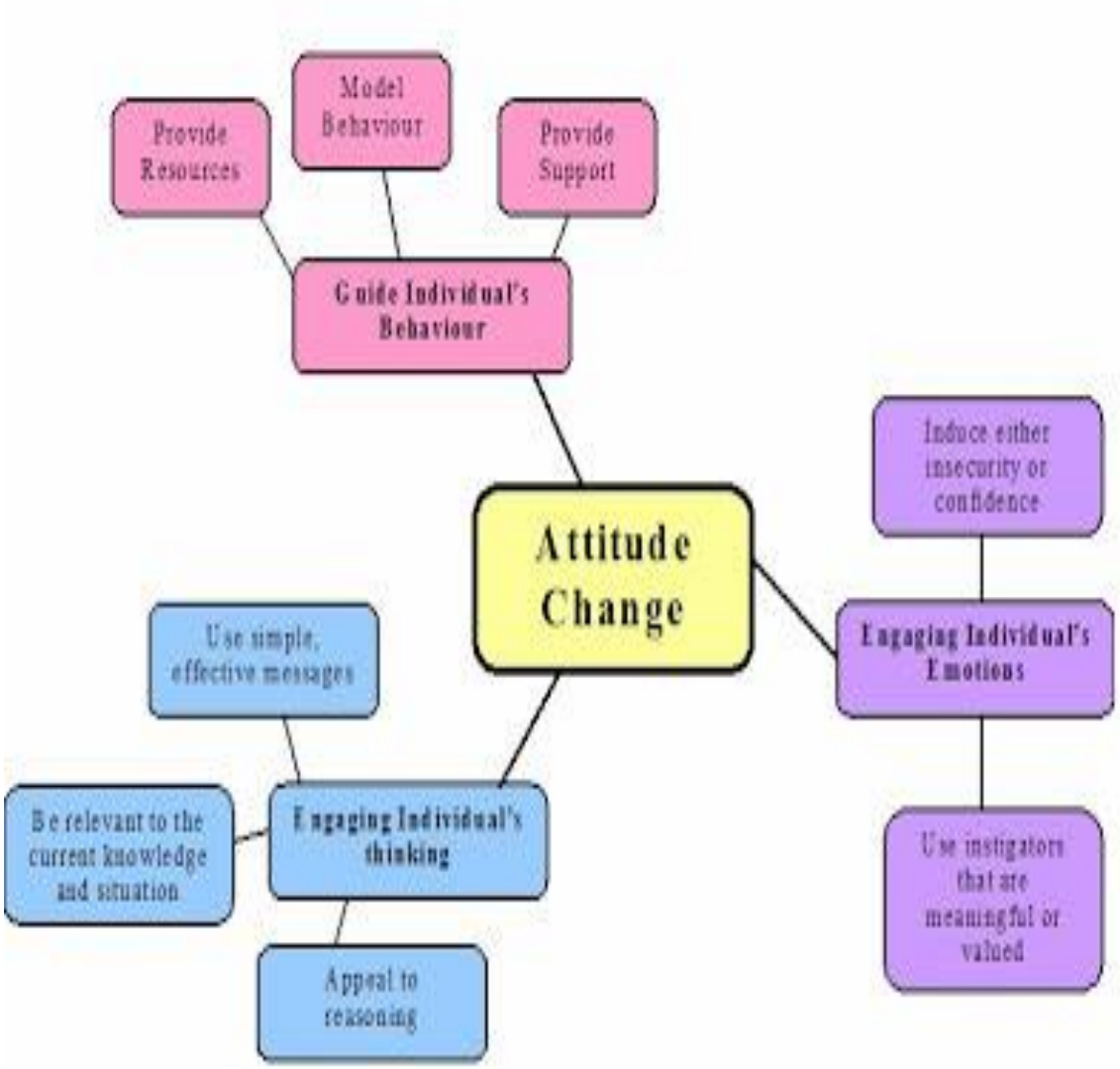

अभिवृति में परिवर्तन की प्रक्रिया

1.7.2 विद्यार्थियों में कक्षा के वातावरण के प्रति सकरात्मक अभिवृति के विकास में सहायता

शिक्षक को यह ज्ञान व समझ होना चाहिए कि विद्यार्थी के अधिगम में कक्षा वातावरण के प्रभावों की पहचान कर सके। शिक्षक निम्न आधारों पर अधिगम एवं कक्षा वातावरण के प्रति सकरात्मक अभिवृति का विकास विद्यार्थियों मे कर सकता है-

- विद्यार्थियों में यह भावना हो कि शिक्षकों तथा उनके साथियों द्वारा उन्हें महत्व दिया जाता है तथा कक्षा में आराम एवं नियम की व्यवस्था का अनुभव होना चाहिए।

- विद्यार्थियों में इस समझ को विकसित करना कि अभिवृति का संबंध अधिगम एवं कक्षा वातावरण प्रभावों से है।
- कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी से माधुर्य संबंध शिक्षक का होना चाहिए।
- कक्षा का प्रभावी अवलोकन तथा विद्यार्थी की अभिवृति या व्यवहार को प्रदर्शित करने का समुचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।
- विद्यार्थी को न्यायसंगत और सकरात्मक कक्षा व्यवहारों में व्यस्त रखने का प्रयास करना चाहिए।
- विद्यार्थियों के वैयक्तिक भेदों का ज्ञान और पहचान तथा उनके अनुकूल व्यवहार होना चाहिए।
- विद्यार्थियों की गलत प्रतिक्रिया या प्रतिक्रिया के आभाव में सकरात्मक प्रतिक्रिया शिक्षक के द्वारा की जनि चाहिए।
- विद्यार्थियों को अपने साथियों के साथ कार्य करने संरचित अवसर दिया जाना चाहिए।
- विद्यार्थियों में यह क्षमता विकसित करना कि वह अपनी रणनीति के लिए शिक्षक और साथियों से स्वीकृति प्राप्त कर सके।
- विद्यार्थियों को अधिक से अधिक एवं व्यवस्थित गतिविधियों को प्रयोग करने का अवसर देना जिसमें शारीरिक संचालन अधिक हो।
- कक्षा के नियमों और प्रक्रियाओं का नियमीकरण तथा विद्यार्थिओं तक इनका सम्प्रेषण होना चाहिए।

1.8 आदतों का संवर्धन या उन्नयन (Promotion of habits)

एक आदत किसी व्यवहार की एक दिनचर्या है जोकि नियमित रूप से सम्पन्न की जाती है और इसकी पुनरावृत्ति होती रहती है। अमेरिकन जनरल ऑफ़ साइकोलॉजी के अनुसार "एक आदत मनोविज्ञान के दृष्टीकोण से एक अधिक या कम निश्चित विचार करने का ढंग, इच्छा या मनोभाव है जो विगत मानसिक अनुभव की पुनरावृत्ति द्वारा अर्जित किए जाते है।" आदतों का निर्माण चेतन या अचेतन प्रक्रिया में एक व्यवहार की नियमित पुनरावृत्ति के माध्यम से हो जाती है। अधिगम की प्रभावशीलता के लिए विद्यार्थियों में अच्छी मानसिक आदतों का भी होना आवश्यक रहता है। विद्यार्थी प्रभावी मानसिक आदतों के विकास से दो प्रकार से लाभान्वित होते है। पहला- इन आदतों का विकास शैक्षिक विषय ज्ञान के अधिगम में वृद्धि करता है और दूसरा- यह विद्यार्थियों को भविष्य में भी सहायता करती है तथा उन योग्यताओं का विकास करती है कि किसी भी परिस्थिति में अधिगम पूर्ण किया जा सके। कुछ मानसिक आदतों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

1. आलोचनात्मक चिंतन आदत:

- यथार्थ एवं यथार्थता की तलाश
- स्पस्ट एवं स्पष्टता का अनुसरण करना
- एक स्वस्थ एवं स्वच्छ मन बनाए रखना
- संवेगोंशीलता नियंत्रित
- दूसरों के ज्ञान और भावनाओं के स्तर के अनुकूल उपयुक्त प्रतिक्रिया

2. स्व-नियमित चिन्तन आदत

- अपने चिंतन का निरीक्षण करना
- उपयुक्त योजना बनाना
- अभिज्ञान एवं आवश्यक संसाधनों का अनुप्रयोग
- प्रतिपुष्टि के लिए उपयुक्त प्रतिक्रिया
- अपने कार्यों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन

अच्छी आदतों का विकास एवं उन्नयन विद्यार्थियों एवं अधिगम के लिए निम्न परिप्रेक्ष्य में लाभकारी हो सकता है-

- विद्यार्थियों की सहायता आदतों की पहचान एवं विकास से सम्बंधित रणनीतियों को बनाने में।
- कक्षा एवं विद्यालय में एक संस्कृति सृजित करना जोकि अच्छी आदतों के विकास एवं अनुप्रयोग को प्रोत्साहित करती हो।
- विद्यार्थियों को आदतों के सुदृढीकरण हेतु प्रोत्साहित अवसर प्रदान करना।
- आदतों का अधिगम एवं अध्ययन में महत्व से अवगत कराकर प्रयोग के अवसर प्रदान करना।
- क्रिया-आधारित परीक्षणों के माध्यम से आदतों में संवर्धन लाना।
- आदतों पर परिवार, कक्षा एवं विद्यालय वातावरण के भौतिक, सामाजिक व सांवेगिक पक्षों के प्रभावों से अवगत कराना।

अभ्यास प्रश्न

6. किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति आदि के प्रति मानव की मनोस्थिति का अभिव्यक्तिकरण है क्या कहलाता है?
7. किसको एक न्यायसंगत सत्य विश्वास माना जाता है??

8. किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, मनोवैज्ञानिक पक्ष, संस्थान आदि के प्रति विशेष प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन करता है उसे क्या कहते है?
9. अभिवृति के दो पक्षों के नाम लिखिए?
10. किसी व्यवहार की एक दिनचर्या है जोकि नियमित रूप से सम्पन्न की जाती है और इसकी पुनरावृत्ति होती रहती है उसे क्या कहते है?

1.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत अधिगम और अधिगम के नूतन आयामों या विमाओं की व्याख्या की गई है जैसे- ज्ञान की सम्प्राप्ति या प्राप्ति, कौशलों का अर्जन या अभिग्रहण, मूल्यों की शिक्षा या उपदेश, स्वीकारना –अस्वीकारना, रचना या निर्माण, विश्वासों की धारणा या पकड़, अभिवृति या दृष्टीकोण में परिमार्जन या सुधार, परिवर्तन या बदलाव, धारण या युक्त रहना तथा आदत का संवर्धन या उन्नयन। इसमें शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने वाली विशेषताओं की चर्चा की गई है।

1.10 शब्दावली

1. **अधिगम:** इससे तात्पर्य अभ्यास, अनुभव व शिक्षण आदि के माध्यम से व्यवहार में हुए अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन से है।
2. **अधिगम में आयाम:** इससे तात्पर्य अनुदेशनात्मक योजना के लिए एक अधिगम केन्द्रित रुपरेखा या संरचना है।
3. **वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान:** इससे तात्पर्य सामान्य या प्रत्ययात्मक प्रकार की सूचना के वर्णन या परिभाषा से है।
4. **प्रक्रियात्मक ज्ञान:** इससे तात्पर्य एक प्रक्रिया का कार्य-निष्पादन या एक कौशल के प्रदर्शन जोकि किसी प्रकार की क्रिया में भाग लेते हुए ज्ञान ग्रहण करने से है।
5. **मूल्य:** इससे तात्पर्य उन व्यवहार मानदंडो से है जिनके द्वारा किसी समाज विशेष के लोगो आचार व व्यवहार नियंत्रित एवं निर्देशित किया जाता है।
6. **विश्वास:** किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति आदि के प्रति मानव की मनोस्थिति का अभिव्यक्तिकरण है।
7. **अभिवृति:** किसी व्यक्ति, वस्तु या अन्य के प्रति मानव के विश्वासों एवं मनोभावों का अभिव्यक्त रूप है।
8. **आदत:** एक आदत किसी व्यवहार की एक दिनचर्या है जोकि नियमित रूप से सम्पन्न की जाती है और इसकी पुनरावृत्ति होती रहती है।

1.11 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. अधिगम
2. दो, सूचक एवं प्रक्रियात्मक ज्ञान
3. डॉ. राबर्ट मर्जानो
4. तीन, संज्ञानात्मक, साहचर्य या सहचारी तथा स्वायत्त
5. स्वायत्त अवस्था
6. विश्वास
7. ज्ञान
8. अभिवृति
9. सकारात्मक तथा नकारात्मक पक्ष
10. आदत

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Marzano, R. J. and Pickering, D.J., (1997) Dimensions of Learning: Teacher's manual, ASCD Publishers, Alexandria
2. Walker, Jim (2015) The Problems with Beliefs, Retrieved from
3. http://www.nobeliefs.com/beliefs.htm
4. Marzano, R. J. (1992A Different Kind of Classroom: Teaching With Dimensions of Learning, ASCD Publishers, Alexandria
5. Belisle, C., (2008) eLearning and Intercultural dimensions of learning theories and teaching models, University of Lyon Retrieved from
6. http://viagginellestorie.ismu.org/MATERIALI/BIBLIOTECA/formazione%20-%20materiale%20incontri/6L%20-%20Triolo%20-%20media14903-1.pdf

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम को परिभाषित करते हुए अधिगम के आयामों के महत्व का वर्णन कीजिए?
2. अधिगम आयाम से आप क्या समझते है? किसी एक अधिगम आयाम का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?

3. ज्ञान की सम्प्राप्ति से आप क्या समझते है? वर्णनात्मक या सूचक ज्ञान के विभिन्न विभाजनों की विवेचना कीजिए?
4. कौशल से क्या आशय होता है? कौशल विकास की अवस्थाओं की व्याख्या कीजिए?
5. मूल्य किसी भी समाज के लिए क्यों आवश्यक माने जाते है विद्यालय पाठ्यक्रम के माध्यम से किस प्रकार मूल्यों की शिक्षा दी जा सकती है? विवेचना कीजिए?
6. अभिवृति से क्या आशय है? अभिवृति निर्माण या रचना की प्रक्रिया को उदाहरणसहित वर्णन कीजिए?

इकाई 2-अधिगम एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में, पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ ,ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संज्ञानात्मक विकास
2.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ
2.4.1 संवेदिक पेशीय अवस्था
2.4.2 पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था
2.4.3 मूर्त संक्रियात्मक अवस्था
2.4.4 अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था
2.4.5 पियाजे के सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ
2.5 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ
2.5.1 क्रियात्मक अवस्था
2.5.2 प्रतिबिम्बात्मक अवस्था
2.5.3 सांकेतिक अवस्था
2.5.4 ब्रूनर के सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ
2.6 पियाजे और ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में समानताएं एवं असमानताएं
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शैक्षिक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षकों के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण विषयों में से एक है जिसकों किसी शिक्षक के लिए जानना और समझाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। संज्ञानात्मक विकास का संबंध संज्ञानात्मक मनोविज्ञान से है। । 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम गुस्ताव निस्सर (Ulric Gustav Neisser) ने अपनी पुस्तक 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' में सन् 1967 ई0 में किया था। संज्ञानात्मक विकास इस बात पर जोर देता है कि मनुष्य किस प्रकार तथ्यों को ग्रहण करता है और किस प्रकार उसका उत्तर देता है। संज्ञान उस मानसिक प्रक्रिया को सम्बोधित करता है जिसमें चिन्तन, स्मरण, कल्पना, अधिगम और भाषा के प्रयोग आदि का समावेशन होता है। जब शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में संज्ञानात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है तो इसका आशय यह है कि हम इसमें विभिन्न तथ्यों, अनुभव और अवधारणाओं की समझ पर बल देते हैं। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान का ध्येय इन प्रश्नों का उत्तर खोजना है-मन या मस्तिष्क में ज्ञान का निर्माण कैसे होता है? ज्ञान को विद्यार्थी किस प्रकार ग्रहण करते है? ज्ञान का उपयोग विद्यार्थी कैसे करते है? चेतना क्या है? किस तरह से चेतन विचारों की उत्पत्ति होती है? चिन्तन क्या है? स्मृति का स्वरूप क्या है? विद्यार्थी में ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता कौन सी है? ज्ञान का केन्द्र हृदय या मस्तिष्क या दोनो ही है? आदि।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान इन प्रश्नों का उत्तर सूचना संसाधन उपागम तथा संबंधवादी उपागम के द्वारा खोजने का प्रयास करता है। संज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) तंत्रिकाविज्ञान तथा मनोविज्ञान का एक अध्ययन क्षेत्र है जिसमें बालक द्वारा सूचना प्रसंस्करण, भाषा सीखने, तथा मस्तिष्क के विकास के अन्य पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। जिसके कारण इसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक हो गया है। इसके मुख्य कार्यक्षेत्र संज्ञानात्मक न्यूरोविज्ञान, प्रत्यक्षण, पैटर्न पहचान, अवधान, चेतना, स्मृति, चिंतन एवं संप्रत्यय निर्माण, विकासात्मक मनोविज्ञान, भाषा, प्रतिमावली, ज्ञान का निरूपण तथा मानव बुद्धि आदि है। इस इकाई का विषय क्षेत्र केवल संज्ञानात्मक विकास है। अत: चर्चा केवल उसी से सम्बंधित संदर्भो में की जा रही है।

संज्ञानात्मक विकास को समझने से पूर्व संज्ञान को जानना और समझना आवश्यक है। 'संज्ञान' अंग्रेजी शब्द Cognition का हिंदी रूपांतर है जिसका अर्थ है 'जानना' या 'समझना'। संज्ञान (कॉग्नीशन) से तात्पर्य बुद्धि की उन आन्तरिक प्रक्रियाओं और उत्पादों से है, जो जानने या समझने या ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयोग में लायी जाती हैं। इसमें वह सभी मानसिक प्रक्रियाएं शामिल रहती हैं जैसे- ध्यान देना, याद करना, सांकेतीकरण, वर्गीकरण, योजना बनाना, विवेचना, समस्या हल करना, सृजन करना और कल्पना करना। यह एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है जिसमें विचारों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। अत: संज्ञान से तात्पर्य जैसा कि निस्सर (Neisser) ने कहा है, संवेदी सूचनाओं (sensory information) को ग्रहण करके उनका रूपान्तरण(transformation), विस्तारण (elaboration), संग्रहण (storage), पुनर्लाभ (recovery) तथा उनका समुचित उपयोग लेने से होता है। संज्ञानात्मक विकास अपने व्यापक अर्थ में बुद्धि के अतिरिक्त सूचना का प्रत्यक्षीकरण (perception), पहचान (recognition), प्रत्याह्वान

(remembering) और व्याख्या आदि करना है। अतः संज्ञान में मानव की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाएं या गतिविधियों का समन्वय निहित रहता है। मनोवैज्ञानिक 'संज्ञान' का प्रयोग ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

1. संज्ञान को परिभाषित कर सकेंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास को स्पस्ट कर सकेंगे।
3. जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
4. पियाजे के सिद्धांत की अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।
5. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत की शैक्षिक निहितार्थ को विवेचित कर सकेंगे।
6. संज्ञानात्मक विकास को स्पस्ट करके में पियाजे का सिद्धांत कितना उपयोगी है, का विश्लेषण कर सकेंगे।
7. ब्रूनर के संदर्भ में संज्ञानात्मक विकास को स्पस्ट कर संकेगे।
8. ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के चरणों का वर्णन कर सकेंगे।
9. ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ की विवेचना कर सकेंगे।
10. ब्रूनर औए पियाजे के सिद्धांत की समानताएं एवं असमानताओं का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development)

संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य बच्चे में किसी संवेदी सूचना को ग्रहण करके उस पर चिंतन करने एवं व्यवस्थित करने तथा उसे इस लायक बना लेने से है जिसके प्रयोग के माध्यम से वह विभिन्न समस्याओं का समाधान आसानी से कर लेता है। संज्ञानात्मक विकास के द्वारा बच्चे की विभिन्न संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जैसे- चिंतन, बुद्धि तथा भाषा में परिवर्तन आदि में अवस्था और परिपक्वन के अनुरूप परिवर्तन तथा परिमार्जन होता रहता है। इन परिवर्तनों में संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, प्रतिमा-धरणा, धरणा, प्रत्याहन, समस्या-समाधन, चिन्तन प्रक्रिया, तर्क-शक्ति आदि से है और जिनमें अवस्था विशेष के अनुरूप विकास होता रहता है। संज्ञानात्मक विकास प्रक्रियाएँ ही बच्चों को कविताएँ याद करने, गणित की समस्या समाधान करने के विषय में सोचने व निर्णय लेने, कोई सृजनात्मक रणनीति बनाने व क्रमागत अर्थपूर्ण वाक्य की रचना करने अथवा प्रयोग में लाने आदि कार्यों एवं क्रियाओं को सम्पन्न करने योग्य बनाती हैं। इस प्रकार संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य बच्चों में संवेदी सूचनाओं को ग्रहण करके उन पर चिन्तन करने तथा क्रमिक रूप से उन्हें इस लायक बना देने से होता है जिनका प्रयोग बच्चे स्वयं विभिन्न परिस्थितियों में अपने सम्मुख आने वाली समस्याओं के समाधन करने में आसानी से कर लेते हैं।

यदि मानव विभिन्न अवधारणाओं के मध्य के सम्बन्धों को समझ लेता हैं तो माना जाता है कि उसके संज्ञानात्मक समझ में वृद्धि हुई। संज्ञानात्मक सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि मानव किस प्रकार सोचता है, किस प्रकार महसूस करता है और किस प्रकार व्यवहार करता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अपने अन्दर ज्ञान के सभी रूपों यथा स्मृति, चिन्तन, प्रेरणा और प्रत्यक्षण आदि को शामिल करती है। मानव द्वारा सम्पादित किसी भी कार्य में मानसिक प्रक्रियाएँ निश्चित रूप से शामिल रहती हैं। जीवन निर्वाह के लिए हमारी संज्ञानात्मक शक्तियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य अपनी संज्ञानात्मक शक्तियों के द्वारा ही स्वयं को पर्यावरण के अनुरूप बनाने तथा पर्यावरण को भी अपने जीवन के अनुकूल रूपांतरित करने का प्रयास करता हैं। अपनी असाधारण मानसिक क्षमताओं के कारण ही मानव इस धरातल पर विद्यमान समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता हैं।

2.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ (Classroom Implication of Piaget's Theory of Cognitive Development)

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ जानने और समझने से पूर्व इनके सिद्धांत की चर्चा की जानी आवश्यक है।जीन पियाजे को संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र से सम्बंधित मनोवैज्ञानिकों में सबसे प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक माना जाता है। यह एक प्रमुख स्विस मनोवैज्ञानिक थे जिनका प्रारंभिक कार्यक्षेत्र जन्तुविज्ञान था किन्तु बाद में ये मनोविज्ञान के क्षेत्र से जुड़ गए। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इन्होनें अल्फ्रेड बिने के निर्देशन में फ्रेंच विद्यार्थियों के लिए बुद्धि परीक्षणों के विकास पर कार्य किया, इसी समय इन्होनें बौद्धिक समस्याओं पर विद्यार्थियों द्वारा दी गई गलत प्रतिक्रियाओं से अधिक विचलित हुए। इस कारण बच्चों के ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना इन्होनें ने प्रारम्भ किया। इन्होनें अपने बच्चों की मानसिक विकास प्रक्रिया अवलोकन एवं अध्ययनों के आधार पर संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। पियाजे के अनुसार बच्चों में वास्तविकता के स्वरूप में चिंतन करने, उसकी खोज करने, उसके बारे में समझ बनाने तथा उनके बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने की क्षमता, बालक के परिपक्वता स्तर तथा बालक के अनुभवों की पारस्परिक अन्त: क्रिया द्वारा निर्धारित होती है।

पियाजे के सिद्धांत की चर्चा करने से पूर्व उसमें प्रयुक्त महत्वपूर्ण प्रत्ययों को जानना और समझना आवश्यक है। यह प्रत्यय निम्न है-

i. **अनुकूलन (Adaptation)-** पियाजे के अनुसार बच्चे में अपने आस-पास के वातावरण से अंतक्रिया करने तथा वातावरण के साथ समंजन करने की जन्मजात प्रवृति होती है। संज्ञानात्मक विकास एक प्रक्रिया के रूप में अनुकूलन द्वारा वातावरण (संसार) में उपस्थित तत्वों, कारकों

तथा उद्दीपकों के प्रति स्पस्ट समझ विकसित करने से सम्बंधित है। यह निम्न के माध्यम से होता है-

ii. **आत्मसात्करण(Assimilation):** बच्चे में पहले से विद्यमान स्कीमा या मानसिक या बौद्धिक संरचना में नई सूचना या जानकारी जोड़ लेने या व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को आत्मसात्करण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में बच्चा अपनी ज्ञात या विद्यमान स्कीमा में नवीन अनुभवों को आसानी से समावेशित कर लेता है। यह प्रक्रिया काफी सीमा तक व्यक्तिनिष्ठ होती है क्योकि इसमें बच्चा नवीन अनुभव एवं जानकारी को अपने पूर्व विद्यमान विश्वासों के साथ थोडा-बहुत परिवर्तन और संशोधन कर उपयुक्त बनाता है। जैसे बच्चा कुत्ता का प्रत्यय जानता है तो उस समय एक विशेष विशेषताओं से युक्त जीव को ही वह कुत्ता समझता है किन्तु कभी उसके सामने अलग-अलग विशेषताओं के कुत्ते उसके सामने आ जाए तो वह कुत्ते के ज्ञात प्रत्यय में आवश्यक परिवर्तन व संशोधन कर अपनी स्कीमा में सुधार करता है।

iii. **समायोजन (Accommodation):** यह भी अनुकूलन की एक प्रक्रिया है जिसमें बच्चा विद्यमान स्कीमा को नवीन जानकारी एवं अनुभव के आधार पर फेरबदल करता है या नया प्रत्यय या स्कीमा बनाता है। यह प्रक्रिया तब होती है जब ज्ञात स्कीमा नई वस्तु या स्थिति को जानने या समझने में सहायक नहीं होती है और उसे बदलने या नई स्कीमा बनाना आवश्यक हो जाए। समायोजन में नवीन ज्ञान व अनुभवों की दृष्टी से पूर्ववर्ती स्कीमा में सुधार करने, विस्तार करने या परिवर्तन करने की प्रक्रिया निहित हती है। इस प्रक्रिया के द्वारा नए स्कीमा का भी विकास होता है। जैसे- बच्चा कुत्ता के स्कीमा से परिचित है और उसके समान मेमना का बच्चा का देखने पर उसे कुत्ता न समझकर उसकी विशेषताओं पर ध्यान देते हुए पूर्ववर्ती स्कीमा या प्रत्यय से भिन्न उसका नया प्रत्यय या स्कीमा विकसित करना।

iv. **साम्याधारण या संतुलन (Equilibration):** पियाजे का मानना था कि बच्चे आत्मसात्करण और समायोजन के बीच संतुलन करने का प्रयास करते है, जिसे एक तंत्र के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसे ही पियाजे साम्याधारण कहते है। बच्चे के सामने जब कभी अज्ञात अनुभव समस्या के रूप में आते है तब एक तरह का संज्ञानात्मक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है जिसको दूर करने या उसमें संतुलन लाने हेतु आत्मसात्करण या समायोजन या दोनों प्रक्रियाएं करना प्रारम्भ करता है। साम्याधारण बच्चे कैसे विचारों की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जा सकते है, की व्याख्या में सहायता करता है।

v. **संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure):** संज्ञानात्मक संरचनाएं एक आधारभूत मानसिक प्रक्रियाएं के रूप में लोगों द्वारा सूचना या जानकारी की समझ बनाने में अनुप्रयुक्त होती है। एक संज्ञानात्मक संरचना में कई मानसिक प्रक्रियाओं का समुच्चय निहित रहता है।

vi. **स्कीम्स(Schemas):** इससे तात्पर्य व्यवहारों के संगठित एवं व्यवस्थित पैटर्न से है। स्कीम्स का संबंध मानसिक संक्रियाओं से होता है। स्कीम्स को मानसिक संक्रियाओं का अभिव्यक्त रूप माना जाता है।

vii. **स्कीमा (Schema):** स्कीमा जानने एवं समझने में शामिल मानसिक और शारीरिक क्रियाओं दोनों का वर्णन है। स्कीमा ज्ञान की श्रेणियां है जो संसार की समझ और व्याख्या में हमारी सहायता करती है। स्कीमा से तात्पर्य एक ऐसी मानसिक संरचना से लिया जाता है जिसका सामान्यीकरण किया जा सके। जैसे – जैसे बच्चे के अनुभव में विस्तार होता जाता है वैसे-वैसे नवीन अनुभवों व जानकारी के आधार पर पूर्ववर्ती स्कीमा में संशोधन, जोड़ना या परिवर्तन या नए स्कीमा बनाने की प्रक्रिया होती जाती है।

viii. **विकेन्द्रण (Decentering):** पियाजे के अनुसार विकेन्द्रण से आशय है किसी वस्तु या उद्दीपक के विषय में वस्तुनिष्ठ व वास्तविक ढंग से चिंतन या विचार करने की क्षमता से होता है।

ix. पियाजे ने अपने सिद्धांत में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया के विकासक्रम को चार अवस्थाओं में विभाजित करके स्पस्ट करने का प्रयास किया है। ये चार अवस्थाएँ या स्तर निम्न है-

a. संवेदिक पेशीय अवस्था (Sensory Motor Stage)
b. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational Stage)
c. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage)
d. अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage)

2.4.1 संवेदिक पेशीय अवस्था (Sensory Motor Stage)

यह अवस्था बालक में जन्म से लेकर लगभग 2 वर्ष तक की अवधि तक चलती है। इस अवस्था में बच्चा अपनी इन्द्रियों के अनुभवों तथा उन पर पेशीय कार्य करके जानने और समझने का प्रयास करता है। इस अवस्था में बच्चे मुख्यतः निम्न क्रियाएं करते है जैसे- देखना, छूना, पैर मारना, वस्तुओं को इधर-उधर करना, पकड़ना, चूसना या मुँह में डालना आदि। बच्चे अपनी आवश्यकताओं और अभिव्यक्ति को सहज प्रक्रियाओं द्वारा प्रदर्शित करते है। इस अवस्था में भाषा विकास के आभाव के कारण बच्चा अपने चतुर्दिक वातावरण को इन्द्रिय गामक क्रियाओं के माध्यम से अंतक्रिया करते हुए जानता और समझता है। इस अवस्था में जहाँ प्रारम्भ में बच्चे किसी वस्तु का अस्तित्व तभी तक स्वीकार करते है जब तक वह उनके सम्मुख होती है किन्तु जब वह इस अवस्था के अन्तिम चरण मे पहुँचते है तो उसकी अस्तित्व सम्बन्धी धारणा में परिवर्तन हो जाता है और यह समझ विकसित हो जाती है कि वस्तुओं का कुछ स्थायी अस्तित्व होता है। इस अवस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि बच्चे द्वारा वस्तु स्थायित्व का संज्ञान होना है। पियाजे ने स्पस्ट किया कि इस अवस्था में बच्चों का संज्ञानात्मक विकास निम्न छः उप-अवस्थाओं में होकर विकसित होता है-

1. **प्रतिवर्त क्रियाओं की अवस्था (stage of reflex activities)-** इस उप-अवस्था की समयावधि जन्म से तीस दिन तक की मानी जाती है। इस अवस्था में बच्चा मुख्य रूप से प्रतिवर्त क्रियाएं करने में ही सक्षम होता है। इनमें सबसे प्रबल प्रतिवर्त क्रिया चूसने की होती है।

2. **प्राथमिक वृतीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था (stage of primary circular reactions)-** इस उप-अवस्था की समयावधि एक महीने से लेकर चौथे महीने तक होती है। इस अवस्था में प्रतिवर्त क्रियाएं पहले से अधिक व्यवस्थित व समन्वित हो जाती है। इस अवस्था में बच्चे कुछ प्रमुख शारीरिक क्रियाओं का प्रदर्शन सामान्यत: अधिक करते है तथा उनकी पुरावृत्ति करने लगते है।

3. **गौण वृतीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था (stage of secondary circular reactions)-** इस उप-अवस्था का समयावधि चार माह से लेकर आठ माह तक की मानी जाती है। इस अवस्था में बच्चे आनन्ददायक क्रियाओं की पुनरावृत्ति करने लगते है जिसमें वस्तुओं को शामिल करने के साथ-साथ शरीर से सम्बंधित क्रियाएं भी सम्मलित रहती है।

4. **गौण स्कीमैटा के समन्वय की अवस्था(stage of coordination of secondary schemata)-** इस उप-अवस्था की समयावधि आठ माह से लेकर बारह माह तक होती है। इस अवस्था में बच्चों द्वारा एक लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग करने की क्षमता के लक्षण दिखाई पड़ने लगते है। इस अवस्था में बच्चों द्वारा विकसित एवं अधिगमित स्कीमा का एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में सामान्यीकरण करना प्रारम्भ कर देते है।

5. **तृतीय वृतीय प्रतिक्रियाओं की अवस्था (stage of tertiary circular reactions)-** इस उप-अवस्था की समयावधि बारह माह से लेकर अठारह माह तक मानी जाती है।इस अवस्था में बच्चा शारीरिक क्रियाओं की अपेक्षा वस्तुओं पर आधारित क्रियाओं को करने की उत्सुकता अधिक होती है। वह वस्तुओं को उठाना-गिराना या जोड़-तोड़ सम्बन्धी क्रियाओं को अधिक करने की प्रवृति पाई जाती है।

6. **प्रतीकात्मक चिंतन की अवस्था (stage of symbolic thoughts**)- इस उप-अवस्था की समयावधि अठारह माह से लेकर चौबीस माह तक मानी जाती है। इस अवस्था के अंत तक बच्चों में प्रतीकात्मक चिंतन का गुण विकसित हो जाता है। इसमें बच्चे वस्तुओं से सम्बंधित मानसिक प्रारूपों को बनाने में सक्षम हो जाते है। इससे तात्पर्य यह है कि जब वस्तुएं उनके सामने प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित नहीं होती है तब भी वह उनके संबंध में मानसिक चित्रण कर लेते है अर्थात उनमें वस्तु स्थायित्व का गुण विकसित हो जाता है। अब बच्चों का चिंतन अधिक वास्तविक हो जाता है।

2.4.2 पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational Stage)

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की इस दूसरी अवस्था की समयावधि लगभग जो 2 से 7 वर्ष तक की मानी जाती है। इस अवस्था में बच्चे में संकेतात्मक क्रियाओं व कार्यों तथा भाषा प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था को पियाजे ने दो भागों में बाँटा है। (1)प्राकसंप्रत्यात्मक (Pre-conceptual period) (2) अन्तर्दर्शी अवधि (Intuitive Period)।

1. **प्राकसंप्रत्यात्मक अवधि-** इस उप-अवस्था की समयावधि लगभग 2 से 4 वर्ष तक की मानी जाती है। इस अवधि में बच्चा वस्तु सामने उपसिथत न होने पर भी उसकी मानसिक छवि बना लेता है अर्थात वस्तु से सम्बंधित वाचक या सूचक या शब्द रूप विकसित कर लेने से है। बच्चा यह समझने लगता है कि वस्तु, शब्द, प्रतिमा तथा चिंतन किसी चीज के परिप्रेक्ष्य मे किया जाता है। बच्चे अपने आस-पास के वातावरण से सम्बंधित विभिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों की मानसिक उपस्थिति जानने और समझने के लिए विभिन्न संकेतों का विकास कर लेते है। जैसे आवाज से ही माता या पिता की प्रतिमा बच्चे के संज्ञान मे बन जाना।

   भाषा विकास का इस अवस्था में विशेष महत्व है। इस अवस्था में भाषा का अधिकतम होता है और बच्चे भाषा का विस्तृत प्रयोग अपने विचारों या बातों को प्रकट करने में करने लगते है। भाषा विकास समृद्ध वातावरण में अधिक होता है। इस अवस्था में बच्चे अपने चिंतन तथा कार्य प्रक्रिया में विभिन्न शब्द रूप या संकेत या प्रतीक आदि का प्रयोग करना कुछ सीमा तक सीख जाते है।बच्चे अपने परिवार के बड़े सदस्यों के तरह अनुकरण करके तथा खेल के द्वारा कार्य एवं क्रिया व चिंतन करना सीखते है।

   पियाजे ने इस अवधि की दो परिसीमाएँ भी बताई है आत्मकेनिद्रता और जीववाद। जो इस प्रकार है-

a. **आत्म-केन्द्रिता (Egocentrism):** आत्म-केन्द्रिता से तात्पर्य बच्चा स्वयं के दृषिटकोण व अन्य के दृषिटकोण में विभेद न कर पाने की स्थिति में रहता है अर्थात बच्चा किसी परिस्थिति में अन्य व्यक्ति के नजरिए को जान पाने में अक्षम होता है। उससे ऐसा महसूस होता है कि जैसा वह देख, सुन या कर रहा है वैसा ही दूसरे भी देख, सुन और कर रहे है।

   इस अवस्था में बच्चा सिर्फ अपने विचार को ही सत्य स्वीकार करता है। उसमें यह भी धारणा रहती है कि संसार की अधिकतर चीजें उसके इर्द-गिर्द घूमती रहती है। जैसे किसी चित्र या सूरज या चन्द्रमा को देख कर यह महसूस करना कि वह भी मुझे ही देख रहा है। बच्चे का आत्म-केन्द्रिता का गुण अन्य बच्चों एवं बड़े लोगो के संपर्क मे आने और अंतक्रिया से धीरे-धीरे कम होता जाता है।

b. **जीववाद (Animism)**-यह भी प्राकसंक्रियात्मक चिन्तन की एक अन्य सीमा है। इसमें बच्चा सभी वस्तुओं को सजीव समझता है अर्थात यह धारणा होती है कि बच्चा निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव के समान मानता है। जैसे टेडी बियर, टॉय, पंखा, कार आदि को सजीव मानना। चार

या पांच वर्ष की अवस्था तक लगभग सभी चीजों को सजीव व उद्देश्यपूर्ण मनाता है। इसके विचारों में परिवर्तन व सुधार नवे वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक हो जाता है। जब वह केवल पेड़-पौधों और जीवधारियों को ही सजीव मानता है।

2. **अन्तर्दर्शी अवधि-** यह अवधि लगभग 4 साल से 7 साल की होती है। इस अवधि में बच्चे में प्रारंभिक तर्कशकित का विकास हो जाता है तथा इससे संबंधित विभिन्न प्रश्नों का समाधान खोजने का प्रयास करते है। इस स्तर पर बच्चों के चिंतन तथा तर्क शक्ति पहले से अधिक परिपक्व हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप वह साधारण मानसिक प्रक्रियाएं जैसे जोड़, घटाना, भाग व गुणा आदि, करने लगते है। किन्तु वो इन मानसिक प्रक्रियाओं के पीछे छिपे नियमों से अनभिज्ञ होते हैं। अर्थात वे बहुत सी बातें जानते हैं किंतु उनमें तर्कसंगत चिन्तन नहीं होता। उदाहरण के लिए वे गणितीय घटाना व गुणा करना जानते हैं, किन्तु कहाँ प्रयोग करना है और क्यों प्रयोग करना है इसे नहीं समझ पाते हैं।

2.4.3 मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage)

मूर्त संक्रियात्मक की अवस्था संज्ञानात्मक विकास की यह तीसरी अवस्था है जिसकी समयावधि लगभग 7 साल से 12 साल तक मानी जाती है। हालांकि इस अवस्था में बच्चों के विचारों में संक्रियात्मक क्षमता आ जाती है और अन्तर्दर्शी तर्कशक्ति के स्थान पर तार्किकता का विकास हो जाता है। परन्तु बच्चा इस अवस्था में समस्या समाधन हेतु मूर्त परिथितियों पर ही निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए दो ठोस वस्तुओं से संबंधित समस्या को बच्चा आसानी से मानसिक संक्रिया द्वारा हल कर लेता है किन्तु यदि ठोस या मूर्त वस्तुओं को न देकर उनके विषय में शाब्दिक कथन के माध्यम से समस्या दी जाए तो ऐसी समस्याएँ अमूर्त होने के कारण वे इन्हें हल नहीं कर पाते है।

इस अवस्था में बच्चा किसी वस्तु की विभिन्न विशेषताओं या विमाओं पर एक साथ विचार कर सकता है। वे मूर्त संक्रियाँ का मानसिक रूप में व्युत्क्रम कर पाते है। इस अवधि के बच्चों मे समस्या-समाधन करने के तरीकों को देखनेतथा मानसिक प्रक्रियाओं के स्वरुप को जानने हेतु निम्न परीक्षण किया जा सकता है। जैसे पदार्थ के संरक्षण के परीक्षण में बच्चे को मिटटी के दो समान गोले दिखाए जाए तथा उसमें से एक गोले को लम्बा व पतला आकार का बना दिया जाए फिर उनसे पूँछा जाए कि इन दोनों में से किस गोले में ज्यादा मिटटी प्रयुक्त हुई है? 8 से 9 वर्ष का बच्चा आसानी से बता सकता है कि मिटटी की मात्रा दोनों में समान हैं, जबकि प्राकसंक्रियात्मक अवधि के बच्चे लम्बे व पतले में मिटटी की मात्रा को सामान्यत: ज्यादा बतायेंगें। इस समस्या में प्राकसंक्रियात्मक अवस्था का बच्चा केवल एक ही विशेषता, लम्बाई या चौड़ाई पर ही ध्यान केन्द्रित कर पाता है जबकि मूर्त संक्रियात्मक अवस्था का बच्चा दोनों विशेषताओं या विमाओं पर एक साथ ध्यान रखता है।

पियाजे के अनुसार, इस अवस्था में बच्चों में तीन महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय विकसित होते हैं।

i. **संरक्षण का सिद्धांत (Principle of conservation):** संरक्षण के सिद्धांत के अनुसार किसी वस्तु की मात्रा पर उस वस्तु के आकार में परिवर्तन करने अथवा उस वस्तु को कई हिस्सों या टुकड़ों में विभक्त कर देने का कोई प्रभाव नही होता है। पियाजे के अनुसार संरक्षण के ज्ञान के लिए **विलोमीयता (Reversibility)** तथा तार्किक गुणीतता **(Logical Multiplication)** नामक दो पूर्व योग्यताओं का होना आवश्यक है। विलोमीयता से आशय किसी वस्तु को मानसिक स्तर पर उसके आकार को समझने से है। तार्किक गुणीतता से आशय किसी वस्तु या समस्या की दो या दो से अधिक विमाओं या विशेषताओं पर एक साथ ध्यान देने से है। बच्चे इस अवस्था में तरल, लम्बाई, भार इत्यादि के संरक्षण से संबंधित समस्याओं का समाधन करने मे सक्षम होते हैं।

ii. **सम्बन्ध (Relations):** इससे तात्पर्य किसी संज्ञानात्मक संक्रिया में किसी वस्तु या वस्तुओं को उनकी विशेषताओं (ऊंचाई भार, लम्बाई आदि) के आधार पर क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित करने की क्षमता से है। इस स्तर पर बच्चे दी गई वस्तुओं को उनकी लम्बाई या वजन आदि के अनुसार घटते या बढ़ते क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमता रखते है। इसे पंक्तिबद्धता(seriation) की भी संज्ञा दी गई है।

iii. **वर्गीकरण (Classification):** वर्गीकरण से आशय वस्तुओं के गुण के आधार पर वर्गों या उपवर्गों में बाँट पाने या विभाजन करने की क्षमता से है। वर्गीकरण, श्रेणियों के गुणों की पहचान करने, श्रेणियों या वर्गों को एक दूसरे से सम्बंधित करने तथा नियत सूचना के प्रयोग से समस्या समाधान करने की योग्यता है।

2.4.4 अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Stage)

पियाजे के अनुसार यह चौथी अवस्था है जो कि लगभग 11 वर्ष से आरंभ होती है और लगभग वयस्कावास्था तक चलती रहती है। इस अवस्था में बालक का चिन्तन अधिक अमूर्त, अधिक क्रमबद्ध, लचीला और तार्किक हो जाता है।औपचारिक संक्रिया अवस्था में चिन्तन की अमूर्त गुणवत्ता, मौखिक कथनों के रूप में प्रस्तुत समस्याओं के हल करने की क्षमता में देखी जा सकती है। । पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बच्चे वैज्ञानिकों की तरह तार्किक सोच रखते हैं। वे निगमात्मक पूर्वकल्पना तर्क का प्रयोग समस्या हल में करते हैं अर्थात वे समस्या के संभावित उत्तरों का परीक्षण करके बेहतर संभावित उत्तर को निष्कर्ष के रूप में खोजते हैं।

अमूर्त संक्रियात्मक स्तर पर किशोरों के चिंतन में वस्तुनिष्ठता तथा वास्तविकता की भूमिका अधिक सक्रिय हो जाती है। इनका बौद्धिक संगठन समृद्ध एवं क्रमबद्ध हो जाता है। इनमें भविष्य के संदर्भ में अपने विचारों को प्रक्षेपित करने तथा भावी संभावनाओं पर तर्क करने व उनका समाधान करने की क्षमता का विकास हो जाता है।

2.4.5 पियाजे के सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ (Classroom Implication of Piaget's Theory)

पियाजे के सिद्धांत का शिक्षा के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष पर बहुत प्रभाव है। यह एक ऐसे दृष्टिकोण के सृजन में सहयोग देता है जिसका मुख्य ध्येय उन्नतशील उपयुक्त शिक्षा के विचार पर केन्द्रित रहता है। इसका सम्बन्ध शैक्षिक संदर्भ के साथ वातावरण, पाठ्यक्रम, सामग्रियाँ और अनुदेशन से होता है जोकि विद्यार्थी की शारीरिक और संज्ञानात्मक योग्यताओं के साथ-साथ इनकी सामाजिक और भावात्मक आवश्यकताओं से संगतता रखता है। शिक्षकों की लिए इस सिद्धांत का विशेष महत्व है क्योकि यह शिक्षकों के शिक्षण विशेष दिशा प्रदान करता है। इस सिद्धांत का कक्षागत परिस्थिति में निम्न शैक्षिक निहितार्थ स्वीकार किया जाता है-

1. बच्चों की चिंतन प्रक्रिया में अवधान केन्द्रित होना चाहिए नकि बस उनके उत्पादों या उपलब्धियों पर। बच्चों द्वारा किसी प्रश्न या समस्या पर दी गई प्रतिक्रिया या उत्तर की सत्यता जाँच करने के अतिरिक्त शिक्षक को बच्चों द्वारा समस्या या प्रश्न के उत्तर को प्राप्त करने में प्रयोग में लायी गई प्रक्रिया को समझना चाहिए। बच्चों की मौजूदा स्तर की संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं पर ही उपयुक्त अधिगम अनुभव गठित होते है और केवल जब शिक्षक बच्चों के किसी विशेष निष्कर्ष में पहुँचने के तरीके की सराहना करते है तो बच्चों स्व-प्रोत्साहित होकर उचित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की संरचना करते है।

2. अधिगम क्रियाओं में बच्चों की स्व-पहल तथा सक्रिय सहभागिता की निर्णायक भूमिका की मान्यता देनी चाहिए। पियाजे के अनुसार कक्षा में रेडीमेड या तैयार ज्ञान के प्रस्तुतीकरण पर कम महत्व दिया जाए एवं बच्चों को वातावरण के साथ सहज अंतक्रिया के माध्यम से स्वयं के लिए खोज करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है। इसीलिए, उपदेशात्मक शिक्षण के स्थान पर शिक्षक इसमें क्रियाओं की समृद्ध विविधता प्रदान करता है जोकि बच्चों को भौतिक संसार पर प्रत्यक्ष कार्य करने की अनुमति देता है।

3. उन परिपाटियों को महत्व न देना जो बच्चों के चिंतन को वयस्क जैसा बनाने का उद्देश्य रखती हो। इस संबंध में पियाजे की प्रसिद्ध उक्ति जिसे अमेरिकन प्रश्न के नाम से जाना जाता है। जोकि है "हम कैसे विकास की तेज गति पकड़ सकते है?" उनका विश्वास था कि यदि हम बच्चों अधिक गति एवं चरणों में अधिक शीघ्रता लाने का प्रयास शिक्षण को बदतर कर सकता है।
4. विकासात्मक प्रगति में व्यक्तिगत विभेदों का अनुमोदन होना चाहिए। पियाजे के सिद्धांत के अनुसार सभी बच्चों का एक समान विकासात्मक अवस्थाओं के माध्यम से विकास होता है लेकिन उनमें विकास की दरें भिन्न-भिन्न होती है। इसी वजह से इस सिद्धांत में यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षकों को सम्पूर्ण कक्षा समूह के लिए, की अपेक्षा वैयक्तिक एवं बच्चों के समूहों के लिए विशेष प्रयास से व्यवस्थित कक्षागत गतिविधियों को बनाना चाहिए।

5. इस सिद्धांत में यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षक को विद्यार्थियों को स्वक्रिया द्वारा ज्ञान एवं अनुभव ग्रहण करने की गतिविधियाँ में भाग लेने के अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध कराना चाहिए। यहाँ शिक्षक की भूमिका मार्गदर्शक की होनी चाहिए। विद्यार्थियों कार्य-प्रक्रिया में कोई दिशा-निर्देश या कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जिससे उनकी कार्य करने की स्वायत्ता और आत्म-विश्वास प्रभावित हो।
6. विद्यालय या कक्षागत परिस्थिति में यह संभव हो सके कि विद्यार्थियों को शैक्षिक खेलों द्वारा अधिगम कराया जा सकता है तो उन्हें ऐसे अवसर अधिक से अधिक दिए जाने चाहिए। पियाजे ने अपने सिद्धांत में स्पस्ट किया है कि खेल द्वारा बच्चों में संज्ञानात्मक क्षमता का विकास होता है।
7. शिक्षक कक्षा में किसी प्रकरण के शिक्षण में आवश्यकता अनुरूप मूर्त सामग्रियां एवं दृश्य साधन जैसे मॉडल या समय रेखा आदि, का उपयोग किया जाना चाहिए।
8. किसी कठिन व जटिल विषय या प्रकरण या पाठ के शिक्षण के लिए शिक्षक को अधिगम सहज बनाने हेतु पूर्ववर्ती संज्ञानात्मक अनुभव से सम्बंधित उदाहरणों का प्रयोग करते हुए प्रकरण या पाठ की व्याख्या की जानी चाहिए।

पियाजे के सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ अधिगमकर्ता के विकास स्तर के लिए अनुदेशनों का अनुकूलन है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योकि इसमें अधिगमकर्ता की विकासात्मक स्तर विशेष की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा की विषय-वस्तु को संगत बनाने में सहयोग देता है।

इस सिद्धांत में शिक्षक की मुख्य भूमिका यह स्वीकार की जाती है कि वह विद्यार्थियों के लिए विभिन्न अनुभवों को प्रदान करते हुए अधिगम को सहज बनाने का प्रयास करे। खोजपूर्ण अधिगम विद्यार्थियों को अन्वेषण करने तथा परीक्षण करने के लिए अवसर प्रदान करता है, जब वह नई समझ का विकास कर रहे होते है। इसमें विभिन्न संज्ञानात्मक स्तर के विद्यार्थियों को प्राय: एक साथ कम करने के अवसर उपलब्ध कराने की वकालत की जाती है। जहाँ पर किसी विषय-सामग्री में उच्च समझ रखने वाला विद्यार्थी कम परिपक्व विद्यार्थी की सीखने में सहायक प्रोत्साहन प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किस मनोवैज्ञानिक ने किया था
   संज्ञान से आशय संवेदी सूचनाओं को ग्रहण करके उनका रूपान्तरण, विस्तारण, संग्रहण, पुनर्लाभ तथा उनका समुचित उपयोग लेने से होता है यह कथन किसका है?
2. जीन पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास की कितनी अवस्थाओं का निर्धारण किया है?
3. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में सबसे अन्तिम एवं एवं उच्च स्तर का संज्ञानात्मक विकास किसे माना जाता है?

4. संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में अन्तर्दर्शी अवधि का समय काल क्या माना जाता है?

2.5 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ (Classroom implications of Bruner's theory of Cognitive Development)

जेरोम ब्रूनर एक मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने बच्चों के संज्ञानात्मक विकास और यह कैसे शिक्षा से सम्बंधित है, पर अपने शोध कार्य को अधिक केन्द्रित रखा। इन्होनें मनोविज्ञान और शिक्षा दोनों ही क्षेत्रों में महानतम योगदान किया है। जब यह अपना अनुसंधान कार्य कर रहे थे उस समय अमेरिका की कक्षाओं में व्यवहारवाद एक प्रमुख परंपरागत सिद्धांत के रूप में प्रयोग में लाया जा रहा था।

प्रारम्भ में, ब्रूनर मन कैसे सूचनाओं को संगठित एवं वर्गीकृत करता है, में दिलचस्पी थी। इसका कारण यह था कि इन्होने अपने शुरुवाती कैरियर में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान पर अधिक कार्य किया और इनके प्रारंभिक अध्ययनों में पियाजे के सिद्धांत की महत्वपूर्ण भूमिका रही है किन्तु बाद में ब्रूनर ने अपने अध्ययन के आधार पर नए संज्ञानात्मक सिद्धांत का प्रतिपादन किया ।

जेरोम ब्रूनर ने यह सिद्धांत दिया कि अधिगम प्रतिनिधित्व के तीन चरणों के द्वारा पूर्ण होता है। प्रत्येक चरण में एक विशिष्ट प्रकार से सूचना या ज्ञान को संग्रहित तथा स्मृति में इनकोड किया जाता है। ये अवस्थाएं अधिक या कम अनुक्रमित होती है यद्यपि ये आवश्यक रूप से आयु सम्बंधित नहीं होती जैसा कि पियाजे आधारित सिद्धांत में है। चरणों के क्रमों में अग्रसर होते हुए वास्तव में संप्रत्यय की अवधारणा का विकास होता है जोकि अधिगमकर्ता क्यों और कैसे किसी संप्रत्यय को समझता है? को जानने में सहायता करता है।

ब्रूनर अधिगम और शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित विश्वास धारित रखते है-

इनका मानना है कि पाठ्यक्रम को अन्वेषण एवं खोज के द्वारा समस्या-समाधान कौशलों के विकास को बढावा देना वाला होना चाहिए।

यह विश्वास करते है कि विषय-वस्तु को बच्चों के नजरिए से संसार देखने के तरह का प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

इन्होनें शिक्षण प्रत्ययों के व्यवस्थापन द्वारा और अधिगम खोज के द्वारा किए जाने पर अधिक जोर दिया।

इनका मानना है कि संस्कृति द्वारा जोकि लोगों में स्वयं के लिए एवं अन्य के लिए तथा उस संसार का जिसमें वह रहते है, के विचारों को व्यवस्थित आकार दिया जाता है।

ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जोकि निम्न है-

1. क्रियात्मक अवस्था (Enactive - Action Based)
2. प्रतिबिम्बात्मक अवस्था (Iconic – Image Based)

3. सांकेतिक अवस्था (Symbolic- Language Based)

2.5.1 क्रियात्मक अवस्था (Enactive - Action Based)

ब्रूनर के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की यह पहली अवस्था है। इस अवस्था को शारीरिक अनुक्रियाओं की अवस्था भी कहा जाता है। इस स्तर पर स्मृति में सूचनाएं इनकोडिंग तथा संग्रहित होती है। इस अवस्था में बच्चा अपने चारों ओर व्याप्त परिवेश सम्बन्धी वास्तविकता का ज्ञान अपनी शारीरिक क्रियाओं व चेष्टाओं एवं गामक गतिविधियों के द्वारा प्राप्त करने का प्रयास करता है। किसी वस्तु या चीज को जानने या समझने के लिए बच्चा उसे पकड़ता,है, फेकता है, तोड़ता है, मोड़ता है, मुँह में डालता है, काटता है, रगड़ता है, पटकता है आदि क्रियाओं को सम्पादित करते है। उदाहरण के लिए एक बच्चा किसी एक झुनझुना को हिलाता है और आवाज सुनता है। बच्चे ने प्रतक्ष्य एक हेर-फेर किया और परिनाम एक सुखद आवाज के रूप में प्राप्त हुआ। आगे भविष्य मे हो सकता है कि उसके पास कोई झुनझुना न हो फिर भी वह अपने हाथ को हिला कर वैसी आवाज उत्पन्न करने का प्रयास करता है।

2.5.2 प्रतिबिम्बात्मक अवस्था (Iconic – Image Based)

संज्ञानात्मक विकास की दूसरी अवस्था को प्रतिबिम्बात्मक अवस्था कहा जाता है। इसकी सामान्य समयावधि एक से छ: वर्ष स्वीकार किया जाता है। इस अवस्था में मानसिक प्रतिबिम्बों के रूप में सूचनाएं बच्चे थक पहुंचने लगती है। इस अवस्था में बच्चे का संज्ञानात्मक विकास इस प्रकार का हो जाता है कि वह वस्तुओं और घटनाओं का अमूर्त चिंतन करने हेतु उन्हें मानसिक बिम्बों के रूप में सामने रख कर चिंतन करने में सक्षम हो जाता है। बच्चों में दृश्य स्मृति विकसित हो जाती है। उदाहरण के लिए आयताकार या वर्गाकार कमरे का कैसा स्वरुप हो सकता है इस बात को जानने और समझने हेतु अब उसके पास मानसिक बिम्ब रहते है या बच्चा अपने दृश्य बिम्बों के आधर पर पेड़ का चित्र ड्राइंग कर दे।

2.5.3 सांकेतिक अवस्था (Symbolic- Language Based)

इस अवस्था में बच्चा भाषा के व्यवहार द्वारा अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है। इसमें बच्चा शब्द या प्रतीक का उपयोग करता हुआ अवधारणाओं से सम्बंधित सूचनाओं को मन में व्यवस्थित करता है। इस अवस्था पर पहुँचते ही बच्चा अपने मानसिक बिम्बों के स्थान पर प्रतीकों या चिन्हों का प्रयोग करना तथा उनके प्रयोग को समझना प्रारम्भ कर देता है। इस चरण में प्राथमिक रूप से संग्रहित ज्ञान शब्द, गणितीय प्रतीक या चिन्ह अथवा अन्य प्रतीक प्रणालियों के रूप में स्मृति में रहता है। इस अवस्था में बच्चा प्रतीक या चिन्ह सम्बन्धी आकृति दिखाए जाने पर उसको पहचान सकता है। यह संज्ञानात्मक विकास की सर्वोतम अवस्था है जिसमें स्थूल वस्तुओं तथा वास्तविक घटनाओं को उनके सूक्ष्म तथा प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व या भाषागत विअरण से जाना या समझा जा सकता है।

ब्रूनर का मानना था कि सभी प्रकार का अधिगम लगभग उनके द्वारा प्रतिपादित चरणों के अनुकूल ही होता है। ब्रूनर का मानना है कि बच्चों में अधिगम का प्रारम्भ वस्तुओं के प्रत्यक्ष हेर-फेर के साथ होना

चाहिए। अधिगमकर्ता को वस्तुओं के प्रत्यक्ष हेर-फेर के अवसर दिए जाने के पश्चात उन्हें दृश्य प्रतिनिधित्वों को रचना करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जैसे कि एक आकृति या आकार का ड्राइंग बनाने मे। सबसे अंत में, अधिगमकर्ता संकेतो, प्रतीकों या चिन्हों के प्रतिनिधित्व के साथ समझ का विकास होता है।

2.5.4 ब्रूनर के सिद्धांत का कक्षा निहितार्थ (Classroom Implication of Bruner's Theory)

ब्रूनर के द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत शिक्षा और मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस सिद्धांत की शैक्षिक परिस्थितियों में निम्न निहितार्थ है-

ब्रूनर का यह मानना था कि विद्यार्थियों से यह कभी भी आशा नहीं की जानी चाहिए कि वे किसी सुनी हुई, पढ़ी हुई या अवलोकित की सामग्री को हुबहू दोहराने या प्रस्तुत करने का प्रयत्न करे अपितु विद्यार्थियों के सामने ऐसी परिस्थितियाँ सृजित की जानी चाहिए कि विद्यार्थी उनमें स्वायत्त पूर्ण ढंग से क्रिया करने हेतु प्रोत्साहित एवं अभिप्रेरित हो सकें। विद्यार्थी में इस प्रवृति को विकसित किया जाना चाहिए कि वे ज्ञान प्राप्ति की उपलब्धि को प्राप्ति करने की अपेक्षा ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रयुक्त की गई प्रक्रिया को जानने और समझने पर अधिक ध्यान दे। इस संदर्भ में ब्रूनर ने कहा है कि बच्चों को ज्ञान प्रदान करने की अपेक्षा ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया तथा उसमें भाग लेने के प्रयत्नों और चीजों को जानने और समझने के प्रयत्नों आदि पर शिक्षा प्रक्रिया को अधिक केन्द्रित होना चाहिए। विद्यार्थियों में यह भावना भी जाग्रत की जानी चाहिए कि ज्ञान एक प्रक्रिया है, परिणाम नहीं।

ब्रूनर ने अपने संज्ञानात्मक सिद्धांत में खोजपूर्ण अधिगम पर विशेष बल दिया। खोजपूर्ण अधिगम के संप्रत्यय से आशय यह था कि विद्यार्थी को कुछ बताने या अधिगम कराने की अपेक्षा उसे स्वयं के लिए खोजपूर्ण अधिगम द्वारा ज्ञान संरचना के अवसर दिए जाने से है। ब्रूनर के अनुसार शिक्षक को अधिगम प्रक्रिया को सहज बनाना चाहिए। इसमें विद्यार्थी को अधिगम या पाठ विकास हेतु आवश्यक सूचनाओं को बिना व्यवस्थित स्वरुप के प्रदान किया जाना चाहिए। जिससे उन्हें स्वयं करने व सीखने तथा ज्ञान संरचना निर्माण के अवसर प्राप्त हो सके तथा अधिगम प्रक्रिया में उनकी सक्रिय भूमिका बनी रहे।

ब्रूनर ने अपने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत में शिक्षकों के माध्यम से अनुदेशन प्रक्रिया को प्रभावशाली, ग्रहणशील एवं रुचिपूर्ण बनाने हेतु चार अपेक्षाएं रखते है-

अधिगम के लिए विद्यार्थियों को तत्पर करना- शिक्षक को किसी भी विषय या प्रकरण का शिक्षण आरम्भ करने से पूर्व विद्यार्थियों में शिक्षण पाठ या प्रकरण के प्रति रूचि, इच्छा तथा उसे ग्रहण करने या समझने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करने से है जिससे विद्याथियों को अधिगम हेतु तत्परता विकसित की जा सकें।

- ज्ञान को व्यवस्थित या संरचित करना- शिक्षण विषयवस्तु या सामग्री के फलस्वरूप प्रदान किए जाने वाले ज्ञान या अनुभव को प्रभावशाली प्रकार से व्यवस्थित या संरचित होना चाहिए कि

विद्यार्थी ज्ञान या अनुभव को भली-भांति समझ या ग्रहण कर सके तथा उन्हें अनुप्रयोग में लाने के किए सुविधाजनक हो। यह अपने आप में यथार्थ सत्य है कि विद्यार्थी को किसी विषय विशेष से सम्बंधित सभी पक्षों का ज्ञान एक साथ नहीं हो सकता है। शिक्षक का प्रयास इतना होना चाहिए कि विद्यार्थी अपने स्तर व अवस्था के अनुकूल के अनुकूल विषय या प्रकरण से सम्बंधित आधारभूत ज्ञान या अनुभव संरचना जान व समझ सके। शिक्षक से यह अपेक्षा रहती है कि वह प्रकरण या पाठ का व्यवस्थापन या संरचना इस प्रकार करे कि विद्यार्थी सहजता पूर्वक अपनी समझ और अनुभव संरचनाओं को विकसित कर सकें।

- विषय या अधिगम सामग्री का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण- कोई भी नया पाठ या प्रकरण तभी विधार्थी के लिए प्रभावशाली तथा रुचिपूर्ण हो सकता है जब वह विद्यार्थी के पूर्ववर्ती ज्ञान व अनुभव संरचनाओं के संज्ञानात्मक विकास के परिप्रेक्ष्य में या ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया होगा। इस लिए शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी विषय या अधिगम सामग्री को क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण इस प्रकार नियोजित करे कि वह विद्यार्थी के पूर्ववर्ती संज्ञानात्मक विकास से सम्बंधित रहे। विषयवस्तु या अधिगम प्रस्तुतीकरण क्रमिक रूप से ब्रूनर के तीन स्तरों के अनुरूप हो अर्थात पहले स्तर पर स्थूल वस्तुओं व अनुभव के रूप मे, दूसरे स्तर में मानसिक बिम्बों के रूप में और तीसरे स्तर पर प्रतीकों या संकेतों के माध्यम से चिंतन प्रवृति विकसित करने वाला होना चाहिए।
- **उचित पुनर्बलन प्रदान कारण-** ब्रूनर ने अपने संज्ञानात्मक सिद्धांत द्वारा यह विचार रखा कि विद्यार्थियों के अधिगम सफलता के प्रतिफल स्वरुप पुनर्बलन प्रदान करने सम्बन्धी तकनीकी में शिक्षक को प्रवीण एवं दक्ष होना चाहिए। पुनर्बलन प्रदान करते समय वाह्य पुनर्बलन की अपेक्षा आन्तरिक पुनर्बलन प्रदान करने की चेष्टा करनी चाहिए। ब्रूनर का मानना था कि पारितोषिक एवं सजा या दण्ड के रूप में प्रदान किए जाने वाले वाह्य पुनर्बलक विद्यार्थियों में स्वतन्त्र रूप से चिंतन करने, कार्य करने एवं समस्या समाधान करने की प्रवृति के समुचित विकास तथा प्रकटन में बांधा का कार्य करते है क्योकि इनके माध्यम से शिक्षक निश्चित परिपाटी में अधिगम को करवाना चाहते है या उनकी पुनरावृत्ति अपेक्षित रखते है। इससे विद्यार्थियों की सृजनात्मक योग्यताओं के विकास के अवसर समाप्त हो जाते है।

ब्रूनर के द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत ने शिक्षण एवं अनुदेशन के विषय में व्यापक दृष्टीकोण का विकास किया। इनके सिद्धांत के विषय मे कहा जाता है कि यह वर्णनात्मक या उपचारात्मक होने के साथ-साथ नियामक या मानक भी है। इसे वर्णनात्मक या उपचारात्मक इसलिए कहा जाता है क्योकि यह अनुदेशन उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण सम्प्राप्ति के लिए विभिन्न नियमों एवं मान्यताओं का वर्णन कर इन्हें उपचारात्मक तरीके से प्रयोग में लाने के अवसर उपलब्ध कराता है और नियामक या मानक इसलिए स्वीकार किया जाता है क्योकि यह शिक्षकों के लिए शिक्षण अधिगम परिस्थितियों में परिमार्जन हेतु मानक एवं मानदंड स्थापित करने का प्रयास करता है जिनके

अनुपालन से शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को उद्देश्यपूर्ण एवं सहज बनाया जाता है। इन्होनें अपने सिद्धांत में प्रमुख रूप से विद्यार्थियों को स्वतन्त्र अध्ययन, कार्य व क्रिया करने, खोज करने तथा समस्या-समाधान करने सम्बन्धी योग्यताओं और क्षमताओं के विकास को प्राथमिकता दी है। इनके सिद्धांत के विश्लेषण से शिक्षकों के मार्गदर्शन लिए निम्न दिशा-निर्देश ग्रहण किए जा सकते है-

- विद्यार्थियों की स्वाभाविक रुचियों एवं जिज्ञासा शैली को उपयोग में लेते हुए शिक्षण नियोजित करने का प्रयास किया जाए।
- परम्परगत शिक्षण प्रवृतियों के स्थान पर नूतन शिक्षण प्रवृतियों को अधिक प्रयोग में लाया जाए। इसमें यह ध्यान रखा जाए कि विद्यार्थियों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने, खोज करने, चिंतन करने, अधिगम करने तथा ज्ञान व अनुभव प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध होने चाहिए।
- शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों तथा संसाधनों का आयोजन एवं नियोजन इस प्रकार का होना चाहिए कि अधिगम उद्देश्यों की पूर्णता की सार्थकता के साथ-साथ विद्यार्थियों में अधिगम हेतु तत्परता, उत्सुकता, जिज्ञासा तथा अभिप्रेरणा बनी रहे।
- शिक्षक को शिक्षण द्वारा सब कुछ बता देने या ज्ञान परोशने या रटने या सुनाये गए या पढाएं गए विचारों तक सीमित रहने की परिपाटियों से मुक्त होना होगा तभी वह विद्यार्थियों के लिए संज्ञानात्मक विकास का आधार प्रदान कर पाएगा।
- शिक्षकों को ज्ञान प्रदान करने की अपेक्षा ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के संबंध में उचित मार्गदर्शन विद्यार्थियों को दिया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को विद्यार्थी के अधिगम समाप्ति या वांछित परिणाम प्राप्त होने पर पुनर्बलन अवश्य देना चाहिए। वाह्य पुनर्बलन की अपेक्षा आन्तरिक पुनर्बलन अधिक प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

2.6 पियाजे और ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में समानताएं एवं असमानताएं

पियाजे एवं ब्रूनर दोनों मनोवैज्ञानिकों से संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन दोनों के संज्ञानात्मक विकास प्रक्रिया में कुछ समानताएं एवं असमानताएं है। इनकी चर्चा नीचे तालिका में की जा रही है-

ब्रूनर और पियाजे के सिद्धांत की समानताएं	ब्रूनर और पियाजे के सिद्धांत की असमानताएं
बच्चे पूर्ववर्ती अनुकूलन के आधार पर अधिगम करते है।	ब्रूनर विकास को एक सतत प्रक्रिया मानते है जबकि पियाजे इसे विभिन्न चरणों की श्रृंखला मानते है।
बच्चों में एक स्वाभाविक रूप भाषा के विषय में जिज्ञासा	ब्रूनर भाषा विकास को संज्ञानात्मक विकास का एक महत्वपूर्ण

होती है।	कारक मानते हैं जबकि पियाजे इसे संज्ञानात्मक विकास का एक परिणाम के रूप में स्वीकार करते है।
बच्चों की संज्ञानात्मक संरचनाएं समय के साथ-साथ विकसित होती रहती है।	ब्रूनर का मानना है कि संज्ञानात्मक विकास की गति को बढ़ाया जा सकता है, बच्चों के लिए तैयार होने का इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है जबकि पियाजे का मानना है कि बच्चों में संज्ञानात्मक विकास स्तर और परिपक्वता के अनुकूल स्व-गति से होता है।
बच्चे अधिगम प्रक्रियाओं में सक्रिय सहभागिता लेते हुए अधिगम करते है।	ब्रूनर वयस्कों एवं अधिक ज्ञानी या जानकार साथियों की अधिगम प्रक्रिया में प्रतिभागिता को महत्व देता है। जबकि पियाजे ऐसा नहीं स्वीकार करते है।
संज्ञानात्मक विकास का अन्तिम चरण या सीमा प्रतीकों या संकेतों या चिन्हों के अभिग्रहण तक चलता है और प्रमुखता भी इन्ही की दी गई है।	ब्रूनर का मानना है कि प्रतीकात्मक चिंतन के पूर्व में अपनाए के तरीकों के प्रतिनिधित्व का स्थानापन्न नहीं होता है। जबकि पियाजे का मानना है कि ये बदल जाते है।

अभ्यास प्रश्न

5. ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास की कितने चरणों का वर्णन किया है?
6. संज्ञानात्मक विकास की किस चरण में बच्चे मानसिक बिम्बों का प्रयोग चिंतन के लिए करते है?
7. प्रतीकात्मक चरण में विद्यार्थी किसके आधार पर प्रतीकों व सकेतों का आशय समझते है?
8. ब्रूनर ने विद्यार्थियों को किस प्रकार के पुनर्बलन को अधिक प्रयोग में लाए जाने की वकालत की?
9. संज्ञानात्मक विकास को कौन एक सतत प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करता है?

2.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत संज्ञानात्मक विकास के विकासात्मक अवधारण एवं दो प्रमुख संज्ञानात्मक सिद्धांतों की व्याख्या की गई है। इसमें पियाजे तथा ब्रूनर के संज्ञानात्मक के विभिन्न चरणों या अवस्थाओं, उनसे संबधित क्रियाओं व प्रक्रियाओं एवं शैक्षिक परिस्थितियों में इनके निहितार्थ का वर्णन किया गया है। पियाजे एवं ब्रूनर के संज्ञानात्मक सिद्धांत की प्रमुख समानताओं एवं असमानताओं की भी चर्चा की गई है।

2.9 शब्दावली

1. **संज्ञान:** इससे तात्पर्य बुद्धि की उन आन्तरिक प्रक्रियाओं और उत्पादों से है, जो जानने या समझने या ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयोग में लायी जाती हैं। ।
2. **संज्ञानात्मक विकास:** इससे तात्पर्य बच्चे में किसी संवेदी सूचना को ग्रहण करके उस पर चिंतन करने एवं व्यवस्थित करने तथा उसे अर्थपूर्ण बना लेने से है।
3. **अनुकूलन:** इससे तात्पर्य अपने आस-पास के वातावरण से अंतक्रिया करने तथा वातावरण के साथ समंजन करने की जन्मजात प्रवृति से है।
4. **संज्ञानात्मक संरचना:** संज्ञानात्मक संरचनाएं एक आधारभूत मानसिक प्रक्रियाएं के रूप में लोगों द्वारा सूचना या जानकारी की समझ बनाने से सम्बंधित होती है। एक संज्ञानात्मक संरचना में कई मानसिक प्रक्रियाओं का समुच्चय निहित रहता है।
5. **आत्म-केन्द्रिता:** इससे तात्पर्य स्वयं को केन्द्र में रखते हुए विचारों के आत्मनिष्ठ स्वरुप से है।

2.10 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. गुस्ताव निस्सर
2. निस्सर
3. चार
4. अमूर्त संक्रियात्मक स्तर
5. चार से सात वर्ष
6. तीन
7. प्रतिबिम्बात्मक अवस्था
8. भाषा के आधार पर
9. आतंरिक पुनर्बलन
10. ब्रूनर

2.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, ए., (2004) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान , शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद
2. मंगल, एस. के., (2009) शिक्षा मोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
3. Mcleod, saul , (2015) Jean Piaget, Simply Psychology Retrieved by

4. http://www.simplypsychology.org/piaget.html
5. Hill, Grahame (2001) AS Level Psychology through diagrams, Oxford University Press, New York.
6. Smith, P. K., Cowie, H. and Blades, M., (2015) Understanding Children's Development Retrieved from
7. www.wiley.com/college/smith

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञान को परिभाषित करते हुए संज्ञानात्मक विकास के महत्व को स्पस्ट कीजिए?
2. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?
3. शैक्षिक परिदृश्य में पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत की उपदेयता को स्पस्ट कीजिए?
4. संज्ञानात्मक विकास से आप क्या समझते है, आप के दृष्टिकोण से संज्ञानात्मक विकास का कौन सा सिद्धांत सबसे उपयुक्त है, कारण सहित विवेचना कीजिए?
5. ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को स्पस्ट कीजिए?
6. ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ की विवेचना कीजिए?
7. ब्रूनर तथा पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत को स्पस्ट करते हुए इसकी समानताओं एवं असमानताओं का वर्णन कीजिए?
8. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत में प्रयुक्त महत्वपूर्ण प्रत्ययों का वर्णन कीजिए?

इकाई 3- अधिगम सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में

Learning as a Socio-Cultural Process

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अधिगम सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में
3.4 बैण्डूरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत
  3.4.1 अवलोकन अधिगम
  3.4.2 मध्यस्थता प्रतिक्रियाँ
  3.4.3 बैण्डूरा का 'बो-बो डाल' अध्ययन
  3.4.4 बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत का मूल्यांकन
  3.4.5 बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग
3.5 लिव सिमनोविच वाइगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत
  3.5.1 वाइगोत्सकी के संज्ञानात्मक विकास के मुख्य सिद्धांत सम्भावित विकास का क्षेत्र
  3.5.2 वाइगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग एवं मूल्यांकन
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में हमने संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धांत के अंतर्गत पियाजे तथा ब्रूनर के अधिगम के बारे में अध्ययन किया। उनके सिद्धांत 20 वीं सदी की अधिगम प्रक्रिया को दर्शाते है। इसलिए उनके सिद्धांत को आधुनिक संज्ञानात्मक सिद्धांत के श्रेणी में रखा गया है । उसी श्रेणी में बैण्डूरा तथा वाइगोत्सकी के योगदान को भी रखा गया है। इस इकाई में हम बैण्डूरा का सामाजिक अधिगम सिद्धांत तथा वाईगोत्सकी के समाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया का अर्थ बता सकेंगे तथा उनके उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे।
2. बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
3. वाइगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
4. सांस्कृतिक सिद्धांत के शैक्षिक अनुप्रयोग को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 अधिगम सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में

सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया बालकों के अधिगम तथा संज्ञानात्मक विकास पर दृष्टिपात करता है । इसके अनुसार बालक का विकास सदियों से चिन्ह, भाषा, तकनीकी तथा सामाजिक संस्थाओं से विकसित व प्रभावित होता आया है। यह इस बात पर भी बल देता है कि बालक का संज्ञानात्मक विकास उसके माता-पिता, भाई-बहन, समुदाय में रहने वाले सगे-साथी या अन्य वयस्कों द्वारा होता है जो समाजिक व मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा उसे समय-समय में प्रभावित करते रहते है तथा उनके संज्ञानात्मक विकास को भली भाँति विकसित करने में मदद करते हैं । वे प्रतिरूपण (modelling), निर्देशन (instruction), परामर्श (guidance) तथा सहयोगी क्रियाओं (combined activities) द्वारा उनको अधिगम करने का अवसर प्रदान करते हैं। ये अवसर पूर्णरूपेण बालक की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं जो कि औपचारिक व अनौपचारिक परिपेक्ष में उपस्थित होकर बालक को स्वयं तथा अन्य लोगों के साथ क्रिया करने में सहायता प्रदान करते है। समाज में संचालित करने वाले उपकरण बालकों को केवल बाह्य उद्दीपकों से अवगत नहीं कराते बल्कि वे सांस्कृतिक अर्थों के समवाहक होते हैं। जब बालक इन क्रियाओं को करते हैं तो वे रचना करते हैं (create), मध्यस्थता करते हैं (negotiate) तथा आगे ले जाते हैं (carry forward)। इन क्रियाओं द्वारा वे इन नवग्रहित अर्थो को अपने क्रिया कलापों में ढालते हैं ।ये क्रियाये तभी घटित होती हैं जब बालक अकेले ही कार्य कर रहा हो या किसी दूसरे के साथ हो ।

अधिगम द्वारा वह संस्कृति के परम्परागत विचारों व कृत्रिम व्यवहारों को अपनाता है, अपने अनुकूल करता है या फिर छोड़ देता है। इस प्रकार संस्कृति व बालक का विकसित होता हुआ मन जुड़ जाता है और मानव अनुभवों के स्तरों में परिवर्तन होता है।

3.4 बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत

अल्बर्ट बैण्डूरा Albert Bandura (1977) ने अपने सामाजिक अधिगम सिद्धांत में शास्त्रीय अनुबन्धन (classical conditioning) व क्रिया – प्रसूत (operant conditioning) अनुबन्धन को स्वीकार किया है। यधपि उन्होंने दो और महत्वपूर्ण विचारों का वर्णन किया जो इस प्रकार हैं –

i. मध्यस्थता प्रक्रिया (mediating process) जो उत्तेजनाओं और प्रतिक्रियाओं के बीच होती है।
ii. अवलोकनात्मक प्रक्रिया (observational learning) जिसके द्वारा व्यवहार पर्यावरण से सीखा जाता है।

3.4.1 अवलोकन या निरीक्षणात्मक अधिगम (Observational Learning)

बैण्डूरा का सिद्धांत निरीक्षणात्मक अधिगम पर बल देता है। उनका मानना है कि बच्चे अपने आसपास के लोगों के व्यवहार के विभिन्न तरीकों का निरीक्षण करते हैं। बैण्डूरा (1961) ने इसे अपनी प्रसिद्ध 'बोबो गुडिया के प्रयोग' (Bo-Bo doll experiment) द्वारा दर्शाया है। जिन लोगों को देखकर वे सीखते हैं उन्होंने उसे माँडल (आदर्शो) की संज्ञा दी। समाज में बच्चे अपने आदर्शो से सीखते हैं। वे परिवार के सदस्य जैसे माता-पिता, बड़ा भाई या बहन, टी. वी. के काल्पनिक पात्र, कोई मित्र या स्कूल में अध्यापक को अपना आदर्श मानते हैं और उनके व्यवहारों को ध्यानपूर्वक देखते हैं और अपने व्यवहार में सम्मलित करने की कोशिश करते हैं चाहे वह लिंगानुसार हो या नहीं।

सामान्यतया बालक वही व्यवहार करता है जो समाज उचित समझता है। लोग उसके व्यवहार को पुरस्कृत करेंगे या दण्डित करेंगे। अगर बालक ने माँडल के व्यवहार का अनुकरण किया और उसे पुरस्कृत किया गया तो वह व्यवहार बार-बार दोहराएगा। उदाहरण के लिए 'टेड्डी बेयर'(Teddy bear) को सांत्वना देते देख अगर माता-पिता अपने बच्ची को कहते है 'तुम एक दयालु लड़की हो' तो वह उसे पुरस्कार की तरह लेगी और उस व्यवहार को दोहराएगी। इस प्रकार उसके व्यवहार को पुनर्बलन मिलता है जो उसके व्यवहार को पुनर्बलित करता है। पुनर्बलन आंतरिक या बाह्य तथा सकारात्मक या नकारात्मक हो सकता है। यदि बच्चा अपने माता-पिता से सहमति चाहता है तो उसे बाह्य पुनर्बलन कहते हैं लेकिन स्वीकृति मिलने से जो प्रसन्नता मिलती है उसे आंतरिक पुनर्बलन कहते हैं। बालक दूसरे के व्यवहार का परिणाम देखकर भी सीखता है जैसे कि बड़े भाई-बहन के कोई कार्य को शाबाशी मिलने पर छोटे भाई-बहन द्वारा उस कार्य का अनुकरण करना।

बैण्डूरा के अनुसार इसे तादात्मीकरण (identification) कहते है। तादात्मीकरण तब होता है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के निरीक्षित व्यवहार, मूल्य, विश्वास तथा अभिवृति के साथ अपने को तादात्मीकृत करता है। सामाजिक अधिगम सिद्धांत में तादात्मीकरण शब्द का प्रयोग फ्रायड (Freud) के इडिपस मनोग्रंथि (Oedipus Complex) के समान है क्योंकि दोनों में किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का आंतरिकरण (internalize) होता है। यधपि इडिपस मनोग्रंथि में बालक केवल अपने ही लिंग के माता-पिता के व्यवहार को पहचानते है जबकि तादात्मीकरण में वह किसी भी दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को पहचान सकता है। तादात्मीकरण तथा अनुकरण मे भी अंतर है। अनुकरण में केवल एक ही व्यवहार का अनुकरण होता है जबकि तादात्मीकरण में विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को सम्मलित किया जा सकता है।

3.4.2 मध्यस्थता प्रक्रिया (Mediational Process)

बैण्डूरा (1977) ने अपने सामाजिक अधिगम सिद्धांत में स्किनर के विपरीत मनुष्य को 'सक्रिय सूचना संसाधक' (active information processor) माना है। व्यक्ति व्यवहार व उसके परिणाम के मध्य सम्बन्ध ढूँढ़ सकता है।वह माँडल के उसी व्यवहार को अपनाता है जिसे वह ठीक समझता है। इस प्रक्रिया को बैण्डूरा ने मध्यस्थता प्रक्रिया की संज्ञा दी है।

बैण्डूरा ने अपने सिद्धांत में चार मध्यस्थता प्रक्रियाओं का वर्णन किया –

1. **अवधान Attention-** बालक अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन किसी न किसी व्यवहार से अवगत होता है। परन्तु किसी भी व्यवहार का अनुकरण करने के लिए उसका उस पर ध्यान केंद्रित होना चाहिए या वह उस ओर आकर्षित होना चाहिए। इसलिए बैण्डूरा ने मध्यस्थता प्रक्रिया में अवधान का होना आवश्यक माना है।
2. **धारण (Retention) -** बालक प्रतिदिन अनेक प्रकार के व्यवहार देखता है परन्तु वह उसका अनुकरण नहीं करता क्योंकि वह उसे याद नहीं रहता। इसलिए बैण्डूरा ने व्यवहार में स्मृति का होना अनिवार्य माना है जिससे कि बालक उसे धारणा कर अपने जीवन में उसका उपयोग कर सके। चूँकि सामाजिक अधिगम तात्कालिक नहीं होता है इसलिए किसी व्यवहार को देखने के उपरान्त उसके पुनर्उत्पादन हेतु स्मृति का होना आवश्यक है।
3. **पुनर्उत्पादकता (Reproduction) -** माँडल द्वारा किए गए व्यवहार को करने की क्षमता को पुनर्उत्पादकता कहते हैं। हम अपने दैनिक जीवन में कई प्रकार के व्यवहार देखते हैं जिनका हम अनुकरण करना चाहते हैं। किन्तु यह सदैव संभव नहीं होता है, क्योंकि हमारी शारीरिक योग्यता की सीमायें होती हैं जिसके कारण हम बहुत से व्यवहारों को चाह कर भी नहीं कर पाते हैं। उद्दाहरण के लिए, साठ साल की उम्र में हम चाह कर भी सोलह साल की तरह कोई शारीरिक कार्य जैसे 'आइस –स्केटिंग' नहीं कर सकते।

4. **अभिप्रेरणा (Motivation)-** व्यवहार को करने की इच्छाशक्ति को अभिप्रणा कहते हैं। यह पुरस्कार व दंड पर निर्भर करता है। यदि किसी भी व्यवहार को करने से बालक को प्रोत्साहन मिलता है तो वह उस व्यवहार को दोहराने के लिए प्ररित होगा व दंड उसे उस व्यवहार को करने से रोकेगा। बैण्डूरा का अभिप्रेरणा का सिद्धांत थार्नडाइक के प्रभाव के नियम को दर्शाता है।

3.4.3 बैण्डूरा का 'बो-बो डाल' अध्ययन (Bandura's Bobo Doll Study)

1961 में बैण्डूरा ने 3-6 वर्ष के बीच Standford University Nursery School के 36 बालकों व 36 बालिकयों पर आक्रामक व्यवहार का अध्ययन किया। उन्होंने प्रयोग में तीन प्रकार के समूह बनाये -

1. पहले समूह को आक्रमक माँडल दिखाया गया।
2. दूसरे समूह को गैर-आक्रमक माँडल दिखाया गया।
3. तीसरे समूह को कोई भी माँडल नहीं दिखाया गया।

कुछ समय बाद बैण्डूरा ने तीनों समूह के बालक –बालिकाओं को एक कमरे में रखा जहां आक्रमक खिलोने जैसे कि बंदूक, बो-बो गुडिया , हथोड़े रखे और दूसरी ओर गेर-आक्रामक खिलोने जैसे कि क्रेयॉन, चाय का सेट, प्लास्टिक के जानवर रखे थे। इस प्रयोग द्वारा यह पाया गया कि जिन बच्चों ने आक्रमक व्यवहार देखा था उनके व्यवहार सबसे अधिक आक्रमक थे। दूसरा समूह जिनको गैर-आक्रमक माँडल दिखाया गया, वे कम आक्रमक थे ओर तीसरे समूह जिन्हें कोई भी माँडल नहीं दिखाया गया वे शांत थे।

इस प्रयोग द्वारा इन बातों पर ध्यान आकर्षित होता है –

1. बालक व्यवहार का अनुकरण करते है।
2. माँडल व्यवहार दूसरो को समान व्यवहार करने का संकेत देता है।
3. माँडल व्यवहार समान तरीके से व्यवहार करने में अधिगमकर्ता के समझ आने वाली बाँधाओ को नियंत्रित करता है।
4. माँडलिंग नए तरह के व्यवहार प्रदर्शित करते हैं।

3.4.4 बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत का मूल्यांकन

समाजिक अधिगम सिद्धांत मानव अधिगम का विस्तृत व्याख्या करता है। इस सिद्धांत में विचार प्रक्रिया को ध्यान में रखा गया है। बालक अपनी बुद्धि का प्रयोग कर यह निश्चय लेता है कि वह उस व्यवहार का अनुकरण करे या नहीं। यह सिद्धांत व्यवहार के कई जटिल पक्षों को स्पष्ट करता है किन्तु हमारे सम्पूर्ण व्यवहार जिसमें कि विचार व भावनायें संहित हैं उनको स्पष्ट करने में सक्षम नहीं है। हमारे अपने व्यवहार पर कई प्रकार के संज्ञानात्मक नियंत्रण होते हैं क्योंकि असफलता के डर से या नकारात्मक व्यवहार के कारण हम किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार नहीं करते- जैसे कि हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसी कारण

बैण्डूरा ने 1986 में अपने सिद्धांत में सुधार किया और इसे सामाजिक अधिगम सिद्धांत से सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धांत का नाम दिया क्योंकि यह सिद्धांत हमारे सामाजिक अनुभवों के द्वारा अधिगम का विस्तार से वर्णन करता है।

पर्यावरण को हमारे व्यवहार को प्रभावित करने का मुख्य कारक मानने के रूप में भी इस सिद्धांत की आलोचना की जाती है। क्योंकि ये विचार व्यवहार को केवल प्रकृति तथा उसके प्रभाव तक ही सीमित रखते हैं जिसके फलस्वरूप मानव व्यवहार की जटिलता का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाते। मानव व्यवहार उससे भी अधिक है क्योंकि व्यवहार का कारण प्रकृति (nature) और पर्यावरण (nurture or environment) के मध्य का अंतः क्रिया है।

3.4.5 बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग

1. सामाजिक अधिगम सिद्धांत में बैण्डूरा ने अवलोकन द्वारा सीखना (observational learning), अनुकरण (imitation) और माँडलिंग (modelling) को सीखने में एक अहम् स्थान दिया है। संभवतः बालक अन्य लोगों को देखकर सीखता है।
2. व्यवहार के परिणाम को वर्णित करने से उचित व्यवहार का प्रबल होना तथा अनुचित व्यवहार का कम होना संभव है। शिक्षक को चाहिए कि वह सही व गलत व्यवहार के परिणाम छात्रों को समय-समय पर उदाहारण द्वारा समझाते रहे।
3. माँडलींग नए व्यवहार को आकार देने के लिए एक विकल्प प्रदान करता है।
4. शिक्षक व माता-पिता को बालकों के सामने अनुचित व्यवहार कतई नहीं करना चाहिए क्योंकि बालक अपने से बड़ों का अनुकरण करता है।
5. छात्रों के सामने शिक्षक को कई प्रकार के माँडल प्रस्तुत करने चाहिए।
6. शिक्षक को छात्रों के अन्दर विश्वास जगाना चाहिए जिससे वे हर कार्य में सफलता प्राप्त कर सकें।
7. माँडलिंग द्वारा यह दर्शाया गया कि बालकों पर मीडिया हिंसा का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है इसलिए उन्हें हिंसक चलचित्र नहीं दिखाने चाहिए।
8. शिक्षक को अपने छात्रों से वास्तविक उपलब्धियों की अपेक्षा करनी चाहिए।
9. स्व-विनियमन (self-regulation) तकनीकी व्यवहार में सुधार हेतु प्रभावी तरीके प्रदान करते है।
10. शिक्षक देखें कि छात्र केवल अनुकरण ही न करें बल्कि अपने अनुभवों द्वारा प्रेरणा लेते हुए अपनी स्मृति द्वारा धारण करें।

अभ्यास प्रश्न

1. बैण्डूरा के सिद्धांत में चार मध्यस्थता प्रतिक्रियाँ कौन- कौन से है ?
2. व्यवहार को करने की इच्छाशक्ति को_____ कहते है।

3. बैण्डूरा ने अपनी प्रसिद्ध 'बोबो गुडिया का प्रयोग' सन्_____किया।
4. _____ने अपने सिद्धांत में चार मध्यस्थता प्रतिक्रियाँ का वर्णन किया।
5. सामाजिक अधिगम सिद्धांत में बैण्डूरा ने_____, _____और _____ को सीखने के कार्य हेतु एक अहम् स्थान दिया है।

3.5 लिव सिमनोविच वाइगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत

सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत मनोविज्ञान में एक नवीन सिद्धांत है जो मानव विकास में समाज के योगदान को बताता है। यह सिद्धांत संस्कृति व मानव विकास के उन अंतरसम्बन्धो पर जोर देता है जिसमे वे रहते हैं। यह सिद्धांत इस बात पर विश्वास करता है कि मानवीय अधिगम एक सामाजिक प्रतिक्रिया है।

वाइगोत्सकी का सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत (Vygotsky's Social Cultural Theory)

लिव वाइगोत्सकी (1896-1934) फ्रायड, स्किनर व पियाजे जैसे मनोविज्ञानकों के समकालीन ही थे। किन्तु अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त होने के कारण इनका कार्य आगे नहीं बढ़ पाया। इन्होंने बाल विकास व बौद्धिक विकास के क्षेत्र में व्यापक कार्य किया। वाइगोत्सकी के अनुसार अधिगम दो स्तरों पर होता है –

i. प्रथम स्तर पर दूसरों के साथ अंतःक्रिया द्वारा। जब बालक अंतःक्रिया करता है तब सूँचनायें स्वतः ही व्यक्तिगत स्तर पर एक दूसरे से जुड़ती चली जाती हैं।
ii. दि्तीय स्तर पर सीखा हुआ ज्ञान बालक की मानसिक संरचना में एकीकृत होता है।

पियाजे की तरह वाइगोत्सकी भी यह मानते थे कि बच्चे ज्ञान का निर्माण करते हैं किन्तु इनके अनुसार संज्ञानात्मक विकास एकाकी नहीं हो सकता। यह भाषा विकास, सामाजिक विकास तथा शारीरिक विकास के साथ-साथ सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ में भी होता है।

वाइगोत्सकी के अनुसार, बलाक के सांस्कृतिक विकास में प्रत्येक क्रिया दो तरह से होती है- पहले सामाजिक स्तर (social level) पर और बाद में व्यक्तिगत स्तर (individual level) पर। दूसरे शब्दों में, पहले लोगों के बीच यानी अन्तर्मनोवैज्ञानिक (interpsychological) और बाद में बालक के अन्दर यानी अन्तः मनोवैज्ञानिक (intrapsychological)। इसी प्रकार सभी उच्चस्तरीय क्रियाये जैसे की अवधान (attention) स्मृति (memory) और प्रत्यय निर्माण (concept formation) में भी इसी प्रकार होता है। उन्होंने जैविक कारक से ज्यादा सामाजिक कारक को उच्चतर संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओ जैसे भाषा, स्मृति व अमूर्त चिंतन को महत्वपूर्व भूमिका के रूप में देखा। अतः हम यह कह सकते है कि पियाजे का सिद्धांत जो जैविकता और अधिगम को महत्व देते है से विपरीत वाइगोत्सकी का सिद्धांत है

जो अधिगम और विकास को संस्कृतिक व सामाजिक वातावरण कि मध्यस्थता के साथ जोड़ता है। इस प्रकार सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियाँ को उन्होंने बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका बताई है।

3.5.1 वाइगोत्सकी के संज्ञानात्मक विकास के मुख्य सिद्धांत (Main Principles of Vygotsky's Theory of Cognitive Development)

i. **मार नॉलेजेएबल्ल ऑदर (More Knowledgeable Others -MKO) -**वाइगोत्सकी के अनुसार विचारों (thoughts), मूल्यों (values), तकनीकियों (techniques) तथा भाषा का ज्ञान (knowledge of language) बालक किसी बड़े व्यक्ति जैसे माता-पिता, शिक्षक, सहयोगी या प्रौद्योगिकी (technology) द्वारा सीखता है । इन पक्षो को उन्होंने 'माँर नॉलेजेएबल्ल अदर'(MKO) की संज्ञा दी है।

ii. **ढाँचा निर्माण (Scaffolding) -**वाइगोत्सकी के अनुसार ढाँचा निर्माण एक तकनीक है जो सहायता के स्तर में परिवर्तन करती है। शिक्षण करते समय शिक्षक या अधिक कौशल सहयोगी को अधिगमकर्ता के समसामयिक निष्पादन के अनुसार अपने परामर्श को समायोजित करना पड़ता है। जैसे कि छात्र को नए तरीके की समस्या में अधिक निर्देशन देना पड़ता है परन्तु छात्र जैसे-जैसे अभ्यास करता है, निर्देशन की संख्या कम होती जाती है। इसी प्रकार जब कोई बड़ा व्यक्ति जैसे कि माता-पिता या शिक्षक बालक को कोई खेल या व्यवहार सिखाता है, उससे अन्तःक्रिया करता है, इस क्रिया को उन्होंने ढाँचा निर्माण की संज्ञा दी। वाइगोत्सकी के अनुसार, ढाँचा निर्माण में सवांद एक महत्वपूर्ण साधन है। बालक जब कुशल सहायक के साथ सवांद करता है तो परिणामस्वरूप उसके विचार संगठित, तर्कपूर्ण और औचित्यपूर्ण हो जाते हैं।

iii. **संभावित विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development)-** वाइगोत्सकी के अनुसार बालक क्षमताओं की सीमाओं में बंधा है इसलिए वह कुछ कार्य एकाकी रूप में नहीं कर पाता। परन्तु जब उसे अपने से अधिक कुशल बालक या परिवार का सदस्य जैसे माता-पिता, बड़ा भाई-बहन या शिक्षक उसकी सहायता करता है तो उसकी क्षमता और अधिक हो जाती है। अर्थात बच्चा जो कर रहा है और जो करने की क्षमता रखता है के बीच के क्षेत्र को संभावित विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development) कहा जाता है।

उद्दाहरण 1: बालक को रेखा खींचना या चकोर बनाना आता है परन्तु वह घर का चित्र नहीं बना सकता और यदि कोई बड़ा व्यक्ति उसे सिखाता है तो बालक आसानी से उसकी मदद लेते हुए घर का चित्र बना लेगा और फिर कुछ अभ्यासों के बाद बिना मदद के भी वह चित्र बना लेगा।

उद्दाहरण 2: दो बालकों का बुद्धि परिक्षण किया गया जिसमें उनकी मानसिक आयु 8 वर्ष आँकी गई। इसके पश्चात् संभावित विकास के क्षेत्र को आँकने हेतु यह प्रयास किया गया कि वे किस स्तर तक अपने से उम्र में बड़े बच्चो के लिए तैयार की गई समस्या पर कार्य कर सकते हैं। उन्हें 'प्रश्न-विधि' तथा 'समस्या

समाधान विधि' दी गयी। इस प्रयोग में वयस्क की सहायता से एक बालक 9 वर्षीय बच्चों के लिए बनाई गई समस्या का हल कर सका व दूसरा 12 वर्षीय बच्चे के लिए बनाई गई समस्या का हल कर सका। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी वयस्क (adult) के मदद से बालक की क्षमता बढ़ाई जा सकती है।

iv. **भाषा और खेल (Language and Play)-** वाइगोत्सकी के अनुसार बलाक के विकास में भाषा एवं खेल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बालक भाषा का प्रयोग सामाजिक संप्रेषण में ही नहीं अपितु वह स्व-निर्देशित कार्य, निर्देशन देने, अपने व्यवहार में योजना बनाने व मूल्यांकन करने के लिए करता है । उन्होंने भाषा को तीन स्तरों में दर्शाया है – समाजिक (social), व्यक्तिगत/स्वकेंद्रित (private/ego-centric) और आत्मभाषा (inner speech)। जब बालक जोड़ सीखता है तो वह अपनी उंगलियो में गिनते हुए खुद को समझाता है दो और दो चार होते है। वह खुद से बाते कर रहा होता है। इसे स्वकेंद्रित या व्यक्तिगत भाषा कहते हैं। इस प्रकार जब बालक अपने मन में सोचते हुए कार्य करता है तो उसे आत्मभाषा कहते हैं । उदाहरणत: मानसिक गणित करते हुए बालक अत्मभाषा का प्रयोग करता है।

वाइगोत्सकी के अनुसार खेल बालक के विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे वह आत्म-अनुशासन (self-discipline), आत्म- संतुष्टि (self-gratification), आत्म-अभिबोध (self-appreciation) व आत्म-नियमीकरण (self-regulation) सीखता है । उदाहरण के लिये, यदि कोई व्यक्ति क्रिकेटर बनना चाहता है तो वह रोज़ सुबह उठकर व्यायाम करेगा, कोचिंग लेगा व संतुलित आहार लेगा।

उपयुक्त सिद्धान्तों के आधार पर वाइगोत्सकी अधिगम तथा विकास के संदर्भ में प्रभावी विचार प्रकट करते हैं। वे इस बात पर बल देते हैं कि संज्ञानात्मक विकास की प्रकृति वस्तुतः समाजिक है न की व्यक्तिगत जैसे कि पियाजे ने माना है। इस प्रकार पियाजे का सिद्धांत निर्मितिवाद है जबकि वाइगोत्सकी का सिद्धांत सामाजिक निर्मितिवाद है।

3.5.2 वाइगोत्सकी का सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग एवं मूल्यांकन

1. वाइगोत्सकी के अनुसार क्षमता न तो निहित है और न ही आनुवांशिक। बल्कि बालक सीखने के लिए तत्पर तब होगा जब वह उसके संभावित विकास का क्षेत्र (ZPD) में हो। परन्तु जब सीखना बालक के संभावित विकास के क्षेत्र से बाहर हो जाता है तो वह सीखने की चुनौती को स्वीकार नहीं कर सकता और उसका मनोबल व आत्मविश्वास बिखर जाता है। अत: शिक्षक को चाहिए कि बालक के संभावित विकास के क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही उसे चुनौती दे।
2. बालक का सीखने का लक्ष्य उसकी क्षमताओं और आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए तथा उसकी सफलता उसके गतिशील व बदलते संभावित विकास के क्षेत्र के सन्दर्भ में मापी जानी चाहिए।

3. ढाँचा निर्माण (scaffolding) द्वारा शिक्षक को बालक को चुनौतियों से अवगत कराना चाहिए। उन्हें बालक को निर्देशन देना चाहिए व धीरे-धीरे स्वयं कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. शिक्षक को चाहिए कि साथियों को 'माँर नॉलेजेएबल्ल ऑदर' के रूप में कार्य करने के लिए प्रेरित करे। इसके लिए उन्हें समरूप समूहों (homogenous grouping) की बजाये बहुजातीय समूहों (heterogeneous grouping) में कार्य करने के लिए प्रोत्साहन दें जिससे वे एक दूसरे से सीख सकें।

इस प्रकार इकाई दो तथा इकाई तीन के अध्ययन के पश्चात यह देखने में आया हैं कि एक ओर मनोवैज्ञानिक पियाजे ने जहाँ बालक के विकास व संज्ञानात्मक विकास हेतु आन्तरिक व स्वविकास पर बल दिया हैं, वहीं बैण्डूरा एवं वाइगोत्सकी ने अपने तर्कों एवं प्रयोगों के आधार पर वातावरण, समाज, वयस्क, मित्र, शिक्षक आदि को बालक के विकास को सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रिया का रूप दिया है। अतः बालक के संज्ञानात्मक विकास में बालक द्वारा सांस्कृतिक क्रियाकलापों में योगदान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः शिक्षक, अभिभावक व शुभचिंतकों को बालक को प्रगतिशील वातावरण प्रदान करने में अपनी प्रभावशाली उपयुक्त भूमिका निभाने हेतु सदा प्रयासरत रहना चाहिए। इन्हें अपने व्यवहार व प्रभाव को बालक के संज्ञानात्मक विकास हेतु सकारात्मक योगदान प्रदान करने में अपनी इच्छाओं, शक्तियों व प्रभाव को पूर्णरूपेण प्रयोग करने में कोई कसर नहीं छोड़नी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

6. ढाँचा निर्माण किसे कहते है ?
7. वाइगोत्सकी के अनुसार खेल बलाक के विकास में क्या भूमिका निभाती है?
8. संभावित विकास का क्षेत्र से क्या तात्पर्य है?
9. वाइगोत्सकी के अनूसार, बलाक के सांस्कृतिक विकास में पहले_____स्तर पर और बाद में _____स्तर पर क्रियाएँ होती है।
10. पुत्र का माता पर तथा पुत्री का पिता पर असाधारण प्रेम को _____ कहते है।
11. यदि आप प्राथमिक स्कूल के अध्यापक/अध्यापिका है और आपके कक्षा में पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी (first generation learners) है तो आप निम्मलिखित कथनों में से क्या करना पसंद करेंगे -
    a. छात्रों को कहेंगे की उनकी पढ़ने की क्षमता नहीं है और उनको अपने माता-पिता के काम में हाथ बटाना चाहिए।
    b. उनके माता-पिता को बुलाकर उन्हें ट्यूशन लगाने को कहेंगे।
    c. ढाँचा निर्माण हेतु उनके कक्षाकार्य व गृहकार्य में सहायता प्रदान करेंगे।
    d. उत्तर को कापी में पाँच बार लिखने को देंगे और उसे रटने को कहेंगे ।

12. वाइगोत्सकी के अनुसार, संभावित विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development) किसे कहते है ?
    a. शिक्षक द्वारा सहायता प्रदान करना।
    b. बालक जो कर रहा है और जो करने की क्षमता रखता है के बीच के क्षेत्र को कहते है।
    c. सहायता प्रदान करना जिससे बालक अपने क्षमता प्राप्त कर सके।
    d. जो बालक खुद कर सकता है पर हम उसकी मूल्यांकन नहीं कर सकते।

3.6 सारांश

सामाजिक अधिगम सिद्धांत को अक्सर परम्परागत अधिगम सिद्धांत (व्यवहारवाद) तथा संज्ञानात्मक उपागम के मध्य सेतु के रूप मे वर्णित किया जाता है। इसका कारण यह है कि इस अधिगम में बालक मानसिक (संज्ञानात्मक) कारकों पर अवधान केन्द्रित करता है। यह सिद्धांत मानता है कि समाज गतिशील है और बालक सक्रिय रूप से सामाजिक गतिविधियों में भाग लेता है। इसलिये समाजीकरण द्वारा बालक केवल निष्क्रिय रूप से समाज के तौर तरीके नहीं सीखता बल्कि उसका संज्ञानात्मक विकास उपकरण, चिन्ह व समाज के सदस्यों द्वारा संचालित क्रियाओं से होता है।

बैण्डूरा ने सामाजिक अधिगम सिद्धांत के अंतर्गत अवलोकन द्वारा सीखना (observational learning), अनुकरण (imitation) और माँडलिंग (modelling) को अधिगम में एक अहम् स्थान दिया है। उन्होंने अपने 'बो-बो गुडिया' प्रयोग में बालक को एक वयस्क की अनुकरण करते हुए दर्शाया है संभवतः बालक को अन्य लोगों को देखकर सीखने की बात को स्पष्ट करता है। वाइगोत्सकी ने अपने सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत में ढाँचा निर्माण (scaffolding) तथा संभावित विकास का क्षेत्र (ZPD) जैसे शब्दों द्वारा बालक के सीखने की क्षमता का बयान किया है। इस प्रकार इन सिद्धांतों द्वारा यह ज्ञात होता है कि बालक के सांस्कृतिक क्रिया-कलापो में सहयोग करते हुए उनका संज्ञानात्मक विकास होता है।

3.7 शब्दावली

1. **तादात्मीकरण (identify):-** तादात्मीकरण तब होता है जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के निरीक्षित व्यवहार, मूल्य, विश्वास तथा अभिवृति के साथ अपने को तादात्मीकृत करता है।
2. **अत्मभाषा (inner speech):-**जब बालक अपने मन में सोचते हुए कार्य करता है तो उसे अत्मभाषा कहते हैं। उदाहरणत: मानसिक गणित करते हुए बालक अत्मभाषा का प्रयोग करता है।
3. **माँर नॉलेजेएबल्ल अदर (More Knowledgeable Others -MKO):-** किसी बड़े व्यक्ति जैसे माता-पिता, शिक्षक, सहयोगी या प्रौद्योगिकी (technology) द्वारा बालक सीखता है। इन पक्षों को वाइगोत्सकी ने 'माँर नॉलेजेएबल्ल ऑदर'(MKO) की संज्ञा दी।

4. **माँडल (model):-** जिन लोगों को वे देखकर सीखते हैं उन्होंने उसे माँडल (आदर्शो) की संज्ञा दी। समाज में बच्चे अपने आदर्शो से सीखते हैं। वे परिवार के सदस्य जैसे माता-पिता, बड़ा भाई या बहन, टी. वी. के काल्पनिक पात्र, कोई मित्र या स्कूल में अध्यापक को अपना आदर्श मानते है और उनके व्यवहारों को ध्यानपूर्वक देखते हैं और अपने व्यवहार में सम्मलित करने की कोशिश करते हैं।
5. **मध्यस्थता प्रक्रिया (Mediational Process):-** व्यक्ति व्यवहार व उसके परिणाम के मध्य सम्बन्ध ढूढ़ सकता है।वह माँडल के उसी व्यवहार को अपनाता है जिसे वह ठीक समझता है। इस प्रक्रिया को बैण्डूरा ने मध्यस्थता प्रतिक्रियाँ की संज्ञा दी है।
6. **अवलोकन द्वारा सीखना(observational learning):-** बैण्डूरा का मानना है कि बच्चे अपने आसपास के लोगों के व्यवहार के विभिन्न तरीकों का निरीक्षण करते है व उनका अनुकरण करते है। बैण्डूरा (1961) ने इसे अपनी प्रसिद्ध 'बोबो गुडियाँ प्रयोग' द्वारा दर्शाया है। इसे उन्होंने अवलोकन या निरीक्षणात्मक अधिगम कहा।
7. **मातृ व पितृ मनोग्रंथि (Oedipus/Electra complex):-** पुत्र का माता पर तथा पुत्री का पिता पर असाधारण प्रेम।
8. **स्वकेंद्रित या व्यक्तिगत भाषा (private/ego-centric language)** :-जब बालक जोड़ सीखता है तो वह अपनी उंगलियो में गिनते हुए खुद को समझाता है कि दो और दो चार होते है। वह खुद से बाते कर रहा होता है। इसे स्वकेंद्रित या व्यक्तिगत भाषा कहते है।
9. **ढाँचा निर्माण (scaffolding):-** ढाँचा निर्माण एक तकनीक है जो सहायता के स्तर में परिवर्तन करती है। जब कोई बड़ा व्यक्ति जैसे कि माता-पिता या शिक्षक बालक को कोई खेल या व्यवहार सिखाता है, उससे अन्तःक्रिया करता है, इस क्रिया को वाइगोत्सकी ने ढाँचा निर्माण कि संज्ञा दी।
10. **संभावित विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development):-** बच्चा जो कर रहा है और जो करने की क्षमता रखता है के बीच के क्षेत्र को संभावित विकास का क्षेत्र (ZPD) कहा जाता है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अवधान, धारण, पुनर्उत्पादकता, अभिप्रेरणा
2. अभिप्रेरणा
3. 1961
4. बैण्डूरा
5. अवलोकन सीखना, अनुकरण, माँडलिंग

6. ढाँचा निर्माण एक तकनीक है जो सहायता के स्तर में परिवर्तन करती है। जब कोई बड़ा व्यक्ति जैसे कि माता-पिता या शिक्षक बालक को कोई खेल या व्यवहार सिखाता है, उससे अन्तःक्रिया करता है, इस क्रिया को वाइगोत्सकी ने ढाँचा निर्माण की संज्ञा दी।
7. वाइगोत्सकी के अनुसार खेल बालक के विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इससे वह आत्म-अनुशासन, आत्म- संतुष्टि, आत्म-प्रशंसा व आत्म- नियम सीखता है।
8. बच्चा जो कर रहा है और जो करने की क्षमता रखता है के बीच के क्षेत्र को संभावित विकास का क्षेत्र (ZPD) कहा जाता है।
9. सामाजिक, व्यक्तिगत
10. इडिपस मनोग्रंथि Oedipus complex
11. C
12. B

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भटनागर, ए. बी एट .एल. (2015). बाल्यावस्था एव विकास , आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. डिक्सन-क्रूस, एल. (1996). कक्षा में वाइगोत्सकी. साक्षरता शिक्षा और मूल्यांकन मध्यस्थता, व्हाइट प्लेन्स, एनवाई: लांगमैन पब्लिशर्स।
3. कोल, एम. (1996). सांस्कृतिक मनोविज्ञान: एक बार और भविष्य अनुशासन, कैम्ब्रिज: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. कोपले , सी. और ब्रेदेकंप, एस. (2009). बचपन कार्यक्रमों में विकासात्मक उचित अभ्यास। वाशिंगटन, डीसी: छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय संघ।
5. पाठक, आर. पी. (2011). उच्च शिक्षा मनोविज्ञान, पियर्सन, दिल्ली।
6. पाठक, पी. ड़ी (2011). शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, अगरा।
7. राय, गीता (2011). अधिगाम्कर्ता का विकास तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
8. रोगोफ़्फ़ , बी. (2003). मानव विकास के सांस्कृतिक प्रकृति। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. सिंह ऐ. के. (2013). शिक्षा मनोविज्ञान, भरती भवन, मुम्बई।
10. सिन्हा, जे. सी . शिक्षण अधिगम का मनोवैज्ञानिक आधार, श्रीकविता प्रकाशन, जयपुर।
11. शर्मा, क्रिर्तिका (2009) शैक्षिक मनोविज्ञान: एक अध्ययन, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
12. वल्सिनेर, जे. (2000). संस्कृति और मानव विकास: एक परिचय। लंदन।
13. वाइगोत्सकी, एल. एस. (1978). समाज में मन: उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं का विकास। कैम्ब्रिज, एमए: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

14. वाइगोत्सकी, एल.एस. (1987). एल.एस. के एकत्र काम करता है वाइगोत्सकी । वॉल्यूम। 1: जनरल मनोविज्ञान की समस्याएं, न्यू यॉर्क: प्लेनम प्रेस।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बैण्डूरा के सामाजिक अधिगम सिद्धांत की व्याख्या कीजिए तथा शिक्षण हेतु सुझाव दीजिए।
2. वाइगोत्सकी के संज्ञानात्मक विकास के मुख्य सिद्धांत विस्तारपूर्वक बताए।
3. आधुनिक संज्ञानात्मक सिद्धांत व्यवहारवादी सिद्धांत के पूरक है। व्याख्या कीजिए।
4. मनोवैज्ञानिक पियाजे तथा बैण्डूरा के सिद्धांतों की समानतायें व विभिन्नताएँ बताए।
5. वाइगोत्सकी के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग एवं मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 4- कक्षा अध्ययन के निहितार्थ व्यवहारवादी सिद्धान्तों का तार्किक उपयोग

Critical understanding of behaviouristic theories in the light of their inherent limitations with regard to implication for classrooms

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 कक्षा अध्ययन के निहितार्थ व्यवहारवादी सिद्धान्तों का तार्किक उपयोग

- 4.3.1 व्यवहारवादी सिद्धांत की सीमायें
- 4.3.2 व्यवहारवादी सिद्धांत की आलोचना

4.4 थार्नडाइक का प्रयास तथा भूल सिद्धान्त

- 4.4.1 थार्नडाइक का बिल्ली पर पहेली बॉक्स मे प्रयोग
- 4.4.2 प्रयास और त्रुटि को प्रभावित करने वाले कारक
- 4.4.3 सीखने के नियम
- 4.4.4 थार्नडाइक के सीखने के सिद्धांत का मूल्यांकन

4.5 पैवलव का अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत

- 4.5.1 पैवलव का प्रयोग
- 4.5.2 अनुकूलित अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक
- 4.5.3 अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग

4.6 बी. फ. स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धांत

- 4.6.1 स्किनर का प्रयोग
- 4.6.2 साधन-अनुकूलन मे क्रियाविधि
- 4.6.3 क्रिया प्रसूत सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग एवं मूल्यांकन

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक काल में मानव अधिगम के अध्ययन को विभिन्न रूपों में देखा व प्रयोग किया जा रहा है, किन्तु वास्तव में देखा जाए तो मानव अधिगम की आधारशिला व्यवहारवादियों द्वारा ही कई दशकों पूर्व निर्धारित की गई है। भले ही उन्होंने जानवरों पर प्रयोग किये हों, परन्तु अधिगम के अवबोध का श्रेय उन्हीं को जाता है। इस इकाई में हम पहले कक्षागत अध्ययन के निहितार्थ व्यवहारवादी सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे जिसमें हम व्यव्हारवादियों की अवधारणाएँ, सीमायें तथा सिद्धांतों का अवलोकन व आलोचना करेंगे । इसके उपरान्त उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धांत के अन्तर्गत थार्नडाइक, पैवलाव तथा स्किनर के सिद्धांतों का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. थार्नडाइक के सिद्धांतों व नियमों की व्याख्या कर सकेंगे।
2. पैवलाव के अनुकूलित-अनुक्रिया सिद्धांत को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. स्किनर के सिद्धांतों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. आधुनिक संदर्भ में कक्षागत अधिगम की विवेचना कर सकेंगे।
5. कक्षागत अधिगम के लिए उपयुक्त अधिगम प्रविधियों का चुनाव कर सकेंगे।

4.3 कक्षागत अध्ययन के निहितार्थ व्यवहारवादी सिद्धान्तों का तार्किक उपयोग

व्यवहारवाद अधिगम का वह सिद्धांत है जो प्राणी के जैविक व्यवहार का अध्ययन करता है । व्यवहारवादियों के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। परन्तु उन्होंने व्यक्ति के मन के क्रियाएँ जैसे कि विचार , स्मरण, तर्क, अनुभूति इत्यादि को इससे स्वतंत्र रखा है। व्यवहारवादी बाह्य व्यवहार (जैसे क्रियाएं) व आन्तरिक व्यवहार (जैसे विचार व अनुभूति) में कोई अंतर नहीं मानते हैं। इस सिद्धांत के मुख्य प्रतिपादक थार्नडाइक, पैवलव और स्किनर हैं।

व्यवहारवादी तीन मुख्य अवधारणाओं को मानते है –

1. सीखना व्यवहार में परिवर्तन है।
2. वातावरण व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है।
3. निरंतरता का सिद्धांत (ये समय अंतराल द्वारा प्रभावित होती है) तथा पुनर्बलन (पुनरावृति द्वारा व्यवहार को सुदृढ़ करती है) का सहयोग अधिगम प्रक्रिया के केंद्र बिंदु माने गए है।

4.3.1 व्यवहारवादी सिद्धांत की सीमायें

व्यवहारवादी अधिगम उपागम की कुछ सीमाएं पाई गयी हैं जो निम्न प्रकार प्रस्तुत की गई हैं –

1. ये मनुष्य को यांत्रिक रूप में स्वीकारते हैं जो कि उपयुक्त नहीं है।
2. यह सिद्धांत भावनाओं, विचारों और कार्यों को प्रत्यक्ष व्यवहार के सन्दर्भ में स्वीकारता है।
3. व्यवहारवादियों द्वारा स्वीकृत मान्यताएँ पशुओं के प्रयोगों पर अधारित हैं जो मानव व्यवहार पर शत प्रतिशत मान्य नहीं है।
4. व्यवहारवादियों ने संरचनात्मक और वंशानुगत कारक को नजरअंदाज किया है जो भाषा के मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के विकास में महत्वपूर्ण है।
5. व्यवहारवादी सिद्धांत में मनुष्य की सृजनात्मकता, जिज्ञासा और सहजता के तत्वों की अवहेलना की गयी है।
6. स्किनर का क्रिया- प्रसूत अधिगम, सीखने की प्रक्रिया को यांत्रिक मानते हैं क्योंकि वे मानसिक प्रक्रिया के यांत्रिकरण पर बल देते हैं।
7. व्यवहारवादियों का मानना है कि सभी मानव व्यवहार व्यक्ति के जीवन काल में ही अधिग्रहण कर लिये जाते हैं। इस प्रकार उन्होंने वांशिक विरासत को कोई महत्व नहीं दिया।
8. क्रिया- प्रसूत अधिगम मन की गहराई पर ध्यान नहीं देता। इस प्रकार इसकी प्रकृति कृत्रिम है।

4.3.2 व्यवहारवादी सिद्धांत की आलोचना

इस सिद्धांत को विभिन्न कारणों से आलोचना की गयी है, जैसे –

i. अधिगम को अनुकूलन द्वारा नवीन व्यवहार के अंतर्गत माना गया है।
ii. व्यवहारवादी वंशानुक्रम के स्थान पर पर्यावरण को अधिक महत्त्व देते हैं।
iii. भाषा अधिग्रहण कैसे करते है यह बताने में स्किनर का सिद्धांत असफल रहा है।
iv. सीखने में कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमे बिना किसी पुर्नबलन या दण्ड के भी अधिगम संभव है।
v. व्यवहारवादी वांछित व्यवहार पर ध्यान देते हैं परन्तु वे मानव की सीखने की प्रक्रिया को समझने में असफल है।
vi. मनुष्य एवं जानवर नई सूचनाओं के प्राप्त होने पर अपने व्यवहार को उसके अनुकूल कर लेने में सक्षम है भले ही पुनर्बलन द्वारा पूर्व व्यवहार स्थापित किया जा चुका हो।

4.4 थार्नडाइक का प्रयास तथा भूल का सिद्धान्त

मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के स्वरुप की व्याख्या करने के लिए कई सिद्धान्तों का वर्णन किया है। हेर्गेन्हाह्न(Hergenhahn, 1988) के अनुसार सीखने के भिन्न सिद्धान्तों में मनोवैज्ञानिकों ने बताया है कि- व्यक्ति क्यों सीखता है, कैसे सीखने है तथा क्या सीखना है । इन सिद्धान्तों को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है –

i. उद्दीपन –अनुक्रिया सिद्धांत (Stimulus-Response Theory)
ii. उद्दीपन-उद्दीपन सिद्धांत (Stimulus-Stimulus Theory)

उद्दीपन –अनुक्रिया सिद्धांत को व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourist Theory) या सम्बन्धवादी सिद्धान्त

(Connectionist Theory) कहा जाता है तथा उद्दीपन- उद्दीपन सिद्धान्त को संज्ञानवादी सिद्धान्त (Cognitivist Theory) कहा जाता है । सम्बन्धवादी सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया का उद्दीपक व अनुक्रिया के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करते है । इस श्रेणी में थार्नडाइक (Thorndike), स्किनर (Skinner), पैवलव (Pavlov), हल (Hull) अदि के सिद्धान्तों को रखा गया है । वही संज्ञानवादी सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया में उद्देश्य व सूझ- बूझ की भूमिका पर अधिक बल देते है । संज्ञानवादी सिद्धान्त को परम्परागत संज्ञानवादी सिद्धान्त (Classical Cognitive Theory) तथा आधुनिक संज्ञानवादी सिद्धान्त (Modern Cognitive Theory) में रखा गया है । वरदाईमर (Weitheimer), कोफफ्का तथा कोहलर (Koffka and Kohler), पियाजे (Piaget) तथा टालमैन (Tolman) के सिद्धान्तों को क्लासिकी संज्ञानवादी सिद्धान्त में रखा जाता है तथा ऑस्बेल (Ausbel), ब्रूनर (Bruner), बैण्डूरा (Bandura) अदि के सिद्धान्तों को आधुनिक संज्ञानवादी सिद्धान्तों की श्रेणी में रखा गया है।

4.4.1 थार्नडाइक का बिल्ली पर पहेली पेटी का प्रयोग

इ. ल. थार्नडाइक अमरीकी मनोवैज्ञानिक थे । उन्होंने अपने प्रयोग में एक भूखी बिल्ली को एक पिंजड़े में रखा जिसे उन्होंने 'पहेली पेटी' (puzzle box) कहा । इस पिंजड़े का दरवाजा एक खटके के दबाने से खुलता था । पिंजडे के बाहर एक बर्तन में मछली रखा था । भूखी बिल्ली पंजा मार मार कर बाहर निकलने का प्रयास करने लगी । वह उछल कूद करती तो कभी इधर उधर दौड़ती । इसी दौरान अनजाने में उसका पंजा खटके पर पड़ा और दरवाजा खुल गया और उसने बाहर आकार भोजन प्राप्त कर लिया । इसी प्रकार बिल्ली को लगातार कई दिनों तक पिंजडे में बंद किया गया और निरीक्षण किया गया । थार्नडाइक ने देखा की कुछ प्रयासों के बाद बिल्ली पिंजडे के बहार आने में निपुण हो गयी ।

उपयुर्क्त प्रयोग के अनुसार थार्नडाइक ने यह निष्कर्ष निकला कि व्यक्ति प्रयत्न और भूल द्वारा सीखता है । प्रयास और त्रुटि विधि से सीखने की क्रिया में निम्नलिखित परिस्थितियां उत्पन्न होती है –

i. सीखने में अन्तर्नोद (drive) का होना अवश्यक है जैसे इस प्रयोग में भूख अन्तर्नोद ने बिल्ली को सीखने के लिए प्रेरित किया ।

ii. बाधा पड़ने पर व्यक्ति प्रयास व भूल द्वारा सीखता है।
iii. क्योंकि सीखने वाले को सही क्रिया का ज्ञान नहीं होता इसलिए वह अनावश्यक क्रियाएँ करता है जैसे बिल्ली द्वारा उछल कूद करना व इधर उधर दौड़ना।
iv. अनावश्यक क्रियाओं द्वारा अचानक सफलता मिलती है और व्यक्ति बिना त्रुटि के सही कार्य करने लगती है।

4.4.2 प्रयास और त्रुटि को प्रभाव करने वाले कारक

प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखने में निम्नलिखित व्यावहारिक अवस्थाएँ पाई जाती है। जैसे –

i. सीखने में लक्ष्य का होना आवश्यक है।
ii. लक्ष्य प्राप्ति में बाधा का होना अवश्यक है जिससे व्यक्ति प्रयत्न कर सके।
iii. बाधाए आने पर व्यक्ति प्रयास करता है जब तक कि वह लक्ष्य प्राप्त न कर ले।
iv. बार बार प्रयत्न करने पर संजोगवश उसे सफलता प्राप्त होती है।
v. व्यक्ति सही क्रिया की जानकारी होने पर सही क्रिया को चुन लेता है जो कि सीखने की अंतिम अवस्था होती है।
vi. अंत में व्यक्ति की मानसिक स्थिति ठीक होने पर ही समस्या का समाधान होता है।

4.4.3 सीखने के नियम (Laws of Learning)

थार्नडाइक ने अपने प्रयोगों के आधार पर तीन मुख्य नियम और पाँच गौण नियम बताये हैं, जो इस प्रकार है -

सीखने के मुख्य नियम (Main Laws of Learning)

तत्परता के नियम (Law of Readiness)

तत्परता के नियम को तैयारी का नियम से भी जाना जाता है। इस नियम द्वारा यह ज्ञात होता है कि सीखते समय कुछ परिस्थितियाँ व्यक्ति को संतुष्टि प्रदान करती है और कुछ परिस्थितियों में उसे खीझ उत्पन्न होती है।

थार्नडाइक द्वारा इन परिस्थितियों को इस प्रकार वर्णन किया गया है –

i. जब व्यक्ति किसी कार्य करने के लिया तत्पर हैं और उसे वह कार्य करने को दिया जाता है , तो इससे उसमें संतोष उत्पन्न होता है।

   When the conduction unit is ready to conduct, conduction by itself is satisfying and nothing is being done to alter this action.

ii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है और उसे वह कार्य नहीं करने दिया जाता है , तो उसे इस स्थिति मे खीझ होती है।

   For a conduction unit ready to conduct, not to conduction is annoying.

iii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर नहीं रहता और उसे वह कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है , तो इससे उसे खीझ होती है, उसे गुस्सा आता है।

When a conduction unit is unready to conduct, is forced to conduct, conduction by it is annoying.

तत्परता के नियम का शैक्षिक अनुप्रयोग

(Educational Implication of Law of Readiness)

i. शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों को शिक्षण प्रदान करने से पूर्व ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जिससे बालक में रूचि, जिज्ञासा व इच्छा जागृत हो और वह हमेशा नवीन ज्ञान अर्जन करने के लिए तत्पर रहे।

ii. इसी नियम के अधार पर 'ज्ञात से अज्ञात की ओर' शिक्षण सूत्र का निर्माण हुआ। हरबर्ट ने भी अपने पंचपदी प्रणाली में इस नियम पर शिक्षण सूत्र की रचना की।

अभ्यास का नियम Law of Exercise

इस नियम के अनुसार थार्नडाइक ने यह बताया कि अभ्यास द्वारा उद्दीपन व अनुक्रिया के बीच का सम्बन्ध मजबूत होता है। थार्नडाइक ने इसे उपयोग का नियम (Law of Use) कहा। इसके विपरीत अभ्यास न करने से सम्बन्ध कमजोर पड़ जाता है और उसका विस्मरण हो जाता है। इसको उन्होंने अनुपयोग का नियम (Law of Disuse) कहा।

अभ्यास के नियम का शैक्षिक अनुप्रयोग

(Educational Implication of Law of Exercise)

1. शिक्षकों को चाहिए कि जब वह गणित, विज्ञान, भाषा अदि विषयों को छात्रों को याद कराते समय उन्हें पुनः दोहराये जिससे वह पाठ छात्र भूल न पाए।
2. शिक्षक को चाहिए कि वे छात्रों को निर्देशन दे की यदि सीखे हुए विषय को वह बीच-बीच में दोहराते रहे तो उनको स्मरण हो जायेगा और वे उस पाठ को कभी नहीं भूलेंगे।
3. प्राथमिक कक्षा में छात्रों को वर्तनी अभ्यास, लेखन और पहाड़ो का अभ्यास समय-समय पर करना चाहिए।

प्रभाव का नियम (Law of Effect)

इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। यदि किसी कार्य को करने से उसे सुखद अनुभूति होती है तो वह उस अनुक्रिया को सीख लेता है। परन्तु खीझ उत्पन्न होने पर व्यक्ति उस अनुक्रिया को दोहरना नहीं चाहता। दूसरे शब्दों में पुरस्कार मिलने पर व्यक्ति

अनुक्रिया को दोहराता है और दण्ड मिलने पर उसे छोड़ देता है। थार्नडाइक ने 1930 में इस नियम में सुधार किया। उन्होंने बताया कि पुरस्कार मिलने पर किसी अनुक्रिया का दोहराने की सम्भावनाएँ अवश्य बढ़ जाती है परन्तु दण्ड किसी अनुक्रिया को कमजोर करने मे प्रभावकारी नहीं होता है।

प्रभाव के नियम के शैक्षिक अनुप्रयोग

(Educational Implication of Law of Effect)

i. शिक्षक को अध्यापन करते समय बालकों का उत्साह बढ़ाना चाहिए ताकि उनमें आत्म संतुष्टि हो और वे सीखने के लिए प्रोत्साहित हो।

ii. इस नियम के अनुसार शिक्षक अपने छात्रों को पुरस्कार एवं दण्ड प्रदान करके अभिप्रेरित कर सकता है।

iii. शिक्षक अपने शिक्षण विधि में रोचकता, अनुकूलता, नवीनता के प्रयोग द्वारा प्रभाव का नियम लागु कर सकता है।

सीखने के गौण नियम (Secondary Laws of Learning)

i. **मानसिक वृति का नियम (Law of Mental Set)-** इस नियम से अभिप्राय है कि जिस कार्य के प्रति व्यक्ति की जैसी मनोवृति या मानसिक वृति होती है, उसी अनुपात में वह सीख है। दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि यदि किसी व्यक्ति मानसिक रूप से वह कार्य करने को तैयार नहीं है तो वह उस कार्य पर सफल नहीं हो पायेगा। इसलिए शिक्षक को चाहिए कि छात्रों को प्रेरणा दे और नये ज्ञान का अर्जन करने के लिए मानसिक रूप से तैयार करे।

ii. **बहु – प्रतिक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)-** इस नियम से यह तात्पर्य है कि व्यक्ति जब नया ज्ञान प्राप्त करता है या कोई कार्य करता है तो वह विभिन्न प्रतिक्रियायें करके सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करता है। शिक्षक को चाहिए की वह इस नियम के आधार पर छात्रों को सीखने को प्रेरित करे जिससे वह कई प्रकार की अनुक्रियाएँ करेंगे और अनेक अनुभूतियाँ प्राप्त करेंगे जो उन्हें सीखने में सहायता देगी।

iii. **तत्व प्रबलता का नियम (Law of Prepotency of Elements) -**इस नियम के अनुसार किसी भी सीखने की परिस्थिति में दो प्रकार के तत्व होते हैं – सुसंगत (relevant) तथा असुसंगत (irrelevant) तत्व। इनकी प्रबलता भी अलग-अलग होती है। व्यक्ति सुसंगत तत्व को छाट लेता है क्योंकि इसकी सार्थकता अधिक होती है। शिक्षक को चाहिए कि वे पढ़ाते समय छात्रों को महत्वपूर्ण तत्व पहले बता दे जिससे छात्र अच्छे ढंग से शिक्षण ग्रहण कर सके।

iv. **आत्मिकरण का नियम (Law of Assimilation)-** इस नियम के अनुसार नया ज्ञान प्राप्त करते समय व्यक्ति उसका आत्मीकरण कर लेता है। अर्थात वह अपने नए ज्ञान को पूर्व ज्ञान का

अंग बना लेता है । शिक्षक को इस नियम का प्रयोग अपने शिक्षण में करना चाहिए जिससे बालक नए ज्ञान को पूर्व ज्ञान से जोड़ सकें और उसमे रूचि ले सकें।

v. **साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)-** इस नियम का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति जिस उद्दीपक के प्रति संवेदनशील होता है वह उसके साथ अनुक्रिया को जोड़ता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि पहले कभी की गयी क्रिया को उसी के समान दूसरी परिस्थिति में उसी प्रकार से करना।

4.4.4 थार्नडाइक के सीखने के सिद्धांत का मूल्यांकन

थार्नडाइक का सीखने का सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है, फिर भी उसमें कुछ कमिया पायी गयी हैं । थार्नडाइक के अनुसार छात्र प्रयत्न एवं भूल से ही सीखता है परन्तु सीखने में सूझ-बूझ का भी प्रयोग होता है । उन्होंने अभ्यास पर अधिक बल दिया है और यह कहा कि छात्रों को मात्र अभ्यास द्वारा सीखना चाहिए । उन्होंने सीखने में परिणाम का ज्ञान (knowledge of result), कक्षा का वातावरण और शिक्षक का व्यवहार जैसे तत्वों को महत्व नहीं दिया है।

अभ्यास प्रश्न

1. थार्नडाइक के तीन मुख्य नियम बताये।
2. सीखने की प्रक्रिया के पाँच गौण नियम बताये।
3. अनुकूलित-अनुक्रिया का क्या अर्थ है ?
4. प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखने के सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया ?
5. जब व्यक्ति किसी कार्य करने के लिया तत्पर है और उसे वह कार्य करने को दिया जाता है , तो इससे उसमें संतोष उत्पन्न होता है। (सत्य/असत्य)

4.5 पैवलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया या अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत (Conditioned Response Theory)

सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धांत के प्रतिपादक रुसी शरीर-शास्त्री आई . पी . पैवलव (I.P. Pavlov) थे । इस सिद्धांत के अनुसार अधिगम एक 'अनुकूलित- अनुक्रिया' है जिसका तात्पर्य है अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेजना की अनुक्रिया करने के कारण व्यवहार में परिवर्तन होना । इसलिए इसे 'अनुकूलित- अनुक्रिया सिद्धांत' भी कहते हैं । प्रो. बर्नार्ड ने पैवलव के सिद्धांत को इस प्रकार परिभाषित किया -

"अनुकूलित- अनुक्रिया उत्तेजना की पुनरावृति द्वारा व्यवहार का स्वचालन है जिसमे उत्तेजना पहले किसी विशेष अनुक्रिया के साथ लगी रहती है और अंत में वह किसी व्यवहार का कारण बन जाती है जो कि पहले मात्र रूप से उसके साथ लगी हुई थी।"

अक्सर यह देखा गया है कि उद्दीपक (stimulus) की उपस्थित में कोई न कोई अनुक्रिया (response) अवश्य होती है व उद्दीपक और प्रतिक्रिया का सम्बन्ध हो जाता है। इस सम्बन्ध को पैवलव ने सीखने की परिभाषा दी। इसे स्पष्ट करने के लिए पैवलव द्वारा प्रयोग का उल्लेख करना उपयुक्त होगा।

"Conditioning is the automatization of behaviour by repitition of stimuli which accompany in given response and which ultimately become cause for the behaviour which formerly they merely accompanied."

4.5.1 पैवलव का प्रयोग

पैवलव एक कुत्ते को प्रतिदिन एक निश्चित समय पर भोजन देते थे।भोजन देखकर कुत्ते के मुँह से लार (saliva) टपकने लगती थी। यहाँ भोजन एक स्वाभाविक उत्तेजक या उद्दीपक है (unconditioned stimulus) और कुत्ते के मुँह से लार टपकना एक स्वाभाविक क्रिया (natural response) है। पैवलव ने कुछ प्रयासों के बाद भोजन देने से पहले घंटी बजाई। यहा घंटी अस्वाभाविक उत्तेजक है (conditioned stimulus)। इस प्रकार पैवलव ने लार बहने की क्रिया को घंटी बजने के अस्वाभाविक उत्तेजक (conditioned stimulus) से सम्बंधित कर दिया। भोजन और घंटी के सम्बन्ध होने की वजह से कुत्ता लार टपकाता था। फिर उन्होंने केवल घंटी बजाई पर भोजन नहीं दिया। क्योंकि भोजन और घंटी के बीच सम्बन्ध स्थापित हो चुका था कुत्ते ने घंटी की आवाज सुनते ही बिना भोजन के स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार का बहाना) दी। पैवलव ने इस अस्वाभाविक उत्तेजक के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया करने को सम्बन्ध प्रत्यावर्तन (conditioning) अनुबन्धन कहा।

इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक लेडेल ने कहा - "सम्बद्ध सहज क्रिया में कार्य के प्रति स्वाभाविक उत्तेजक के बजाय एक प्रभावहीन उत्तेजक होता है, जो स्वाभाविक उत्तेजक से सम्बंधित किये जाने का कारण प्रभावपूर्ण हो जाता है।"

"In a conditioned reflex the natural stimulus to action has been replaced by an otherwise ineffective stimulus which has become effective through association" (Ladell)

साधारण अवस्था में या अनुबन्धन के पहले की स्थिति का इस चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

स्वाभाविक उद्दीपन	**स्वाभाविक अनुक्रिया**
(unconditioned stimulus)	(natural response)
भोजन	लार का टपकना
अनुबन्धन के बाद	
भोजन (स्वाभाविक उद्दीपन)	स्वाभाविक अनुक्रिया
घंटी की आवाज (अस्वाभाविक उद्दीपन)	लार का टपकना

चित्र 1

इस चित्र द्वारा यह स्पष्ट होता है कि "शास्त्रीय अनुबन्धन एक प्रक्रिया है जिसमे तटस्थ या अस्वाभाविक उत्तेजक स्वाभाविक उत्तेजक के साथ मिलकर उसकी सभी विशेषताओं को अपने में प्राप्त कर लेता है।"
"Classical conditioning is a process in which a unnatural stimulus by pairing with a natural stimulus acquired all the characteristics of natural stimulus."

4.5.2 अनुकूलित अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुकूलित अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं जो इस प्रकार है –

1. समय
2. विलम्ब
3. अभ्यास
4. अभिप्रेरक
5. बाहरी रूकावटें

4.5.3 अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत का मूल्यांकन

प्रो . एंडरसन ने इस विधि के महत्त्व को दर्शाते हुए अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया –
"अनुकूलित अनुक्रिया का सबसे बड़ा योगदान यह रहा है कि उससे हमें एक ऐसी बुनियादी वैज्ञानिक आधार सामग्री प्राप्त हुई है जिससे हम अधिगम के एक सिद्धांत का निर्माण कर सकते हैं। हालांकि पैवलव का यह सिद्धांत आलोचना के परे भी नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धांत पर आपति जताते हुए इन बातों पर ध्यान आकर्षित किया –

1. पैवलव ने यह विधि कुत्ते पर की थी। व्यक्ति इस विधि द्वारा कम सीखता है। वह सूझ बूझ का अधिक प्रयोग करता है।

2. यह विधि जटिल विषयों के लिए उपयोगी नहीं है।
3. इस विधि द्वारा सीखना स्थायी नहीं होता।
4. यह विधि अभ्यास और प्रलोभन पर अधिक बल देती है।
5. प्रयोग में यह पाया गया है कि पैवलव ने सीखने की क्रिया को केवल यांत्रिक बनाया है। यह संज्ञानात्मक विकास से परे है।

4.5.3 अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग

1. इस सिद्धांत द्वारा बालको में अच्छा व्यवहार व अनुशासन लाया जा सकता है।
2. यह सिद्धांत उन विषयों की शिक्षा के लिए बहुत उपयोगी है जिसमे चिंतन की आवश्यकता नहीं होती है जैसे सुलेख, पहाड़ा याद करना, चित्र बनाना अदि।
3. इस सिद्धांत के प्रयोग से बालक के भीतर का भय दूर किया जा सकता है।
4. यह विधि बुरी आदतों के निवारण, आचरण एवं व्यवहार को बदलने में सहायता करती है।
5. यह विधि बालकों के समाजीकरण में तथा वातावरण में समायोजन करने में सहायता देती है।
6. यह सीखने की स्वाभाविक विधि है।
7. श्रव्य-दृष्य उपकरणों द्वारा शिक्षा इसी विधि पर आधारित है।
8. इस विधि की सहायता से घर तथा विद्यालय में होने वाली सीखने की क्रियाओं को सरलतापूर्वक स्पष्ट किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

6. अनुकूलित अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले तीन कारक बताए।
7. शास्त्रीय अनुबन्धन से क्या अभिप्राय है ?
8. परम्परागत अनुबन्धन सिद्धांत का प्रतिपादन _____ ने किया।
9. पैवलव ने प्रयोग_____पर किया।
10. पैवलव ने सीखने की क्रिया को केवल यांत्रिक बताया है। सत्य / असत्य

4.6 बी. फ. स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धांत

इस सिद्धांत के प्रतिपादक अमेरिका के मनोवैज्ञानिक बी. फ. स्किनर थे। स्किनर ने चूहों तथा कबूतरों पर प्रयोग किया। प्रयोग द्वारा उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि प्राणियों मे दो प्रकार के व्यवहार होते हैं – (i) अनुक्रिया (Respondent) तथा (ii) सक्रिय (Operant) जिसे क्रिया प्रसूत भी कहते हैं। उन्होंने कहा कि अनुक्रिया का सम्बन्ध उद्दीपन से होता है और सक्रिय स्वतंत्र होता है। यह किसी उद्दीपन से नहीं जुड़ा होता

है। स्किनर के अनुसार सक्रिय अनुबन्धन मे ऐसी अनुक्रिया को सीखा जाता है जिससे कुछ पुरस्कार प्राप्त होता है।

एम्. ल. बिगी (M. L. Bigge) ने अपनी पुस्तक 'लर्निंग थ्योरीज़ फॉर टीचर्स' मे स्किनर के क्रिया प्रसूत सिद्धांत पर टिप्पणी की। उन्होंने कहा -

"क्रिया प्रसूत अनुबन्धन अधिगम की एक प्रक्रिया है जिसमे सतत् या संभावित अनुक्रिया होती है। ऐसे समय में क्रिया प्रसूतता की शक्ति बढ़ जाती है।

"Operant conditioning is the learning process whereby a response is made more probable or more frequent an operant is strengthened."

4.6.1 स्किनर का प्रयोग

प्रयोग १- स्किनर का चूहे पर प्रयोग

स्किनर ने साधन अनुकूलन के लिए एक उपकरण का प्रयोग किया जिसे उन्होंने 'स्किनर बॉक्स' कहा। इस बॉक्स के अन्दर एक उत्तोलक (lever) लगा था जिसे दबाने पर प्लेट मे भोजन का टुकड़ा पड़ जाता था। प्रारम्भ में चूहे ने कई यद्रिचिक क्रियाएँ (random activities) की परन्तु जब वह उत्तोलक को दबाता तो उसे भोजन प्राप्त होता था। भोजन पुनर्बलन का कार्य करता था जिसे उत्तोलक को दबाने की प्रतिक्रिया को बल प्रदान हुआ। इस प्रयोग में निम्ललिखित क्रियायें देखी गयी –

1. चूहा उत्तोलक के पास अधिक समय व्यतीत करता है।
2. कुछ प्रयासों के बाद चूहा उत्तोलक को दबाकर भोजन प्राप्त करना सीख जाता है।
3. हर प्रयास के साथ उत्तोलक दबाने की आवृति बढ़ जाती है।

प्रयोग २- स्किनर का कबूतर पर प्रयोग

स्किनर ने कबूतरों पर भी प्रयोग किया। उन्होंने कबूतरों को बाक्स में लगी लीवर को दबाना सिखाया। प्रारभ मे बॉक्स में हल्की प्रकाश की व्यवस्था की ।गयी। कबूतर ने एक निर्धारित व्यवहार करना सीख लिया। इस प्रयोग को उन्होंने कई प्रकार की रोशनी मे संपन्न किया। उन्होंने पाया की प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन होने पर अनुक्रिया में अनुपातिक परिवर्तन हुआ। स्किनर ने अपने प्रयोग द्वारा कबूतरों को नाचना और पिंग पोंग बॉल खेलना भी सिखाया।

इन प्रयोगों के आधार पर स्किनर ने कहा – "व्यवहार प्राणी या उसके अंश की किसी संदर्भ मे गति है, यह गति या तो प्राणी मे स्वंय निहित होती है अथवा किसी बाहरी उद्देश्य या शक्ति के क्षेत्र से आती है।"

"Behaviour is the movement of an organism or of its part in a frame of reference provided by the organism itself or by external objects or field or force."

4.6.2 साधन-अनुकूलन मे क्रियाविधि (Operations in Operant Conditioning)

स्किनर की अधिगम प्रक्रिया में कुछ प्रमुख बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जैसे -

- व्यवस्थापन (Shaping)
- विलोपन (Extinction)
- ऐच्छिक प्राप्ति (Spontaneous Recovery)
- अवरोध (Inhibition)
- सामान्यीकरण (Generalization)
- विभेदन (Discrimination)
- पुनर्बलन (Reinforcement)

1. **व्यवस्थापन (Shaping)** -स्किनर ने अपने प्रयोगों में उत्तरोतर उपगमनों (successive approximations) को पुनर्बलित करके वांछित व्यवहार परिवर्तन करने में सफलता प्राप्त की। उत्तरोतर उपगमन ऐसी प्रतिक्रियाएँ हैं जिनसे अंतिम व्यवहार परिवर्तन के उद्देश्य की प्राप्ति होती है। स्किनर ने कबूतर के निकटवर्ती क्रिया को पुर्नाबलित कर डिस्क पर चोंच मारने की क्रिया के व्यवथापन में सफलता प्राप्त की। व्यवहार के व्यवस्थापन के लिए तीन सिद्धांत है-
   (i) प्रतिक्रिया सामान्यीकरण (Response Generalization)
   प्रतिक्रिया सामान्यीकरण से ही व्यवस्थापन किया जा सकता है। प्रतिक्रिया उद्देश्य के निकटवर्ती प्रतिक्रिया को पुनर्बलित करने से व्यवस्थापन किया जाता है।
   (ii) आदत स्पर्धा (Habit Competition)
   यह सिद्धांत सही आदत के निर्माण में महवपूर्ण है। प्रतिक्रिया की प्रत्येक श्रेणी में स्पर्धा आदत पर सही आदत का अंकुश होना अवश्यक है। इसलिए इस श्रृंखला में सही आदत का पुनर्बलन किया जाता है।
   (iii) श्रेणीबद्धता (Chaining)
   स्किनर ने कबूतरों को पुर्नबलन द्वारा नाचना सिखाया। इस प्रशिक्षण में जैसे ही कबूतर घूमता तो उसे पुनर्बलन दिया जाता। इसके पश्चात पुनः सही दिशा में घूमने की श्रृंखला में प्रत्येक प्रतिक्रिया को उत्तरोतर पुनर्बलन किया जाता। इस प्रकार श्रेणीबद्धता की सिद्धांत में महत्पूर्ण भूमिका है।
2. **विलोपन (Extinction)** -यदि पूर्व स्थापित सम्बन्ध से पुनर्बलन को हटा दिया जाये तो विलोपन होता है। इसे सत्यापित करने के लिए स्किनर ने अपने प्रयोगों में अनुकूलन स्थापित होने के कुछ प्रयासों बाद चूहे को उत्तोलक दबाने पर भी भोजन (पुनर्बलन) नहीं दिया। पुनर्बलन न मिलने से चूहे की उत्तोलक दबाने की प्रतिक्रिया भी कम हो गयी और काफी समय बाद अनुकूलन पूर्णतया विलुप्त

हो गया। इससे यह ज्ञात होता है कि अनुकूलन जितनी कठिनाई से स्थापित किये जाते हैं अनुकूलन प्रतिक्रिया का विलोपन उतने ही जल्दी होता है। पैवलव के प्रयोग में भी कुत्ते को घंटी के बजने पर भोजन न मिलने पर लार टपकने की प्रतिक्रिया में कमी देखी गयी। अर्थात अनुकूलन प्रतिक्रिया का विलोपन हुआ था।

3. **ऐच्छिक प्राप्ति (Spontaneous Recovery)-** यह इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि यदि कोई प्रायोज्य विलोपन के उपरान्त किसी परिस्थिति से कुछ समय तक के लिए हट जाये और फिर पुनः उपास्थित होता है तो उतेजना के फिर प्रस्तुत करने से उसका निष्पादन (performance) पूर्व परिस्थिति से बेहतर होता है। इसको स्किनर ने एक्च्छिक प्राप्ति की संज्ञा दी है।
4. **अवरोध (Inhibition) -**स्किनर ने चार प्रकार के अवरोधों का विवेचन किया जो इस प्रकार है-
   i. बाह्य अवरोधक (External Inhibition)- अगर किसी अनुकूलन प्रक्रिया सम्बन्ध के स्थापित होते समय कोई नयी उतेजना की जाती है तो उसे बाह्य अवरोधक कहते हैं। उदहारण के लिए यदि कोई पढ़ रहा हो और पडोस मे शादी हो और खूब तेजी से गाना लगा हो तो बालक की पढाई मे बाधा आ सकती है।
   ii. अनुकूलित अवरोधक (Conditioned Inhibition)- अनुकूलित प्रतिक्रिया में यदि सम्बंधित कोई तत्व प्रतिक्रिया के अनुकूलन को अवरोधित करता है तो अनुकूलित अवरोधक कहलाता है। उदहारण के लिए पैवलव के प्रयोग में एक निश्चित ध्वनि की अपेक्षा अन्य कई ध्वनियाँ अनुकूलन को प्रभाविक करें तो ये ध्वनियाँ अवरोधक का कार्य करती हैं।
   iii. विलंबित अवरोधक (Delayed Inhibition) -अनुकूलित प्रतिक्रिया में यदि स्वाभाविक प्रतिक्रिया को देर से प्रस्तुत किया जाये तो इसे विलंबित अवरोधक कहते हैं। जेसे चूहे को कई बार उतोलक दबाने पर भी काफी समय तक भोजन न प्राप्त होने की स्थिति मे अवरोध उत्पन्न हो जाता है।
   iv. अनावरोध (Disinhibition) -इसे अवरोध का अवरोध भी कहते है। साधन अनुकूलन के सम्बन्ध में यदि अवरोध उत्पन्न होता है तो अनुकूलित प्रतिक्रिया की मात्रा कम हो जाती है, परन्तु जब अवरोध का अवरोध उत्पन्न होता है तो अनुकूलित प्रतिक्रिया की मात्रा में वृद्धि आ जाती है। अर्थात विलोपन का अनावरोध उत्पन्न हो जाता है।
5. **सामान्यीकरण (Generalization)-** यदि कोई समान उत्तेजनाएँ किसी प्रतिक्रिया को उसी प्रकार उत्पन्न करती हैं जो कोई पूर्व उत्तेजना उत्पन्न करती थी तो उसे सामान्यीकरण कहते हैं। इस प्रकार दो या दो से अधिक उतेजनाओं में समानता जितनी अधिक होती है सामान्यीकरण उतना ही अधिक होगा।
6. **विभेदन (Discrimination) -** बालक सामान्यीकरण के साथ विभेदन द्वारा भी सीखता है। वह अनुकुलित उत्तेजनाओं में भिन्नता के कारण विभेदन करता है। यदि उदासीन उत्तेजना और

स्वाभाविक उत्तेजना में अन्तर अधिक हो तो वह इन दोनो में अन्तर करना या विभेदन करना सीख जाता है।

7. **पुनर्बलन (Reinforcement)-** स्किनर के साधन अनुकूलन में पुनर्बलन की मुख्य भूमिका है क्योंकि यह अधिगम प्रक्रिया का मुख्य अंग है। पुनर्बलन करने वाले उत्तेजक को पुनर्बलन या प्रेरक कहते हैं। यह तीन प्रकार के होते हैं – धनात्मक पुनर्बलक, ऋणात्मक पुर्नबलक और दण्ड प्रेरक। धनात्मक पुनर्बलक एक ऐसा उत्तेजक हैं जिनकी उपस्थिति प्रतिक्रिया शक्ति बढाती हैं जेसे भोजन, पैसा अदि। ऋणात्मक पुनर्बलक एक दुखद उत्तेजक हैं जिनकी अनुपस्थिति प्रतिक्रिया शक्ति बढाती है जैसे माता- पिता की नाराजगी से बचने के लिया बालक प्रतिदिन पढाई करके उनके नाराजगी से बचता है। दण्ड प्रेरक एक हानिकारक उत्तेजक है जो प्रतिक्रिया को कमजोर बनता है। जहां दण्ड प्रेरक प्रतिक्रिया को कमजोर बनाते हैं, वहीं ऋणात्मक प्रेरक उसे सशक्त बनाता हैं। दण्ड में उत्तेजक को प्रक्रिया के बाद प्रस्तुत किया जाता है जबकि ऋणात्मक प्रेरक उत्तेजना की उपस्थिति से पूर्व पाया जाता है।

4.6.3 क्रिया प्रसूत सिद्धांत का शैक्षिक अनुप्रयोग एवं मूल्यांकन

स्किनर के सक्रिय या क्रिया प्रसूत अनुबंधन के शैक्षिक महत्व इस प्रकार हैं -

i. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में पुनर्बलन का महत्व है। शिक्षक को चाहिये कि वह अपने छात्रों को पुनर्बलन द्वारा सफलता की और अग्रसर करे।
ii. इस सिद्धांत का प्रयोग बालकों के शब्द- भंडार में वृद्धि के लिए किया जा सकता है।
iii. इस सिद्धांत द्वारा धनात्मक प्रेरकों द्वारा व्यवहार में अपेक्षित सुधार लाया जा सकता है।
iv. पुनर्बलन द्वारा असामान्य व्यवहार की क्रियाओं को दूर कर बालकों में अधिगम का समुचित विकास किया जा सकता है।
v. अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning) का विकास क्रिया प्रसूत अनुबंधन द्वारा किया गया। इससे अधिगम समग्री को छोटे छोटे पदों में 'सरल से कठिन' कार्यों मे बाट दिया जाता है और पुनर्बलन द्वारा बालक बिना किसी कठिनाई के सम्पूर्ण विषय-वस्तु को समझने में सक्षम हो जाता है।
vi. स्किनर के अनुसार जब बालक को किसी कार्य करने से संतोष मिलता है तो यह संतोष क्रिया को बल प्रदान करता है।
vii. इस सिद्धांत द्वारा शिक्षक सीखे जाने वाले व्यवहार को स्वरूप प्रदान (shapes behaviour) करता है और वह उद्दीपन पर नियन्त्रण करके वांछित व्यवहार का सृजन करता है।
viii. इस सिद्धांत मे स्किनर ने परिणाम की जानकारी (knowledge of result) को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। व्यक्ति अगर कार्य के परिणामों की जानकारी प्राप्त करता है तो उसे आगे सीखने मे मदद मिलती है।

ix. इस सिद्धांत का प्रयोग शिक्षक अपनी पाठ योजना को सुचार रूप से नियोजित करने में कर सकता है।

x. यह सिद्धांत निदानात्मक शिक्षण और उपचारात्मक शिक्षण के लिए उपयोगी है।

xi. यह सिद्धांत बालकों को आवश्यकता पूर्ति पर बल देता है इसलिए शिक्षको को चाहिए कि वे बालक की आवश्यकताओ से सम्बंधित करके पढायें।

xii. पाठ्यवस्तु का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिये और उसकी पूर्ति के लिए प्रेरणा देनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

11. स्किनर के अधिगम सिद्धांत को कहते है –
    a. प्रयास एवं त्रुटि
    b. क्रिया प्रसूत अनुबंधन
    c. परम्परागत सिद्धांत
    d. उपयुक्त कोई नहीं
12. व्यवहार के व्यवस्थापन के सिद्धांत है-
    a. प्रतिक्रिया सामान्यीकरण
    b. आदत स्पर्धा
    c. श्रेणिबद्धता
    d. उपयुक्त सभी
13. सक्रिय अनुबंधन अधिगम सिद्धांत का प्रतिपादन _____ने किया।
14. स्किनर ने_____ प्रकार के अवरोध का विवेचन किया।
15. धनात्मक पुनर्बलक, ऋणात्मक पुनर्बलक और दण्ड प्रेरक किसे कहते है।

4.7 सारांश

व्यवहारवादी सिद्धांत बाह्य व्यवहार के अध्ययन पर बल देता है। इस प्रकार के अध्ययन के माध्यम से हम कई मानवीय विकारों जैसे चिंता, भय व आसामाजिक व्यवहार का उपचार करने में सफल हैं। परन्तु यह सिद्धांत सीखने की प्रक्रिया जिसमे मन और भावनात्मक स्तर पर कैसे सूचनायें एकत्रित करता है बताने में विफल हैं। यधपि थार्नडाइक, पैवलव और स्किनर का सिद्धांत अधिगम के सरल पक्ष को स्पष्ट करते हैं, किन्तु भावी सिद्धांत के लिए यह आधारशिला प्रदान करते है । अधिगम के नवीन सिद्धांत जैसे संज्ञानात्मक व निहितार्थ सिद्धांत को विकसित करने में इनका बहुत अधिक योगदान रहा है।

4.8 शब्दावली

1. **व्यवहारवाद (Behaviourism):-** व्यवहारवाद अधिगम का वह सिद्धांत है जो प्राणी के जैविक व्यवहार का अध्ययन करता है। व्यवहारवादियों के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को वैज्ञानिक प्रयोगो द्वारा अध्ययन किया जा सकता है । इस सिद्धांत के मुख्य प्रतिपादक थार्नडाइक, पैवलव और स्किनर है।

2. **अनुकूलित- अनुक्रिया (Conditioned response)** :- यह उत्तेजना की पुनरावृति द्वारा व्यवहार का संचालन है जिसमे उत्तेजना पहले किसी विशेष अनुक्रिया के साथ लगी रहती है और अंत में वह किसी व्यवहार का कारण बन जाती है जो कि पहले आंशिक रूप से उसके साथ लगी हुई थी।

3. **शास्त्रीय अनुबन्धन (Classical conditioning):-** शास्त्रीय अनुबन्धन एक प्रक्रिया है जिसमे तटस्थ या अस्वाभाविक उत्तेजक स्वाभाविक उत्तेजक के साथ मिलकर उसकी सभी विशेषताओं को अपने में प्राप्त कर लेता है।

4. **विलोपन (Extinction):-** यदि पूर्व स्थापित सम्बन्ध से पुनर्बलन को हटा दिया जाये तो विलोपन होता है। इसे सत्यापित करने के लिए स्किनर ने अपने प्रयोगों में अनुकूलन स्थापित होने के कुछ प्रयासों बाद चूहे को उत्तोलक दबाने पर भी भोजन (पुनर्बलन) नहीं दिया। पुनर्बलन न मिलने से चूहे की उत्तोलक दबाने की प्रतिक्रिया भी कम हो गयी और काफी समय बाद अनुकूलन पूर्णतया विलुप्त हो गया।

5. **सामान्यीकरण (Generalization):-**यदि कोई समान उत्तेजनाएँ किसी प्रतिक्रिया को उसी प्रकार उत्पन्न करती है जो कोई पूर्व उत्तेजना उत्पन्न करती थी तो उसे सामान्यीकरण कहते हैं।

6. **आदत स्पर्धा (Habit Competition):-** प्रतिक्रिया की प्रत्येक श्रेणी में स्पर्धा आदत पर सही आदत का अंकुश होना आवश्यक है । इसलिए इस श्रृंखला में सही आदत का पुर्नबलन किया जाता है। इस स्थिति को आदत स्पर्धा कहते हैं।

7. **तत्परता का नियम (Law of Readiness):** तत्परता का नियम को तैयारी का नियम से भी जाना जाता है। इस नियम द्वारा यह ज्ञात होता है कि सीखते समय कुछ परिस्थितियाँ व्यक्ति को संतोष (satisfy) प्रदान करती हैं और कुछ परिस्थितियों में उसे खीझ उत्पन्न होती है।

8. **अभ्यास का नियम (Law of Exercise):-** इस नियम के अनुसार थार्नडाइक ने यह बताया कि अभ्यास द्वारा उद्दीपन व अनुक्रिया के बीच का सम्बन्ध मजबूत होता है। थार्नडाइक ने इसे उपयोग का नियम (Law of Use) कहा। इसके विपरीत अभ्यास न करने से सम्बन्ध कमजोर पड़ जाता है और उसका विस्मरण हो जाता है। इसको उन्होंने अनुपयोग का नियम (Law of Disuse) कहा।

9. **प्रभाव का नियम(Law of Effect):-** इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। यदि किसी कार्य को करने से उसे सुखद अनुभूति होता

है तो वह उस अनुक्रिया को सीख लेता है। परन्तु खीझ उत्पन्न होने पर व्यक्ति उस अनुक्रिया को दोहरना नहीं चाहता।

10. **क्रिया प्रसूत अनुबन्धन (Operant conditioning):-** क्रिया प्रसूत अनुबन्धन अधिगम की एक प्रक्रिया है जिसमे सतत् या संभावित अनुक्रिया होती है। ऐसे समय क्रिया प्रसूतता की शक्ति बढ़ जाती है।
11. **पुनर्बलन (Reinforcement)**:- पुनर्बलन अनुक्रिया का वह परिणाम है, जिससे भविष्य में उस अनुक्रिया के होने कि सम्भावना में वृद्धि होती है। अर्थात अनुक्रिया का बार-बार दोहराने की सम्भावना का बढ़ना ही पुनर्बलन कहलाती है।
12. **प्रतिक्रिया सामान्यीकरण (Response Generalization):-** प्रतिक्रिया सामान्यीकरण से ही व्यवस्थापन किया जा सकता है। प्रतिक्रिया उद्देश्य के निकटवर्ती प्रतिक्रिया को पुनर्बलित करने से व्यवस्थापन किया जाता है।
13. **ऐच्छिक प्राप्ति (Spontaneous Recovery):-** यदि कोई प्रायोज्य विलोपन के उपरान्त किसी परिस्थिति से कुछ समय तक के लिए हट जाये और फिर पुनः उपास्थित होता है तो उतेजना के फिर प्रस्तुत करने से उसका निष्पादन पूर्व परिस्थिति से बेहतर होता है। इसको एक्च्छिक प्राप्ति कहते हैं।
14. **धनात्मक पुनर्बलन (Positive reinforcement):-** धनात्मक पुनर्बलन एक ऐसा उत्तेजक है जिनकी उपस्थिति प्रतिक्रिया शक्ति बढाती है। जेसे भोजन, पैसा अदि।
15. **ऋणात्मक पुनर्बलन (Negative reinforcement):-** यह एक दुखद उत्तेजक हैं जिनकी अनुपस्थिति प्रतिक्रिया शक्ति बढाती है।
16. **दण्ड प्रेरक (Punisher):-** दण्ड प्रेरक एक हानिकारक उत्तेजक है जो प्रतिक्रिया को कमजोर बनाता है। जहां दण्ड प्रेरक प्रतिक्रिया को कमजोर बनता हैं, वही ऋणात्मक प्रेरक उसे शक्ति सम्पन्न बनाता हैं।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. तत्परता का नियम, अभ्यास का नियम, प्रभाव का नियम
2. सीखने के गौण नियम हैं –
    - मानसिक वृति का नियम
    - बहु – प्रतिक्रिया का नियम
    - तत्व प्रबलता का नियम
    - आत्मिकरण का नियम
    - साहचर्य परिवर्तन का नियम

3. अनुकूलित- अनुक्रिया उत्तेजना की पुनरावृति द्वारा व्यवहार का संचालन है जिसमे उत्तेजना पहले किसी विशेष अनुक्रिया के साथ लगी रहती है और अंत में वह किसी व्यवहार का कारण बन जाती है जो कि पहले आंशिक रूप से उसके साथ लगी हुई थी।
4. प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखने के सिद्धांत का प्रतिपादन थार्नडाइक ने किया।
5. सत्य
6. समय, विलम्ब, अभ्यास
7. शास्त्रीय अनुबन्धन एक प्रक्रिया है जिसमे तटस्थ या अस्वाभाविक उत्तेजक स्वाभाविक उत्तेजक के साथ मिलकर उसकी सभी विशेषताओं को अपने में प्राप्त कर लेता है।
8. पैवलव
9. कुत्ते
10. सत्य
11. क्रिया प्रसूत अनुबंधन
12. उपयुक्त सभी
13. स्किनर
14. चार
15. धनात्मक पुनर्बलक एक ऐसा उत्तेजक हैं जिनकी उपस्थिति प्रतिक्रिया शक्ति बढाती हैं जेसे भोजन, पैसा अदि। ऋणात्मक पुनर्बलक एक दुखद उत्तेजक हैं जिनकी अनुपस्थिति प्रतिक्रिया शक्ति बढाती है जैसे माता- पिता की नाराजगी से बचने के लिया बालक प्रतिदिन पढाई करके उनके नाराजगी से बचता है। दण्ड प्रेरक एक हानिकारक उत्तेजक है जो प्रतिक्रिया को कमजोर बनती है। जहां दण्ड प्रेरक प्रतिक्रिया को कमजोर बनती हैं, वही ऋणात्मक प्रेरक उसे बलवती बनाती है।

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भटनागर, ए. बी एट .एल. (2015) बाल्यावस्था एव विकास , आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
2. पाठक, आर. पी. (2011) उच्च शिक्षा मनोविज्ञान, पियर्सन, दिल्ली
3. पाठक, पी. ड़ी (2011) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, अगरा
4. राय, गीता (2011) अधिगाम्कर्ता का विकास तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
5. सिंह अ. क. (2013) शिक्षा मनोविज्ञान, भरती भवन, मुम्बई
6. सिन्हा, जे. से. शिक्षण अधिगम का मनोवैज्ञानिक आधार, श्रीकविता प्रकाशन, जयपुर
7. शर्मा, क्रिर्तिका (2009) शैक्षिक मनोविज्ञान: एक अध्ययन, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कक्षागत अध्ययन के निहितार्थ व्यवहारवादी सिद्धान्तों का तार्किक उपयोग बताइये।
2. थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
3. पैवलव के अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धांत से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिए।
4. स्किनर के क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धांत का उल्लेख कीजिए तथा उसकी शिक्षा में उपयोगिता बताइये।
5. अधिगम का कौन सा सिद्धांत आपके अनुसार सबसे अच्छा है और क्यों ? उदाहरण सहित उतर दीजिये।

खण्ड 2

Block 2

इकाई 1- अधिगमकर्ता के रूप में प्रगतिशील या वृद्धिमान एवं विकासशील मानव वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पक्ष- शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा नैतिक

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अधिगमकर्ता के रूप में प्रगतिशील या वृद्धिमान एवं विकासशील मानव
1.3.1 वृद्धि एवं विकास
1.3.2 वृद्धि एवं विकास की अवधारणा
1.3.3 वृद्धि और विकास में अन्तर
1.3.4 वृद्धि एवं विकास के सामान्य सिद्धांत
1.4 विकास की अवस्थाएं
1.5 विकास के पक्ष
1.6 पियाजे का नैतिक विकास सिद्धांत
1.7 कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धांत
1.8 मनोवैज्ञानिक विकास (Psychological Development)
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अधिगमकर्ता सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया की केन्द्रीय धुरी है। शैक्षिक प्रक्रिया की सम्पूर्ण कार्य-प्रणालियाँ एवं कार्य-पद्धतियां अधिगमकर्ता को ही केन्द्र में रखते हुए आयोजित, नियोजित एवं संचालित की जाती है। इसी कारण अधिगमकर्ता से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष, आयाम, अवस्था, विशेषता तथा उसको प्रभावित

करने वाले विभिन्न सन्दर्भों आदि का अध्ययन किया जाता है जिससे एक प्रभावी शैक्षिक नीति, योजना, कार्यक्रम आदि का निर्माण किया जा सके जो सभी अधिगमकर्ताओं में निहित सभी प्रकार की संभावनाओं का सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट विकास कर सके। अधिगमकर्ता का एक मानव शिशु के रूप में इस जगत में अभिर्भाव होने से पूर्व एक छोटे एवं सूक्ष्म निषेचित अंडे (Fertilized ovum) से जीवन प्रारम्भ करता हुआ धीरे-धीरे विकास करता हुआ एक सामान्य मानव का रूप धारण कर लेता है। मानव वंशानुक्रम एवं वातावरणीय कारकों व शक्तियों के पारस्परिक अंत:क्रियात्मक प्रभावों का प्रतिफल होता है। मानव में वृद्धि एवं विकास सम्बन्धी प्रक्रियाओं का प्रारम्भ माँ के गर्भधारण करते ही शुरू हो जाती है। मानव में वृद्धि एवं विकास की प्रक्रियाएं एक निश्चित एवं निर्धारित पैटर्न का अनुपालन करते हुए विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए तथा मानव के विभिन्न आयामों एवं पक्षों का विकास करते हुए उसे एक सामर्थ्यवान, शक्तिशाली, योग्य, सामाजिक तथा विवेकशील प्राणी बनाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

10. प्रगतिशील एवं विकासशील मानव के प्रत्यय को स्पस्ट कर सकेंगे।
11. वृद्धि और विकास को परिभाषित कर सकेंगे।
12. वृद्धि और विकासमें अन्तर स्पस्ट कर सकेंगे।
13. वृद्धि और विकास की अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।
14. वृद्धि और विकास के सामान्य सिद्धांतों को विवेचित कर सकेंगे।
15. वृद्धि और विकास के विभिन्न पक्षों का वर्णन कर सकेंगे।
16. शारीरिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले विकास को स्पस्ट कर संकेगे।
17. मानसिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
18. पियाजे के नैतिक विकास सिद्धांत की विवेचना कर सकेंगे।
19. कोहेलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।
20. संवेगात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।
21. सामाजिक विकास की अवास्थागत विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
22. मनोवैज्ञानिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे।

1.3 अधिगमकर्ता के रूप में प्रगतिशील या वृद्धिमान एवं विकासशील मानव

मानव की संरचना एवं उसकी कार्य-पद्धति व कार्य प्रणाली में उत्तरोतर मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तनों को लाने वाली वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया जन्म के समय से ही शुरू हो जाती है। वृद्धि और विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप मानव जब किसी क्षेत्र विशेष की विशेषताओं, योग्यताओं व क्षमताओं के शिखर

बिन्दु उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो उसे उस क्षेत्र विशेष में परिपक्व कहा जाता है। मानव में वृद्धि और विकास की प्रक्रिया उसके वंशानुक्रम एवं वातावरण के अंत:क्रियात्मक स्वरुप पर निर्भर करती है क्योकि वंशानुक्रम से ही मानव को बीजाभूत गुणों व विशेषताओं का उपहार मिलता है और वातावरण उन बीजाभूत गुणों एवं विशेषताओं की वृद्धि तथा विकास के लिए आधारभूत धरातल प्रदान करते है। इसीलिए मानव के वंशानुक्रम एवं वातावरण का अंत:क्रियात्मक प्रभाव उसके शारीरिक, मानसिक,सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक एवं संवेगात्मक विकास पर पड़ता है। वृद्धि और विकास के दो प्रमुख कारण माने जाते है। उनमें से पहला परिपक्वता और दूसरा अधिगम को माना जाता है।परिपक्वता से आशय है कि वृद्धि एवं विकास के फलस्वरूप अपेक्षित या निर्धारित समय व अवस्था में गुणों एवं विशेषताओं का सुदृढीकरण होने से है अर्थात अनुकूलतम स्थिति को प्राप्त कर लेने से हैं। अधिगम से आशय वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया में मानव द्वारा वातावरणीय परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए अपेक्षित गुणों, योग्यताओं व क्षमताओं को अर्जित करने से है। मानव में यह एक स्वाभाविक प्रवृति होती है कि वह जीवनपर्यंत अधिगम करता रहता है क्योकि उसकी आवश्यकताओं का कभी अंत नहीं होता है। अधिगम की प्रक्रिया का यह भी एक यथार्थ सत्य है कि अधिगम के लिए एक न्यूनतम स्तर की परिपक्वता होना आवश्यक है क्योकि प्रत्येक प्रकार के अधिगम के लिए एक निश्चित स्तर की शारीरिक या मानसिक या सामाजिक आदि परिपक्वता का होना आवश्यक है। इसी कारण मानव अधिगम के किसी विशेष स्तर तक के ही अधिगम को अर्जित कर पाता है जहाँ तक की उसने आवश्यक परिपक्वता को प्राप्त कर लिया है।

एक प्रगतिशील अधिगमकर्ता से आशय यह हैं कि विकास के अंतर्गत परिवर्तनों की दिशा अग्रगामी होती है एवं मानव को अभियोजन की ओर अग्रसर कराते है अर्थात विकास का संबंध मानव को अभियोजन की क्रियाओं में उन्नतशील परिवर्तनों के घटित होने से है। अत: विकास द्वारा होने वाले परिवर्तन मानव को पूर्व अवस्था से अग्रिम अवस्था की ओर अग्रसर करते है। जन्म के समय जो शिशु नि:सहाय होता है आगे चलकर वह एक सहाय एवं विभिन्न क्षमताओं से युक्त मानव बन जाता है। विकासक्रम में प्रत्येक प्रकार की क्रियाओं जैसे – उठने, बैठने, चलने, दौड़ने आदि में सक्षम हो जाता है। इसीलिए हरलॉक ने विकास को परिवर्तन कहा है।

1.3.1वृद्धि एवं विकास

वृद्धि और विकास की प्रक्रिया मानव हो या कोई अन्य जीव सभी में उनके जीवन प्रक्रिया व पैटर्न के रूप में चलती है। मानव का जन्म के समय एक असहाय शिशु के रूप में होता है किन्तु धीर-धीरे आगे चलकर वह अपने विकास पैटर्न में विकास करता हुआ एक सक्षम, सामर्थ्यशाली एवं बौद्धिक मानव के रूप में स्थापित हो जाता है। मानव में वृद्धि और विकास कि यह प्रक्रिया माँ के गर्भवती होने से शुरू होकर उसकी मृत्यु तक चलती रहती है। मानव जन्म के पश्चात सुनिश्चित अवस्थाओं क्रमशः जैसे शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं वयस्कावास्था तक चलती है। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में

मानव से सम्बंधित विभिन्न पक्षों जैसे-शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा नैतिक पक्षों का विकास होता है। विकास को एक बहुमुखी प्रक्रिया माना जाता है। इसमें बहुत सी विशेषताओं का समावेश होता है। इसी कारण हरलॉक महोदय कहते थे कि 'विकास के परिणामस्वरूप ही मानव में नवीन विशेषताएं तथा योग्यताएं प्रकट होती है।'

1.3.2 वृद्धि एवं विकास की अवधारणा (Concept of Growth and Development)

मानव की वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया का अध्ययन शैक्षिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है। वृद्धि और विकास की प्रक्रियाओं के ज्ञान के आभाव में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का आयोजन एवं नियोजन कभी भी प्रभावी रूप नहीं किया जा सकता है। एक शिक्षक को वृद्धि एवं प्रक्रिया से अवगत होना आवश्यक माना जाता है क्योकि इसके ज्ञान के आभाव में शिक्षक विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षण का न तो व्यवस्थापन कर पाएगा और न ही वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण कर पाएगा। अत: इनकी अवधारणाओं को समझना आवश्यक है।

वृद्धि का अर्थ: गर्भाशय में भ्रूण बनने के पश्चात जन्म होते समय तक उसमें जो प्रगतिशील परिवर्तन होते है उन्हें वृद्धि कहा जाता है। मानव में जन्म लेने से लेकर वयस्कता तक स्वाभाविक रूप में होने वाले ऊर्ध्वगामी परिवर्तन को वृद्धि की परिधि में रखा जाता है। इनमें अधिगम और प्रशिक्षण आदि का कोई प्रभाव नहीं माना जाता है। जैसे बच्चे में दांत का निकालना एक स्वाभाविक वृद्धि प्रक्रिया का परिणाम माना जाता है। वृद्धि की एक दिशा और सीमा भी मानी जाती है। जैसे-बच्चे की लम्बाई की एक दिशा होती है यह दिशा उर्ध्ववर्ती होती है एवं इसकी एक मापनीय सीमा भी मानी जाती है जिसकी पूर्णता के पश्चात वृद्धि की संभावनाएं नगण्य मानी जाती है। साधारण शब्दों में वृद्धि से आशय शरीर और उसके अंगों के आकार, भार, लम्बाई आदि मे हुए परिवर्तनों से होता है। विद्वानों ने वृद्धि को निम्न प्रकार परिभाषित किया है-

- फ्रैंक के अनुसार- शरीर तथा व्यवहार के किसी विशेष पक्ष में जो परिवर्तन होता है उसे वृद्धि कहते है। वृद्धि को इन्होनें कोशकीय वृद्धि के रूप में लिया है।
- **मेरीडिथ** का मत है- कुछ लेखक वृद्धि का प्रयोग आकार की वृद्धि के अर्थ में करते है और विकास का विभेदीकरण या विशिष्टीकरण के अर्थ में।
- **गेसेल** के अनुसार- वृद्धि एक ऐसी जटिल एवं संवेदनशील प्रक्रिया है, जिसमें प्रबल स्थिरता लाने वाले कारक केवल वाह्य ही नहीं अपितु आन्तरिक भी होते है जो प्रतिमान एवं वृद्धि की दिशा में संतुलन बनाए रखते है।

विकास का अर्थ: विकास का संबंध शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यक्षमता और कार्यकुशलता से है। यह वह प्रक्रिया है जो शरीर के विभिन्न पक्षों में आतंरिक, वाह्य तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को एकीकृत

व संगठित कर कार्य करने योग्य बनाती है। विकास से आशय अनेक वृद्धि प्रक्रियाओं को समाहित करने वाली एकीकृत व श्रृंखलाबद्ध परिवर्तन प्रक्रिया से है। विकास शरीर के सभी प्रकार के गुणात्मक परिवर्तनों का प्रकटीकरण है जिसके कारण मानव की कार्य क्षमता एवं कार्य कुशलता तथा व्यवहार में प्रगति होती है। विकास के कारण ही मानव में नई विशेषताओं, गुणों, योग्यताओं व क्षमताओं का प्रकटन होता है। विकास को विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है-

- **हरलॉक** के अनुसार- विकस वृद्धि तक ही सीमित नहीं है वरन इसमें व्यस्कावास्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नई विशेषताएं एवं योग्यताएं प्रकट होती है।
- **स्किनर** के अनुसार- विकास जीव और उसके वातावरण की अंत:क्रिया का प्रतिफल है।
- **स्टाट** के अनुसार-विकास समय के साथ होने वाले परिवर्तन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रेक्षण प्रतिफलों के अध्ययन द्वारा किया जाता है।
- लाबार्वा के अनुसार का अभिप्राय है परिपक्वता के कारण आए परिवर्तन से है अर्थात प्राणी के जीवन में समय के साथ आये हुए परिवर्तनों से है।

1.3.3 वृद्धि और विकास में अन्तर

वृद्धि और विकास में अत्यंत घनिष्ठ संबंध माना जाता है। विकास में वृद्धि का भाव सदैव निहित रहता है किन्तु यह वृद्धि से अधिक व्यापक एवं एकीकृत होता है। मनोवैज्ञानिक वृद्धि तथा विकास में अन्तर व्यक्त करते है जोकि निम्न है-

वृद्धि	विकास
वृद्धि का संबंध शरीर के किसी अंग या अवयव तथा व्यवहार के किसी पहलू में होने वाले परिवर्तन से होता है।	विकास का संबंध शरीर के किसी अंग या अवयव या व्यवहार के पहलू में होने परिवर्तन से नहीं अपितु व्यक्ति में होने वाले सम्पूर्ण परिवर्तनों के एकीकृत स्वरुप से है।
वृद्धि की प्रक्रिया परिपक्वता के विशेष स्तर तक पहुँच कर लगभग समाप्त हो जाती है।	विकास को एक सतत प्रक्रिया माना जाता है जो जीवनपर्यंत चलती रहती है।
वृद्धि से आशय व्यक्ति में हुए परिमाणात्मक परिवर्तनों से लिया जाता है। जैसे-आकार, भार, लम्बाई आदि में वृद्धि से।	विकास का संबंध परिमाणात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप हुए गुणात्मक प्रभावों से है। जो व्यक्ति की कार्यकुशलता तथा कार्यक्षमता के रूप में व्यवहार में प्रदर्शित होते है।
वृद्धि का सम्बन्ध शारीरिक अंगों से है तथा यह विशिष्ट होती है	विकास का संबंध उनके गुणों से होता है और यह सामान्य होता है।
वृद्धि की दिशा और गति का प्रत्यक्ष मापन किया जा सकता है	विकास का मापन पूर्णत: संभव नहीं है और इन्हें केवल अप्रत्यक्ष माध्यमों जैसे अनुभव, अवलोकन व निरीक्षण के

	आधार भी जाना या समझा जा सकता है।
वृद्धि को विकास प्रक्रिया का एक चरण माना जाता है।	विकास में वृद्धि का भाव सदैव निहित रहता है और यह वृद्धि से अधिक व्यापक एवं एकीकृत होता है।
वृद्धि से सम्बंधित पक्ष या घटक मूर्त माने जाते है।	विकास से सम्बंधित पक्ष या घटक अमूर्त माने जाते है।
वृद्धि के फलस्वरूप हुए परिवर्तन व्यक्ति में स्पस्ट दृष्टिगोचर होते है।	विकास सम्बन्धी परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से व्यवहार में प्रदर्शित होते है।

1.3.4 वृद्धि एवं विकास के सामान्य सिद्धांत (General Principles of Growth and Development)

मानव जन्म लेने के पश्चात अपनी मृत्यु तक विकास की अनेकों अवस्थाओं से गुजरता है। विकास की इन निर्धारित अवस्थाओं से मानव जब एक अवस्था से दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है, तब उसमें कुछ परिवर्तन परिलक्षित होते है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों एवं शोधों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव में किसी अवस्था या अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तन या परिवर्तनों में कुछ निश्चित सिद्धांतों का अनुसरण करने की प्रवृति पाई जाती है। इन्हीं को वृद्धि एवं विकास के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है। जोकि निम्न है-

1. **निरन्तरता का सिद्धांत :** इस सिद्धांत से आशय है कि वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया निरन्तर अविराम गति से जीवनपर्यंत चलती रहती है। इसकी गति कभी धीमी तो कभी तेज होती है।
2. **विकास की दिशा का सिद्धांत:** इस सिद्धांत से आशय है कि वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया पूर्व निश्चित दिशा में चलती है। जन्म पूर्व विकास की प्रक्रिया मस्तकोधमुखी चलती है तथा इसके उपरान्त cephalo-caudal Proximo-distal (सिर से पैर की ओर एवं निकट से दूर की ओर)क्रम में चलती है।
3. **वैयक्तिक विभिन्नता का सिद्धांत:** इस सिद्धांत से आशय है कि वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया में वैयक्तिक विभिन्नता रहती है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति में वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया अपनी गति एवं तरीके से चलती है। समान आयु या एक साथ जन्मे बच्चों में भी वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पक्षों के विकास में भिन्नता देखने को मिलती है।
4. **निश्चित तथा पूर्वकथनीय प्रतिरूप का सिद्धांत:** मानव या अन्य सभी प्रजातियों में विकास का एक निश्चित पैटर्न होता है। मानव प्रजाति विकास के अपने निश्चित पैटर्न का अनुसरण करते हुए विकास करती है। विकास के इन प्रतिमानों के आधार पर व्यक्तियों के विकास का पूर्वकथन किया जा सकता है।
5. **वंशानुक्रम तथा वातावरण की अंत:क्रिया का सिद्धांत**: व्यक्ति का विकास उसके वंशानुक्रम एवं वातावरण के परस्पर अंत:क्रिया का प्रतिफल होता है।इन दोनों की परस्पर अंत:क्रिया ही व्यक्ति के विकास की दिशा और गति को निर्धारित करती है।

6. **एकीकरण का सिद्धांत:** इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति पहले अपने सम्पूर्ण अंग को, फिर अंग के विभिन्न भागों को चलाना सीखता है। इसके बाद वह उन भागों में एकीकरण करना सीखता है।
7. **चक्राकार प्रगति का सिद्धांत:** इसके अनुसार विकास की प्रक्रिया चक्राकार ढंग से चलती है।विकास की गति एक समान ढंग से न चलकर, बढते हुए क्रम में पीछे हट कर अपने को परिपक्व और स्थायी बनाते हुए आगे बढता है।
8. **सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धांत:** विकास के सभी पक्षों में चाहे वह विकास के किसी भी पहलू से सम्बंधित हो, व्यक्ति पहले सामान्य प्रतिक्रियाएं करता है फिर वह विशिष्ट प्रतिक्रियाएं करना सीखता है। जैसे नवजात शिशु पहले सम्पूर्ण पुरे शरीर का संचालन करता है और बाद में किसी अंग विशेष का।
9. **परस्पर संबंध का सिद्धांत:** मानव से सम्बंधित विकास के सभी पक्ष एक-दूसरे से परस्पर अन्तर-सम्बंधित होते है। इनमें से किसी एक पक्ष में हुए विकास का शरीर के अन्य पक्षों में होने वाले विकास को प्रभावित करने की क्षमता रहती है।

इसके अतिरिक्त वृद्धि और विकास की प्रक्रिया को स्पस्ट करने के लिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने विशिष्ट सिद्धांत दिए है जोकि **वृद्धि और विकास के सिद्धांत (Theories of Growth and development)** के रूप में जाने जाते है। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांत निम्न है-

- एरिक्सन का मनो-सामाजिक विकास सिद्धांत (Erickson's Theory of Psycho-Social Development)
- चोमस्की का भाषा विकास सिद्धांत (Chomsky's Theory of Language Development)
- कोहलबर्ग का नैतिक इकस सिद्धांत (Kohlberg's Theory of Moral Development)
- गिल्लीगन का नैतिक विकास सिद्धांत (Gilligan's Theory of Moral Development)
- फ्रायड का मनो-लैंगिक विकास सिद्धांत (Fraud's Theory of Psycho-Sexual Development)
- पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत (Piaget's Theory of Cognitive Development)
- सुल्लिवन का व्यकतित्व विकास का परस्पर-संबंध प्रतिमान (Sullivan's Interpersonal Models of Personality Development)

उपरोक्त विकास के सिद्धांत वास्तविकता में सम्पूर्ण विकासात्मक प्रक्रिया की व्याख्या न करके विकास प्रक्रिया के किन्हीं विशेष पक्षों या पहलूओं की व्याख्या करते है।

1.4 विकास की अवस्थाएं (Stages of Development)

विकास को एक सतत एवं जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। विकास की प्रक्रिया में मानव विकास कुछ सोपानों या चरणों या अवस्थाओं से होकर अग्रसर होता है। मानव विकास की अवस्थाओं को सामान्यत: निम्न रूप अमिन विभाजित किया जा सकता है-

- गर्भावस्था (270-300 दिन)
- शैशवावस्था (जन्म से पांच वर्ष तक)
- बाल्यावस्था (छ: वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक)
- किशोरावस्था (तेरह वर्ष से लेकर अठारह वर्ष तक)
- प्रौढ़ावस्था (उन्नीस वर्ष से अधिक)

विकास की अवस्थाओं के विभाजन का कोई एक निश्चित वर्गीकरण नहीं है। मनोवैज्ञानिकों ने इसके कई विभाजन प्रस्तुत किए है। उनमें से कोल महोदय के विभाजन को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अवस्था (Stage)	समय (Age)
शैशवावस्था (Infancy)	जन्म से 2 वर्ष
प्रारम्भिक बाल्यावस्था (Early Childhood)	2 से 5 वर्ष
मध्य बाल्यावस्था (Middle Childhood)	बालक – 6 से 12 वर्ष बालिका – 6 से 10 वर्ष
उत्तर बाल्यावस्था / पूर्व किशोरावस्था (Late Childhood / Pre-Adolescence)	बालक – 13 से 14 वर्ष बालिका – 11 से 12 वर्ष
प्रारंभिक किशोरावस्था (Early Adolescence)	बालक – 15 से 16 वर्ष बालिका – 12 से 14 वर्ष
मध्य किशोरावस्था (Middle Adolescence)	बालक – 17 से 18 वर्ष बालिका – 15 से 17 वर्ष
उत्तर किशोरावस्था (Late Adolescence)	बालक – 19 से 20 वर्ष बालिका – 18 से 20 वर्ष
प्रारंभिक प्रौढावस्था (Early Adulthood)	21 से 34 वर्ष
मध्य प्रौढावस्था (middle Adulthood)	35 से 49 वर्ष
उत्तर प्रौढावस्था (Late Adulthood)	50 से 64 वर्ष
प्रारंभिक वृद्धावस्था (Early Senescence)	65 से 74 वर्ष
वृद्धावस्था (Senescence)	75 वर्ष से आजीवन

अभ्यास प्रश्न

1. शैक्षिक परिप्रेक्ष्य कौन सी अवस्थाएं ज्यादा महत्वपूर्ण मानी जाती है? नाम लिखिए?
2. शैशावस्था के विकासक्रम की समयावधि क्या मानी जाती है?
3. वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में किसके परिवर्तन स्पस्ट परिलक्षित होते है?
4. सामान्य रूप से वृद्धि और विकास की अवस्थाओं के कितने विभाजन किए गए है?
5. किस अवस्था का समय काल सबसे कम होता है?

1.5 विकास के पक्ष (Aspects of Development)

प्रत्येक अवस्था में विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है-

- शारीरिक विकास (Physical Development)
- मानसिक विकास (Mental or Intellectual Development)
- सामाजिक विकास (Social Development)
- संवेगात्मक विकास (Emotional Development)
- नैतिक विकास तथा (Moral Development)
- मनोवैज्ञानिक विकास (Psychological Development)

i. **शारीरिक विकास (Physical Development)-** शारीरिक विकास के अंतर्गत शारीरिक ढांचे तथा शरीर के आन्तरिक एवं वाह्य अवयवों में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी परिवर्तन समाहित रहते है। प्रत्येक अवस्था में शारीरिक विकास की अपनी विशेषता एवं गुण होते है।
गर्भावस्था में शारीरिक विकास: जन्म पूर्व विकास का प्रथम काल डिम्बावस्था कहलाता है।इसकी समयावधि जन्म पूर्व विकास के प्रथम दो सप्ताह मानी जाती है। निषेचित अंड गर्भाशय की दीवारसे संबंध जोड़ लेता है। दूसरी अवस्था अर्थात पिंडावस्था तीसरे सप्ताह से शरू होकर आठवें सप्ताह तक चलती है। इस समय निषेचित अंड कोषों का समूह एक लघु मानव का रूप ले लेता है। इस काल में शारीरिक विकास मस्तक-अधोमुखी दिशा में होता है। तीसरी अवस्था भ्रूणावस्था जो निषेचन के नवें सप्ताह से शुरू होकर जन्म तक चलती है। इसमें पिंडावस्था में निर्मित शिशु के शरीर के विभिन्न भागों के आकार में वृद्धि होती है। जन्म पूर्व काल के नव माह में निषेचित अंड का आकार लगभग पचास हजार गुणा हो जाता है तथा भार एक ग्राम के पांच हजारवें भाग से बढकर लगभग साढ़े तीन किलो हो जाता है।

शैशवावस्था में शारीरिक विकास: जन्म से लेकर पांच अथवा छ: वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था कहा जाता है। प्राय: जन्म के समय लड़के लड़कियों की लम्बाई से लगभग आधा सेंटीमीटर अधिक लम्बे होते है। प्रथम वर्ष शिशु की लम्बाई लगभग ७३ सेंटीमीटर होती है जोकि छठवें वर्ष लगभग १०८ सेंटीमीटर हो जाती है। नवजात शिशु का भार जन्म के समय लगभग तीन से साढ़े तीन किलो के आसपास होता है जोकि शैशावस्था के अंत में लगभग सोलह से साढ़े सोलह किलोग्राम हो जाता है। नवजात शिशु के जन्म के समय सर की लम्बाई कुल शरीर की लगभग एक चौथाई होती है और मस्तिष्क का भार साढ़े तीन सौ ग्राम होता है जोकि शैशावस्था के अंत तक लगभग दो सौ पचास ग्राम हो जाता है। प्रारम्भिक शैशावस्था शरीर और आकार में वृद्धि की गति अत्यंत तेज होती है। नवजात शिशु में हड्डियों की संख्या लगभग २७० होती है जोकि छोटी, कोमल एवं लचीली होती है। लड़कियों की तुलना में लड़कों में अस्थिकरण अधिक शीघ्र होता है।जन्म के समय शिशु में दांत नहीं होते है। छठवें या सातवें सप्ताह से दूध के दांत निकला प्रारम्भ हो जाते है।पांचवें से छठवें वर्ष की आयु से स्थायी दांत निकलना प्रारम्भ हो जाते है। जन्म के शिशु की मांसपेशियों का भार लगभग कुल भार का २३% होता है कितु छठवें वर्ष तक लगभग एक चौथाई हो जाता है। प्रथम माह शिशु के ह्रदय की धड़कन लगभग १४० प्रति मिनट होती है जो छठवें वर्ष तक लगभग १०० हो जाती है तथा शिशु की भुजाओं व पैरों की लम्बाई प्रथम दो वर्षों में भुजाओं की दोगुनी व पैरों की डेढ़गुनी हो जाती है।

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास: इस अवस्था में शरीर की लम्बाई लगभग ५ से ७ सेंटीमीटर प्रतिवर्ष की गति से वृद्धि करती है। इस अवस्था के शुरुवात में लड़कों की लम्बाई लड़कियों से एक सेंटीमीटर अधिक होती है वही इस अवस्था की समाप्ति पर यह अनुपात इसके विपरीत हो जाता है अर्थात लड़कियों की लम्बाई एक सेंटीमीटर अधिक हो जाती है। आरंभिक बाल्यावस्था में लड़कियों और लड़कों के भार में लगभग समानता होती है कितु इस अवस्था के अंत में लड़कियों का औसत भार लड़कों से अधिक हो जाता है।बाल्यावस्था के अंत तक सिर और मस्तिष्क का आकार अपने अधिकतम विकास का लगभग ९५% तक विकसित हो जाता है। बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या लगभग ३५० हो जाती है और इसमें लचीलापन समाप्त होने लगता है। हड्डियों का अस्थिकरण तेजी से होता है। बाल्यावस्था के अंत तक लगभग २७-२८ स्थायी दांत आ जाते है। लड़कियों में लड़कों के अपेक्षा स्थायी दांत जल्दी आते है। इस अवस्था में मांसपेशियों का कुल भार लगभग शरीर के अनुपात लभग ३३% हो जाता है तथा लड़का या लड़की मांसपेशियों पूर्ण नियंत्रण करने लगते है। लड़कों के कंधे चौड़े, कुल्हे पतले, पैर लम्बे व सीधे तथा लड़कियों के कंधे पतले, कुल्हे चौड़े, पैर अंदर की ओर कुछ झुके रहते है। इस अवस्था में ह्रदय धड़कन लगभग ८५ प्रति मिनट हो जाती है तथा लड़कों व लड़कियों में यौन अंगों का विकास तेजी से होने लगता है।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास: इस अवस्था में मानव में प्रजनन क्षमता का विकास होता है। इस अवस्था में विकास तीव्र एवं बहुआयामी होता है। लड़कियां लगभग सोलह वर्ष तक

और लड़के लगभग अठारह वर्ष तक अपनी अधिकतम संभाव्य लम्बाई को प्राप्त कर लेते है। इस अवस्था के अंत मे दोनों की लम्बाई मे लगभग दस सेंटीमीटर का अन्तर रहता है। लड़कों का भार लड़कियों की अपेक्षा तीव्र गति से बढता है और अवस्था के में लड़कों का औसत भार लड़कियों के भार से अधिक होता है। लगभग सोलह वर्ष की अवस्था तक सिर व मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है। एक पूर्ण विकसित मस्तिष्क का भार साढ़े बारह सौ ग्राम से चौदह सौ ग्राम माना जाता है। इस अवस्था में हड्डियों की अस्थिकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है और इनकी संख्या २०६ हो जाती है। किशोरावस्था के प्रारम्भ तक लगभग स्थायी दांत निकल आते है केवल चार प्रज्ञा दांत इस अवस्था या अगली अवस्था तक निकलते है। मांसपेशियां अधिक दृढ़ हो जाती है एवं इनका भार शरीर के भार का लगभग ४५% हो जाता है। किशोरावस्था में ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों एवं प्रजनन अंगों का पूर्ण विकास हो जाता है। लड़कों में दाढ़ी व मूंछ निकलने लगती है और लड़कियों के वक्षस्थल एवं कूल्हों में परिवर्तन आने लगता है। इस अवस्था में लड़कियों में मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाता है। ग्रथीय विकास के कारण लड़कों की आवाज में भारीपन तथा लड़कियों की आवाज में कोमलता आ जाती है। इस अवस्था के अंत तक ह्रदय की धड़कन ७२ प्रति मिनट हो जाती है।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक-

- वंशानुक्रम
- वातावरण
- गर्भस्थ अवस्था में माता की शारीरिक व मानसिक अवस्था
- भोजन व पौष्टिक आहार
- परिवार की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्थिति
- आत्माभिव्यक्ति, खेल-कूद, व्यायाम तथा मनोरंजन के साधन
- निंद्रा, विश्राम एवं चिकित्सकीय सुविधाएं
- भौगोलिक परिस्थितियां
- शारीरिक रोगआदि

ii. **मानसिक विकास (Mental or Intellectual Development) -** मानव में संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, स्मरण, तर्क व विचार शक्ति, निरीक्षण, परीक्षण, बुद्धि, भाषा सम्बन्धी योग्यता, समस्या-समाधान योग्यता, निर्णय शक्ति, ध्यान आदि सभी प्रकार की योग्यताएं, क्षमताएं तथा शक्तियां मानसिक वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया से सम्बंधित एवं नियंत्रित होती है।मानसिक विकास मानव में उत्पन्न होने वाली चेतना और समझ है जिसके फलस्वरूप उसके व्यवहार में परिवर्तन तथा परिमार्जन होता रहता है।

- **शैशावस्था में मानसिक विकास:** इस अवस्था में मानसिक विकास अत्यंत तेजी से होता है। मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि तीन वर्ष तक की आयु तक शिशु का लगभग पचास प्रतिशत मानसिक विकास हो जाता है। शैशावस्था के मानसिक विकास की विशेषताएं निम्न है-
- **प्रथम वर्ष मानसिक विकास:** प्रथम माह में शिशु अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रतिक्रिया निम्न क्रियाओं द्वारा करता है-हाथ-पैर फेंकने, जोर की आवाज, रोने आदि से। दूसरे माह ध्वनिके प्रति आकर्षण, वस्तुओं को ध्यान से देखना, तेज प्रकाश के प्रति अनुक्रिया करना आदि। चौथे माह वस्तुओं को पकड़ने का प्रयत्न करना, माँ को देखकर मुस्कराना, क्रोध प्रकट करना आदि। छठे माह वस्तुओं को पकड़कर मुहं में रखना, अपना नाम समझने लगना व्यंजनों की ध्वनि करना आदि।आठवें माह शिशु से खिलौना या वस्तु छीनने पर रोना, रूचि की चीजों से खेलना आदि। दसवें माह दूसरे शिशुओं की गति व आवाजों का अनुकरण करना, वस्तुओं को इधर-उधर रखना आदि। बाहरवें माह शिशु माता-पिता या भाई-बहनों की क्रियाओं का नौकरान करना, धीरे-धीरे चले का प्रयत्न करना, छोटे शब्दों का बोलना आदि।
- **दूसरे वर्ष मानसिक विकास:** शिशु दो शब्दों के सरल वाक्य बोल सकना, पूछने पर प्रतिक्रिया देना तथा वस्तुओं को एक दूसरे के उपर रखने का प्रयास करना आदि।
- **तीसरे वर्ष मानसिक विकास:** शिशु द्वारा पांच- सात शब्दों का वाक्य बना लेना, पूंछने पर नाम बताना, चित्रों को पहचानना, संख्याओं का दोहराना, वस्तुओं को यथास्थान रखना तथा सीधी रेखा खीचना आदि।
- **चौथे वर्ष मानसिक विकास:** अक्षर लिखने की शुरुवात, वस्तुओं को क्रम से रखना, चित्रों के विषय में प्रश्न पूंछना, दस तक गिनती याद कर लेना आदि।
- **पांचवें वर्ष मानसिक विकास:** ठंडे-गर्म, हल्के-भरी व छोटे-बड़े का ज्ञान होना, माता-पिता की कार्य में सहायता करना, रंगों को पहचानना एवं बड़े वाक्य को बोल लेना आदि।
- **बाल्यावस्था में मानसिक विकास:** इस अवस्था में मानसिक विकास निम्न रूप में प्रदर्शित होता है-
- **छठें वर्ष में मानसिक विकास:** सरल प्रश्नों का उत्तर दे सकना, बिना रुके पंद्रह तक की गिनती सुना देना, व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध वाक्य बोलना, छपे या प्रदर्शित चित्रों का नाम बता सकना आदि।
- **सातवें वर्ष में मानसिक विकास:** छोटी घटनों का वर्णन कर सकना, वस्तुओं की समानता व असमानता को बता सकना, संयुक्त व जटिल वाक्यों का प्रयोग कर लेना आदि।

- **आठवें वर्ष में मानसिक विकास:** छोटी कहानियों एवं कविताओं का याद कर लेना व सुनना, कहानियों से सम्बंधित प्रश्नों का उत्तर दे लेना आदि।
- **नवें वर्ष में मानसिक विकास:** बच्चा समय, दिन, तारीख, वर्ष आदि बताने लगता है, रुपए-पैसे गिन लेता है, सामान्य गणितीय संक्रियाएं कर लेना आदि।
- **दसवें वर्ष में मानसिक विकास:** अपने व्यक्तिगत कार्य कर सकना,दैनिक कार्यों का संपादन करने लगना तथा द्रुत गति से बोल सकना आदि।
- **ग्यारवें वर्ष में शारीरिक विकास:** इस आयु में बच्चा तर्क, निरीक्षण व जिज्ञासा शक्ति का प्रयोग कर लेता है, वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं की तुलना करना तथा कठिन सबदों की व्याख्या करना सीख लेता है। प्रत्यक्ष अवलोकन से ज्ञान प्राप्त करने लगता है।
- **बारहवें वर्ष में मानसिक विकास:** इस आयु में तर्क करने तथा समस्या-समाधान करने की योग्यता का विकास हो जाता है।वह विभिन्न परिस्थितियों की वास्तविकता को जानने का प्रयास करता है।
- **किशोरावस्था में मानसिक विकास:** इस अवस्था में मानसिक विकास अत्यंत तेजी से होता है और अवस्था की समाप्ति तक लगभग सभी मानसिक शक्तियों का विकास पूर्ण h जाता है।इस अवस्था की प्रमुख मानसिक विशेषताएं निम्न है-
- **मानसिक योग्यताएं:** शारीरिक व मानसिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यताओं का भी परिमार्जन तथा विकास होता है जिसके फलस्वरूपचिंतन, विचार करने, अन्तर करने तथा समस्याओं का हल कर सकने की योग्यताओं का अधिकतम विकास होता है।
- **बुद्धि का विकास:** इस अवस्था में बुद्धि का विकास अपनी उच्चतम स्थिति तक पहुँच जाता है। बौद्धिक पूर्णता के कारण उसकी निम्न क्षमताओं में परिष्कार व परिमार्जन होता है जैसे- अमूर्त चिंतन करने की योग्यताओं का विकास, तर्क शक्ति में वृद्धि, एकाग्रता व अवधान केन्द्रित करने की क्षमता, अच्छी स्मरण शती का होना, कल्पना शक्ति तथा भाषा विकास आदि।
- **रुचियों का विकास:** इस अवस्था में किशोरों की रुचियों में अधिक बहुलता रहती है। इसमें शारीरिक स्वास्थ्य, अध्ययन, चरित्र, भोजन, जीवन के आदर्शों व वेशभूषा से सम्बन्धित रुचियों का विकास समाहित रहता है।

अधिगम क्षमता का विकास: इस अवस्था में जिज्ञासा की प्रधानता होने के कारण किशोर शीघ्र अधिगम करने का प्रयास करते है। वह अपनी रूचि के अनुकूल क्षेत्रों तथा विषयों में अधिगम क्षमता को बढाने का प्रयास करता है।

मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- वंशानुक्रम
- परिवार का वातावरण
- परिवार की सामाजिक – आर्थिक स्थिति
- विद्यालय
- समाज
- शिक्षक
- माता-पिता की शिक्षा
- स्वास्थ्य
- अधिगमकर्ता की शिक्षा आदि।

iii. **सामाजिक विकास (Social Development)-** जन्म के समय या बाद के समय में शिशु न तो सामाजिक होता है और न ही असामाजिक होता है। बाद की परिस्थितियों में उसमें सामाजिक या असामाजिक व्यवहार विकसित होता है। शिशु जब समाज के नियमों तथा नैतिक मानकों को आसानी से सीख लेता है तब कहा जाता है कि उसमें सामाजिक विकास हुआ है। सामाजिक विकास से आशय समाज के नियमों के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता से होता है। हरलॉक के अनुसार – "सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता से होता है।" सामाजिक नियमों के अनुकूल व्यवहार करना सीखने को ही समाजीकरण भी कहा जाता है।

शैशावस्था में सामाजिक विकास: शैशावस्था में बच्चे में सामाजिक विकास निम्न प्रकार से होता है- प्रथम माह में शिशु किसी वस्तु या व्यक्ति को कोई स्पस्ट प्रतिक्रिया नहीं देता है। ध्वनि और प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। दूसरे माह में शिशु ध्वनि या आवाज को पहचानने लगता है और और व्यक्तियों का मुस्कान के साथ स्वागत करता है। तीसरे माह शिशु अपनी माता को पहचानता है और उसके दूर होने पर दुखित होता है। चौथे माह शिशु आस-पास के व्यक्तियों को प्रतिक्रियां देना लगता है। व्यक्तियों का हेरा पहचानने लगता है। अकेले रहने में प्राय: रोने लगता है। पाचवें माह शिशु प्रेम और क्रोध पर अलग-अलग प्रतिक्रिया हंसने और रोने के रूप में देने लगता है।छठवें माह शिशु परिचितों का मुस्कान के साथ स्वागत करता है जबकि अपरिचितों को देख कर भय की अनुभूति करता है तथा आक्रामक व्यवहार का कभी-कभी प्रदर्शन करने लगता है। आठवें और नवम माह शिशु दूसरों की बोली, हावभाव, मुद्रा तथा अंग संचालन आदि की नक़ल करने का प्रयत्न करता है। बारहवें माह शिशु किसी कार्य को मना करने पर मान जाता है तथा घर के सदस्यों के साथ घुल-मिल जाता है। दूसरे वर्ष में शिशु परिवार का सक्रिय सदस्य बनने का प्रयास करता है इस हेतु परिवार के सदस्यों की कार्य में सहायता करने का प्रयास करता है। तीसरे वर्ष शिशु आस-पास के बच्चों के साथ खेलने लगता है तथा खेल की व अन्य वस्तुओं का आदान-प्रदान

करता है एवं परस्पर सहयोग करता है। चौथे वर्ष शिशु प्राय: विद्यालय जाने लगता है और अन्य व्यक्तियों व शिशुओं से संबंध बनाता है एवं वातावरण के साथ स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करता है। पांचवें वर्ष शिशु में नैतिक भावना का विकास होने लगता है और वह समूह के सदस्य के रूप में व्यवहार प्रतिमानों के अनुकूल व्यवहार करने का प्रयास करता है एवं उसके सामाजिक व्यवहार में परिपक्वता आ जाती है।

बाल्यावस्था में सामजिक विकास : इस अवस्था में होने वाले सामाजिक विकास को निम्न रूप में व्यक्त कर सकते हैं-

- **समूह सदस्य:** शिशु किसी न किसी समूह का सदस्य बन जाते है। समूह लिंग-भेद के आधार पर या समान किसी भी प्रकार के हो सकते है।शिशु समूह के अनुकूल आचार व व्यवहार को बनाने का प्रयास करते है।
- **सामाजिक गुण:** इस अवस्था में अनेकों सामाजिक गुणों का विकास हो जाता है जैसे- सहयोग, सद्भावना, न्यायप्रियता, सहनशीलता, आत्म-नियंत्रण आदि।
- **यौन विभेद गुण:** इस अवस्था में लड़के तथा लड़कियों के कार्यों, रुचियों, खेल-कूद आदि में स्पस्ट अन्तर परिलक्षित होने लगता है। लड़के साहस व आक्रामक प्रकृति के कार्यों में और लड़कियां सृजनात्मक एवं मृदु कार्यों में अधिक रूचि रखती है।
- **बहिर्मुखता :** इस अवस्था में बहिर्मुखता का गुण प्रभावी होने कारण लड़के व लड़कियां अपना अधिकांश समय घर के बाहर तथा अन्य व्यक्तियों के सम्मुख अपनी विशिष्ट छाप छोड़ना चाहते है।
- **सामाजिक स्वीकृति की माँग:** इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियों में सामाजिक स्वीकृति की माँग या इच्छा होती है। इनकी यह अपेक्षा होती है लोग इन्हें पसंद व इनके कार्य तथा व्यवहार की प्रसंशा करे।
- **मित्रता:** इस अवस्था में लडकें व लडकियां अपने आस-पास तथा कक्षा साथियों में से अपने समान आयु वाले लड़कों व लड़कियों से घनिष्ठ मित्रता रखते है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास: इस अवस्था में सामाजिक जीवन का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है तथा विकास के अन्य क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में भी परिवर्तन होता है। इस अवस्था की सामाजिक विशेषताएं निम्न है-

मित्र मण्डली या टोलियों: इस अवस्था की मित्र मण्डली अर्थात् लड़कों एवं लड़कियों की अलग-अलग टोलियाँ बनती हैं तथा बच्चे आपस में खेलना पसंद करते हैं। प्रारंम्भ में केवल तीन चार सदस्य ही टोली में होते हैं किन्तु धीरे-धीरे सदस्यों की संख्या बढती जाती है। **क्रेन (1955)** ने अपने अध्ययन में यह सिद्ध किया है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़के सामाजिक मर्यदाओं को तोड़ने का अधिक प्रयत्न करते हैं। टोली का एक केंद्रीय स्थान होता है जहाँ उसके सभी सदस्य एकत्रित होते हैं प्रायः यह स्थान बालकों

के घरों से दूर होता है ताकि उनके माता-पिता उन्हें न देख सके व उनके कार्यों में हस्तक्षेप न कर सकें। बालक टोली का सदस्य बने रहने में आनन्द की अनुभूति करता है तथा टोली या समूह के प्रति उसका समर्पण रहता है। टोली का अनुसरण करते हुए स्वंय को एक व्यक्ति के रूप में स्थापित करने का प्रयास करते हैं तथा अपने आत्म-सम्प्रत्यय का निर्माण करते हैं।

मित्रता की भावना: किशोरावस्था को फ्रायड ने मनोलैंगिक विकास की अव्यक्त अवस्था कहा है जिसमें लड़के एवं लड़कियाँ अपने-अपने समूह के साथ रहना (समलैंगी समूह) पसंद करते हैं। इस अवस्था में लड़कियाँ लड़कों को ऊधमी समझती हैं, उनकी हुल्ल्हड़वाजी और अशिष्टता उन्हें असहनीय होती है तथा उनके उनका प्रायः विद्वेष रहता है। लड़कियों की लड़कों के प्रति अभिवृत्तियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक संवेगयुक्त होती हैं। इस अवस्था में किशोर अपने मित्रों के चुनाव में कुछ महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देता है। जैसे– उसका मित्र या सहेली उसके समान हो, जिससे उसकी रुचियों या आवश्यकताओं की पूर्ति हो, मित्र या सहेली उसके पड़ोस या स्कूल का होना, हंसमुख स्वाभाव, सहयोगी एवं खेल में साथ दे आदि। यदि कोई किशोर जो किसी भी टोली का सदस्य नहीं है उसके साथ अन्य बच्चे अनुचित व्यवहार करते हैं। यदि कोई किशोर किसी समूह का सदस्य बनना चाहता है तो टोली या समूह में स्वीकृति पाने के लिए उसे स्वयं पहल करनी पड़ती है। इस अवस्था में बालक में होने वाली मित्रता अस्थायी प्रकृति की होती है। किशोर मामूली सी बात को लेकर दुश्मनी तथा मामूली परिचय को बढ़ाकर घनिष्ठ मित्रता में बदल लेते है।

नेतृत्व की भावना: बाल्यावस्था में वही बच्चा नेता बनता है जो आक्रामक हो, लेकिन किशोरावस्था में टोली का नेता वह बनता है जो टोली का आर्दश प्रतिरूप होता है साथ ही साथ उसे बहिर्मुखी होना चाहिए।। टोली के नेता को विशेष रूप से बुद्धि में, रूपरंग में, आत्मविश्वास, खेल एवं संवेगों की स्थिरता की दृष्टि से श्रेष्ठ होना चाहिए **(बेल, 1954)। क्रेच, क्रचफील्ड तथा वैलेशी (1962)** का अनुसार "किसी समूह या संगठन का नेता वह सदस्य होता है जो समूह के सदस्यों के व्यवहारों को अत्यधिक प्रभावित करता है तथा समूह के सदस्यों को परिभाषित करने तथा समूह की विचारधारा को निर्धारित करने में मुख्य भूमिका निभाता है।"

खेल एवं प्रतियोगिता की भावना: हरलॉक ने किशोरावस्था को 'खेल की आयु' कहा है। इस अवस्था में किशोर विद्यालय के संगठित खेलों में सक्रिय रूप प्रतिभाग करना शुरू कर देता है। लड़के लड़कियों की अपेक्षा ऐसे खेल खेलना पसंद करते हैं जो श्रम साध्य हों। **पार्क तथा वैलिन (1953)** ने अध्ययनों से स्पष्ट किया है कि अधिकतर बालकों की खेल में रूचि बाल्यावस्था के बढ़ने के साथ घटती जाती है तथा उनके लिए जनसंचार अर्थात् सिनेमा, रेडियो आदि मनोरंजन के साधन अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। किशोरावस्था में कुछ प्रमुख लोकप्रिय खेल हैं जैसे -सृजनात्मक खेल, प्रतियोगिता एवं खुले मैदान में खेले जाने वाले खेल आदि।

मनोरंजन: किशोरों के सक्रिय जीवन में मनोंरंजन का कोई अवसर नहीं मिलता तथापि जब भी उन्हें खाली समय मिलता है तो वह उसका उपयोग अपने मनोंरजन के लिए करते है। इस अवस्था में बच्चों के

लिए मित्रता की भावना इतनी महत्वपूर्ण एवं प्रबल होती है कि वे अपने मित्रों के साथ मनोरंजन करना पसंद करते हैं। मनोंरजन के के साधनों के रूप में किशोर खेलना, पढना, फिल्म देखना, टेलीविज़न देखना, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रयोग आदि का प्रयोग करते है।

विद्रोह की भावना: किशोरावस्था में विद्रोह की भावना अत्यंत प्रबल होती है। किशोरों में अपने माता-पिता एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों से संघर्ष या मतभेद की प्रवृति देखने को मिलती है। किशोर अपना जीवन अपने आदर्शों के अनुरूप जीना चाहते है उस पर किसी का हस्तक्षेप नहीं चाहते है। यदि कोई हस्तक्षेप करता है तो वह विद्रोह कर देते है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सामजिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्न है-

- वंशानुक्रम
- व्यक्तिगत कारक जैसे- शारीरिक ढाँचा एवं स्वास्थ्य, बौद्धिक स्तर एवं संवेगात्मक विकास
- वातावरण संबधी कारक जैसे- परिवार का भौतिक, सामाजिक व संवेगात्मक वातावरण, कक्षा व विद्यालय का वातावरण, समूह या मित्र-मंडली का प्रभाव
- पास-पड़ोस और समुदाय
- आर्थिक स्थिति
- सूचना एवं मनोरंजन प्रदान करने वाले साधन
- शिक्षकों का प्रभाव आदि

iv. **संवेगात्मक विकास (Emotional Development)-** मानव जीवन में संवेगों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा व्यक्ति के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास में संवेगों का अहम् योगदान होता है। मानव में लगातार संवेगात्मक असन्तुलन/अस्थिरता की अवस्था व्यक्ति के वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है तथा अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक और समाजिक समस्याओं को उत्पन्न करता है। दूसरी ओर संवेगात्मक रूप से स्थिर मानव एक खुशहाल, स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अत: संवेग मानव जीवन का वह अहम् पक्ष है जो व्यक्तित्व के सभी पक्षों को प्रभावित करता है।

अंग्रेजी का 'Emotion' लैटिन भाषा के 'Emovere' से ग्रहण किया गया है। 'Emovere' का अर्थ होता है- Stir up, to agitate या to excite। जिसका आशय होता है- उत्तेजित होना। वुडवर्थ के शब्दों मे- संवेग व्यक्ति की गति में अथवा आवेश में आने की स्थिति है।

शैशावस्था में संवेगात्मक विकास: शिशु जन्म से ही संवेगात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। जैसे- शिशु का रोना, चिल्लाना व हाथ-पैर फेंकना आदि। शिशु के संवेगात्मक व्यवहार अस्थायी प्रकृति के

होते है जो किसी किसी इच्छा पूर्ति के न होने पर उत्तेजित होते है और पूर्ति हो जाने पर शांत हो जाते है। शिशु के संवेगों का स्वरुप उसकी परिपक्वता के साथ परिवर्तित होता रहता है। नकारात्मक संवेगों में आयु बढने के साथ-साथ कमी आती जाती है और सकरात्मक संवेगों की तीव्रता में बढोत्तरी आती जाती है। प्रारंभिक समय में संवेगों का अभिव्यक्त स्वरुप अस्पस्ट होता है जिसमें धीरे-धीरे स्पष्टता आती जाती है।ब्रिजेज के अनुसार लगभग दो वर्ष तक सभी संवेगों का विकास हो जाता है। फ्रायड का मानना है कि छोटे शिशु में नार्सिसज्म (Narsissism) कि भावना होती है और चार या पांच वर्ष के लड़के और लड़की में क्रमशः मातृ प्रेम या पितृ विरोधी भावना(Oedipus Complex) व पितृ प्रेम या मातृ विरोधी भावना ग्रंथि (Electra Complex) का विकास हो जाता है।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास: बाल्यावस्था एक अनोखी अवस्था है। इस अवस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति अधिक विशिष्ठ प्रकृति की होती है, अब इसमें शैशवास्था जैसी तीव्रता व उत्तेजना नहीं रहती। बच्चा ऐसी अनेक बातों के प्रति कोई संवेग नहीं प्रकट करता है, जो उसको शैशवास्था में अधिक उत्तेजना उत्पन्न करती थी। उदाहरणस्वरूप, अब वह कोई समान देने या न देने, नहाने या कपड़े पहनने में क्रोधित नहीं होता और अपरिचित व्यक्ति या वस्तु को देखकर नहीं डरता है। बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास पर परिवार से अधिक समूह या मित्र-मण्डली और सहपाठियों का प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में संवेगों के विकास पर वाह्य कारकों का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट या तीव्र होता है। विद्यालय तथा घर का स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त वातावरण बच्चे को उसके संवेगों को मुक्त रूप से अभिव्यक्त करने के अधिक अवसर तथा उसमें उपयुक्त परिष्कार व परिमार्जन करने में सहयोग देता है। परिवार या विद्यालय के अत्यधिक नियंत्रण पूर्ण तथा कठोर अनुशासन से बच्चों के संवेगों की अभिव्यकित के प्रदर्शन में बांधा पहुँचती है जिसके परिणामस्वरूप बच्चे में अनेक नकारात्मक मनोग्रंथियाँ विकसित हो जाती हैं जो उसके व्यक्तित्व विकास के विविध पक्षों के लिए अत्यंत हानिकारक होती हैं। बाल्यावस्था में बच्चों में प्रमुख रूप से ईर्ष्या, भय, निराशा, जिज्ञासा, स्नेह, क्रोध एवं प्रफुल्लता आदि संवेगों की प्रधानता होती है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास: किशोरावस्था में संवेगों की स्थिति में असंतुलन हो जाता है। जैसा कि स्टेनले हाल कहते है कि यह एक आंधी,तनाव, तूफ़ान एवं विरोध की अवस्था है। इस अवस्था में संवेगों में अत्यधिक तीव्रता एवं प्रचंडता आ जाती है। मानव जीवन किसी अन्य अवस्था में संवेगों का प्रवाह इतना प्रचंड एवं भीषण नहीं होता है जितना की किशोरावस्था में होता है। किशोरावस्था में किशोर का अपने संवेगों पर नियंत्रण नहीं होता है और इनके संवेगों के प्रदर्शन में विरोधी मनोदशाएँ पायी जाती है। लगभग समान परिस्थिति में भी वह कभी अत्यधिक प्रसन्न तो कभी अत्यंत दुःखी होते है। ये संवेगात्मक दृष्टि से बहुत चंचल तथा अस्थिर रहते है। किशोरावस्था के संवेगात्मक विकास की प्रमुख विशेषताएं है- भाव प्रधान जीवन, विरोधी मनोदशाएँ, उन्मुक्त एवं चिंता मुक्त व्यवहार, वीर पूजा की भावना, स्वतन्त्र रूप से कार्य व विचार करने की शैली, आत्म-सम्मान व स्वाभिमान की भावना, काम भावना आदि की प्रधानता होती है।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बच्चों का संवेगात्मक विकास अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है। उनमें से मुख्य कारक निम्न है-

- बच्चे का स्वास्थ्य
- थकान
- बुद्धि तथा मानसिक योग्यता
- पारिवारिक वातावरण एवं आपसी सम्बन्ध
- विद्यालय का वातावरण एवं शिक्षक
- वंशानुक्रम
- सामाजिक-आर्थिक स्थिति
- सामजिक स्वीकृति
- पास-पड़ोस, समुदाय एवं समाज आदि

v. **नैतिक विकास (Moral Development) -**व्यक्ति एवं समाज में साम्प्रदायिकता, जातीयता, भाषावाद, क्षेत्रीयतावाद, हिंसा की संकीर्ण कुत्सित भावनाओं व समस्याओं के मूल में उत्तरदायी कारण है खोजा जाए तो शायद इसका उत्तर नैतिक मूल्यों का क्षय एवं अवमूल्यन मिलेगा।नैतिकता का सम्बंध मानवीय अभिवृत्ति से है, इसलिए शिक्षा से इसका अभिन्न व अटूट सम्बंध है। मानव में कौशलों व दक्षताओं की अपेक्षा अभिवृत्ति-मूलक प्रवृत्तियों के विकास में पर्यावरणीय घटकों का विशेष योगदान होता है। बच्चों के परिवेश में जिन तत्त्वों की प्रधानता होगी वे जीवन का अभिन्न अंश बन जायेंगे। इसीलिए कहा जाता है कि मूल्य पढ़ाये नहीं जाते अपितु ग्रहण किये जाते हैं।

संक्षेप में इतना कहा जा सकता हैं कि मानव उन गुणों को नैतिक कह सकता हैं जो मानव के स्वयं के सर्वांगीण विकास और कल्याण में योगदान देने के साथ-साथ किसी अन्य के विकास और कल्याण में किसी प्रकार की बाधा न पहुंचाए।

एक ही समाज में विभिन्न कालों में नैतिक संहिता भी बदल जाती है। नैतिकता/नैतिक मूल्य वास्तव में ऐसी सामाजिक अवधारणा है जिसका मूल्यांकन किया जा सकता है। यह कर्तव्य की आंतरिक भावना है और उन आचरण के प्रतिमानों का समन्वित रूप है जिसके आधार पर सत्य-असत्य, अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित का निर्णय किया जा सकता है और यह विवेक रूपी शक्ति से संचालित होते है।

आधुनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता, महत्त्व अनिवार्यता व अपरिहार्यता को इस बात से सरलता व संक्षिप्त रूप में समझा जा सकता है कि संसार के दार्शनिकों, समाजशात्रियों,

मनोवैज्ञानिकों, शिक्षा शात्रियों, नीति शात्रियों ने नैतिकता को मानव के लिए एक आवश्यक गुण माना है।

वृद्धि एवं विकास से सम्बंधित विभिन्न पक्षों के विकास के साथ-साथ नैतिक विकास की प्रक्रिया भी गतिमान रहती है। मानव अपने सतत क्रियाशील प्रयासों के द्वारा वाह्य जगत से प्राप्त ज्ञान व समझ से गृहीत सामाजिक अनुभवों को नैतिक मूल्यों और नैतिक निर्णय के रूप में संगठित करता है। नैतिक मूल्यों एवं निर्णयों के संगठन में अवस्थाओं के विकास के फलस्वरूप परिवर्तन आते रहते है। नैतिक विकास की विकास प्रक्रिया की स्पष्टता हेतु यहाँ पियाजे और कोहलबर्ग के सिद्धांतों की चर्चा की जा रही है।

1.6 पियाजे का नैतिक विकास सिद्धांत (Piaget's Theory of Moral Development)

जीन पियाजे ने नैतिक विकास की अवधारणा एवं विकास प्रक्रिया का सिद्धांत का प्रतिपादन करने से पूर्व बच्चों के ऊपर एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन्होंने बच्चों को नियमों, अधिकारों, दोषों, पापों व अत्याचारों के मूल्यांकन, समानता आदि से सम्बंधित समस्याओं एवं कहानियों पर दी गई प्रतिक्रियाओं एवं साक्षात्कार के आधार पर प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण करके बच्चों के नैतिक विकास का अध्ययन किया। इन्होनें नैतिक विकास के तीन स्तर बाताएं जोकि निम्न है-

1. नैतिक यथार्थता (Moral Realism or Heteronomy)
2. नैतिक समानता (Moral Equality)
3. नैतिक सापेक्षता (Moral Relativism or Autonomy)

नैतिक यथार्थता (Moral Realism or Heteronomy) - इसे नैतिक विकास की प्रारंभिक अवस्था माना जाता है जो लगभग चार वर्ष से लेकर सात वर्ष तक होती है। इस अवस्था को विषम या विवशता की नैतिकता का काल कहा जाता है। इस स्तर पर बच्चे माता-पिता, बड़े बुजुर्ग लोगों, शिक्षक एवं अधिकारी आदि के द्वारा बताई गई बातों या नियमों को ही न्यायसंगत, तर्कयुक्त एवं उचित मानते है और इनका सदैव पालन करते है। इनमें यह धारणा रहती है कि अनुचित या बुरा करने पर प्रकृति या ईश्वर स्वयं दण्ड देती है। इस स्तर पर बच्चे कोई बात नियम या बात पूर्णतया सत्य या असत्य मानते है एवं इस स्तर पर किसी कार्य या व्यवहार का मूल्यांकन का आधार उसका परिणाम होता है।

नैतिक समानता (Moral Equality)- यह नैतिक विकास की दूसरी अवस्था है जोकि आठ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक चलती है। नैतिकता के इस स्तर पर नैतिकता वस्तुतः समानता एवं विनिमय सम्बन्धों पर आधारित होती है। इस स्तर में बच्चों में स्वकेंद्रियता की प्रवृति घट जाती है एवं सहयोग की प्रवृति का विकास हो जाता है। बच्चे किसी विषय को समरूपता एवं समान भावों के आधार व्याख्यायित करने का

प्रयास करते है। बच्चों में अपने खेलों के नियमों के पालन एवं ईमानदारी से खेल खेलने की प्रवृति रहती है। इस स्तर पर बच्चों का अधिकांश समय नियमों एवं बेईमानी के ऊपर तर्क-वितर्क करने में व्यतीत हो जाता है।

नैतिक सापेक्षता (Moral Relativism or Autonomy) - नैतिक विकास का यह सर्वाधिक परमार्जित स्तर है। इस स्तर का प्रारम्भ लगभग बारह वर्ष से माना जाता है। पियाजे इस स्तर को स्वायत्तशासी नैतिकता या सहयोगात्मक नैतिकता का काल कहते है। नैतिकता को पारस्परिक सम्मान पर आधारित माना जाता है एवं वाह्य दबाव के आभाव में भी आदर्शों या नियमों का अनुपालन स्वत: से किया जाता है। इस स्तर पर नैतिक नियमों को सामाजिक अंत:क्रिया एवं सहमति के आधार पर निर्मित माना जाता है तथा आवश्यकता व परिस्थिति के अनुकूल इन्हें परिवर्तनशील माना जाता है। इस स्तर पर किशोर नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में स्व नियम का निर्माण करना शुरू कर देते है।

1.7 कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धांत

कोहलबर्ग ने दस से सोलह वर्ष की आयु के बच्चों को नैतिक दुविधाओं से युक्त कहानियों को देकर एवं इस पर आधारित साक्षात्कार के द्वारा प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण करके नैतिक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। नैतिक विकास को इन्होनें तीन स्तर या सोपानों के आधार पर विकासमान प्रक्रिया के रूप व्याख्यायित किया जो कि निम्न है-

1. पूर्व-औपचारिक स्तर (Pre-Conventional Level)
    i. दण्ड एवं आज्ञा पालन स्तर (Punishment and Obedience)
    ii. यांत्रिक सापेक्षता स्तर (Instrumentalism)
2. औपचारिक स्तर (Conventional Level)
    i. पारस्परिक संबंध स्तर (Interpersonal Relationship)
    ii. सामाजिक परंपरा या कानून एवं आदेश स्तर (Social Convention or Law and Order)
3. उत्तर-औपचारिक स्तर (Post-Conventional Level)
    i. सामाजिक अनुबंधन स्तर (Social Contract)
    ii. सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत स्तर (Universal Ethical Principles)

i. **पूर्व-औपचारिक स्तर -** यह नैतिक विकास का सबसे निचला स्तर है। इस स्तर पर कार्य या व्यवहार मे क्या सही और क्या गलत है? के मूल्यांकन का आधार उस पर से मिलने पुरस्कार या दण्ड द्वारा किया जाता है।

नैतिकता के इस स्तर के प्रथम उप स्तर पर बच्चे पुरस्कार की अभिलाषा या दण्ड से बचाव हेतु नियमों का पालन करते है। यहाँ बच्चों नैतिक चिंतन उद्देश्य पर केन्द्रित न होकर परिणामों पर आधारित होता है। जैसे बच्चे यह मानते हैं कि उन्हें बड़ों की बातें माननी चाहिए नहीं तो बड़े उन्हें दण्डित करेंगे।

इस स्तर के दूसरे उप-स्तर पर बच्चों में यह भावना होती है कि अपने हितों या इच्छा के अनुसार कार्य करने में कुछ गलत नहीं है किन्तु हमें साथ में दूसरों लोगों को भी उनके हितों के अनुरूप काम करने का अवसर देना चाहिए। इस स्तर के नैतिक चिंतन में यह भावना रहती है कि संबंध स्थूल पर-निर्भरता से बनते है न कि एकांकी हित साधने से।

ii. **औपचारिक स्तर -** औपचारिक स्तर नैतिक विकास की दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में लोग एक पूर्व आधारित सोच से चीजों को देखते या विचार करते हैं। जैसे कि अक्सर बच्चों का व्यवहार उनके माता-पिता या शिक्षक या किसी बड़े व्यक्ति द्वारा बनाए गए नियमों पर आधारित होता है।

इस स्तर के प्रथम उप-स्तर पर बच्चों में अच्छे आपसी व्यवहार व सम्बन्धों पर आधारित नैतिक चिन्तन रहता है। इस स्तर पर बच्चों में विश्वास, दूसरों का ख्याल रखना, दूसरों के प्रति निष्पक्ष व्यवहार करना आदि उसके नैतिक व्यवहार का आधार होते हैं। बच्चे अपने माता-पिता द्वारा निर्धारित किये गए नैतिक व्यवहार के मापदण्डों को अपनाते है जो उन्हें उनके माता-पिता की नजर में एक "अच्छा लड़का या अच्छी लड़की"‘ बनाते हैं।

इस स्तर के दूसरे उप-स्तर पर बच्चों में सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने पर आधारित नैतिक चिन्तन होता है। इस स्तर पर बच्चों में नैतिक विकास की अवधारणा सामाजिक आदेश, कानून, न्याय और कर्त्तव्यों पर आधारित होती है। जैसे किशोर यह सोचते हैं कि समाज अच्छे से चलना चाहिए इसके लिए नियमों व कानून के दायरे में ही रहकर कोई कार्य करना चाहिए।

iii. **उत्तर-औपचारिक स्तर-** यह कोलबर्ग के नैतिक विकास का तीसरा स्तर है। इस स्तर में वैकल्पिक या स्व-निर्मित या स्व-निर्धारित नैतिक नियमों के प्रति निष्ठा तथा अनुपालन की भावना रहती है तथा नैतिक मूल्यों एवं सिद्धांतों को परिभाषित या व्याख्यायित करने का प्रयास करते है।

इस स्तर की प्रथम उप-अवस्था में बच्चों का नैतिक चिन्तन सामाजिक अनुबन्ध, उपयोगिता और व्यक्तिगत अधिकारों पर आधारित होता है। इस अवस्था में किशोर यह सोचने लगता है कि कुछ मूल्य, सिद्धांत और अधिकार कानून से भी ऊपर हो सकते हैं। किशोर वास्तविक सामाजिक व्यवस्थाओं का मूल्यांकन इस दृष्टि से करने लगता है कि वे किस हद तक मूल अधिकारों व मूल्यों का संरक्षण करते है।

इस स्तर की दूसरी उप-अवस्था में किशोर सार्वभौमिक नीति सम्मत सिद्धांतों पर आधारित नैतिक चिन्तन करने की प्रवृति पाई जाती है। इस अवस्था में किशोर सार्वभौमिक मानवाधिकार पर आधारित नैतिक मापदण्ड बनाता है। जब भी कोई व्यक्ति अपनी अंतरात्मा की आवाज के द्वंद के बीच फंसा होता है तो वह व्यक्ति यह तर्क देता है कि अपनी अंतरात्मा की आवाज के आधार पर कार्य करना चाहिए, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। इसीलिए इस स्तर पर व्यक्ति में यह भावना रहती है कि वह अपने व अन्य एवं स्थापित मानदंड के आधार पर ही कार्य या व्यवहार करता है।

नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्न माने जाते है-

- परिवार
- विद्यालय
- मित्र-मंडली या साथी-समूह
- समाज एवं संस्कृति
- आयु एवं स्वास्थ्य
- लिंग
- धर्म आदि।

अभ्यास प्रश्न

6. विकास की किस अवस्था में सबसे तेजी से परिवर्तन होते है?
7. एक पूर्ण विकसित मानव में कितनी हड्डियाँ होती है?
8. किस अवस्था के संवेगात्मक विकास में विरोधी मनोदशाएं पाई जाती है?
9. पियाजे ने नैतिक विकास के कितने चरण बताएं है?
10. किस अवस्था में विरोध की भावना अत्यंत प्रबल होती है?

1.8 मनोवैज्ञानिक विकास (Psychological Development)

मनोवैज्ञानिक विकास से आशय है कि मानव के संज्ञानात्मक, भावात्मक, सामाजिक, बौद्धिक आदि क्षेत्रों से सम्बंधित योग्यताओं, क्षमताओं एवं कार्य-प्रक्रिया का जन्म से लेकर मृत्यु के पूर्व तक सम्पूर्ण जीवन काल में हुए विकासों से है। मनुष्य के जन्म से लेकर किशोरावस्था के अंत तक उनमें अनेकों मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते रहते हैं। ये मनोवैज्ञानिक परिवर्तन वृद्धि एवं विकास के विविध पक्षों से सम्बंधित होते है

और इनकी पहचान मानव द्वारा दैनिक क्रिया कलापों या विशिष्ट परिस्थितियों में की गई प्रतिक्रियाओं या व्यवहार के आधार पर की जाती है। मनोवैज्ञानिक विकास मानव विकास के अन्य पक्षों के समान ही धीरे-धीरे विकास की ओर अग्रसर रहता है। मानव धीरे-धीरे निर्भरता से और अधिक स्वायत्तता की ओर बढ़ते हैं। ये विकासात्मक परिवर्तन काफी हद तक जन्म से पहले के जीवन के दौरान आनुवंशिक कारकों और घटनाओं से प्रभावित हो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक विकास के सप्रत्यय को 1996 में सात स्तरीय चेतना प्रतिमान के आधार पर विकसित किया गया था। इसका विकास रिचर्ड बरेरेट (Richard Barrett) के द्वारा किया गया था। इसी प्रतिमान के आधार पर इन्होने मनोवैज्ञानिक विकास की सात अवस्थाओं का निर्धारण किया है।

मनोवैज्ञानिक विकास को संक्षिप्त में एक तालिका में प्रदर्शित करके भली-भांति समझा जा सकता है-

मनोवैज्ञानिक विकास की अवस्थाएं	समयावधि	प्रमुख विशेषताएं/ आवश्कताएं	मूल्य की प्रमुखता
जीवित अवस्था (Surviving Stage)	जन्म से 2 वर्ष तक	मनोदैहिक आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए प्रयास करना जिससे वह अपने आप को जीवित व स्वस्थ रख सके।	अस्तित्व परक
समनुरूपता अवस्था (Conforming Stage)	2 से 8 वर्ष तक	अपने परिवार, परिचित एवं समुदाय के पास रहना जहाँ वह अपने आप को सुरक्षित एवं संरक्षित महसूस करे।	निर्भयत्व या सुरक्षा
विभेद अवस्था (Differentiating Stage)	8 से 24 वर्ष तक	अपने कौशल और प्रतिभा का विकास व प्रदर्शन किसी विशेष समूह का अंश बनने हेतु करना।	विश्वास या अभय
अविभाजित अवस्था (Individuating Stage)	25 से 39 वर्ष तक	अपनी पहचान को स्थापित करना, विश्वासों व मूल्यों पर आधारित जीवन जीना तथा अपने आप को साधन संपन्न बनाना।	स्वतंत्रता
आत्म-वास्तविकता (Self-actualizing Stage)	40 से 49 वर्ष तक	अपनी प्रतिभाओं व योग्यता को अभिव्यक्त करना तथा स्वयं को पूर्ण संसाधन व साधन युक्त बनाना	सत्यनिष्ठा या समेकता

एकीकरण अवस्था Integrating Stage	50 से 59 वर्ष तक	उन लोगो के प्रति सहयोग का भाव होना जो समान आचार-विचार व मूल्य रखते हो।	अभिदान या सहयोग
सेवारत अवस्था (Serving Stage)	60 + वर्ष तक	मानवता एवं प्रकृति के कल्याण व भलाई हेतु कार्य व चिंतन वृति	सामाजिक न्याय

1.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत वृद्धि एवं विकास की अवधारणाओं की व्याख्या की गई है। वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पक्षों जैसे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक विकास के प्रत्ययों पर चर्चा की गई है। इसमें वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का भी वर्णन किया गया है।

1.10 शब्दावली

1. **वृद्धि-** इससे तात्पर्य मानव के आकार, भार, लम्बाई एवं ऊचाई आदि में प्रत्यक्ष मापन योग्य परिवर्तनों से हैं।।
2. **विकास-**इससे तात्पर्य मानव विकासक्रम विविध पक्षों में होने वाले परिवर्तनों से है।
3. **अवस्था-** इससे तात्पर्य मानव विकासक्रम में निश्चित एवं निर्धारित समयावधि तक चलने वाली प्रक्रिया से है।
4. **विकास के पक्ष-**इससे तात्पर्य मानव व्यक्तित्व के उन विविध आयामों से है जिनकी समग्रता के आधार पर किसी व्यक्ति या व्यक्तित्व का आंकलन या मूल्यांकन किया जाता है।

1.11 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. शैशावस्था, बाल्यावस्था व किशोरावस्था
2. जन्म से पांच वर्ष तक
3. वृद्धि में

4. पांच अवस्थाओं में
5. गर्भावस्था का
6. शैशावस्था में
7. 206
8. किशोरावस्था में
9. तीन चरण
10. किशोरावस्था

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता, एस. पी. एवं गुप्ता, ए., (2004) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान , शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद
2. मंगल, एस. के., (2009) शिक्षा मोविज्ञान, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
3. Mcleod, saul , (2015) Jean Piaget, Simply Psychology Retrieved by
4. http://www.simplypsychology.org/piaget.html
5. Hill, Grahame (2001) AS Level Psychology through diagrams, Oxford University Press, New York.
6. Smith, P. K., Cowie, H. and Blades, M., (2015) Understanding Children's Development Retrieved from
7. www.wiley.com/college/smith

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

7. वृद्धि और विकास को परिभाषित करते हुए इसके सामान्य सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।?
8. विकास के प्रत्यय को स्पस्ट करते हुए वृद्धि और विकास के अन्तरों का वर्णन कीजिए?
9. वृद्धि एवं विकास की अवस्थाओं एवं पक्षों का वर्णन कीजिए?
10. शैक्षिक दृष्टिकोण से कौन सी अवस्थाएँ महत्वपूर्ण मानी जाती है? इन अवस्थाओं में होने वाले मानसिक विकास की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
11. शारीरिक विकास के फलस्वरूप विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों को स्पस्ट कीजिए?
12. शैशावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में होने वाले मानसिक विकास की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
13. जीन पियाजे के नैतिक विकास के सिद्धांत की विवेचना कीजिए?

14. कोहलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?

15. संवेगों को स्पस्ट करते हुए बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था के संवेगात्मक विकास की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

16. सामाजिक विकास को स्पस्ट कीजिए एवं किशोरावस्था में होने वाले सामाजिक विकास की विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

इकाई 2- अधिगमकर्ता एवं अधिगम : अधिगम के विभिन्न स्तरों पर जिज्ञासा, रुचि, सक्रिय-सहभागिता एवं परिपृच्छा (जाँच-पड़ताल) के महत्व की परिचर्चा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अधिगमकर्ता का अर्थ

- 2.3.1 अधिगमकर्ता के प्रकार
- 2.3.2 अधिगम का अर्थ
- 2.3.3 अधिगम की परिभाषाएं
- 2.3.4 अधिगम अर्थात सीखने की प्रक्रिया
- 2.3.5 अधिगम की प्रकृति एवं विशेषताएं
- 2.3.6 अधिगम के अनुक्षेत्र

2.4 जिज्ञासा एवं अधिगम

- 2.4.1 जिज्ञासा का अर्थ
- 2.4.2 जिज्ञासा के प्रकार
- 2.4.3 जिज्ञासा का महत्त्व
- 2.4.4 जिज्ञासा एवं अधिगम
- 2.4.5 छात्रों में जिज्ञासा कैसे बढ़ाएं ?
- 2.4.6 जिज्ञासा बढ़ाने की रणनीतियां

2.5 रुचि एवं अधिगम

- 2.5.1 रुचि का अर्थ एवं परिभाषाएं
- 2.5.2 रूचियों की प्रकृति एवं विशेषताएं
- 2.5.3 रूचियों के प्रकार
- 2.5.4 अधिगम में रुचि का महत्व एवं सम्बन्ध

2.6 सक्रिय सहभागिता और अधिगम

- 2.6.1 सक्रिय सहभागिता का अर्थ एवं परिभाषा
- 2.6.2 सक्रिय सहभागिता और अधिगम का सम्बन्ध
- 2.6.3 अधिगम में सक्रिय सहभागिता का महत्त्व
- 2.6.4 सक्रिय सहभागिता का अधिगम पर प्रभाव
- 2.6.5 कक्षा कक्ष में सक्रिय सहभागिता बढ़ाने हेतु सुझाव

2.7 परिपृच्छा और अधिगम
- 2.7.1 परिपृच्छा का अर्थ एवं परिभाषा
- 2.7.2 परिपृच्छा के प्रकार
- 2.7.3 परिपृच्छा एवं अधिगम
- 2.7.4 परिपृच्छा एवं अधिगम के विभिन्न स्तर

2.8 अधिगम के विभिन्न स्तर और रूचि,जिज्ञासा ,सक्रिय सहभागिता, इन्क्वारी, का आपस में सम्बन्ध

2.9 सारांश

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा को मूल रूप से त्रि-ध्रुवी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमे शिक्षक, शिक्षार्थी एवं प्रक्रिया (वातावरण) को शामिल किया जाता है । मनोवैज्ञानिक शब्दावली में इस प्रक्रिया को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की संज्ञा दे सकते हैं जिसमे अधिगम कर्ता, अधिगम एवं अधिगम प्रक्रिया की बात की जाती है । शिक्षा जगत की सम्पूर्ण व्यवस्था में अधिगम और अधिगम कर्ता का ही बोलबाला रहता है । किसी भी तरह के अधिगम कार्य में अधिगम कर्ता की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है जो कुछ भी सीखना है और जो भी आवश्यक परिवर्तन व्यव्हार में लाने है उनका मुख्य केंद्र बिंदु अधिगमकर्ता या शिक्षार्थी ही होता है । एक तरह से हम शिक्षा और अधिगम प्रक्रिया द्वारा जो कुछ भी चाहते और करते है वह सब अधिगम कर्ता को ध्यान में रखते हुए करते है । अधिगम प्रक्रिया पूरी तरह से अधिगमकर्ता पर केन्द्रित होती है। जिसमे अधिगम कराने वाला व्यक्ति अधिगम के लिए विषय वस्तु का चयन अधिगमकर्ता की रूचि, जिज्ञासा, सक्रियता को ध्यान में रखकर करता है ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1. अधिगमकर्ता को जान सकेंगे ।
2. अधिगम की परिभाषा से अवगत हो सकेंगे ।
3. अधिगम एवं रूचि के मध्य सम्बन्ध से परिचित हो सकेंगे ।
4. अधिगम में रूचि, जिज्ञासा, परिपृच्छा के संबंधों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
5. जान सकेंगे कि हमारे जीवन में अधिगम की क्या उपयोगिता है ।
6. रूचि, जिज्ञासा, सक्रिय सहभागिता को अपने शब्दों में परिभाषित के सकेंगे ।
7. परिपृच्छा एवं अधिगम के संबंधों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3 अधिगमकर्ता का अर्थ

एक अधिगम कर्ता होने के नाते हमे अधिगम एवं अधिगम कर्ता की अवधारणा से परिचित होना आवश्यक है। साधारण शब्दों में एक अधिगमकर्ता या शिक्षार्थी वह होता है जो किसी विशिष्ट विषय का अध्ययन करता अथवा सीखता है। यह अधिगम कर्ता के बारे में अत्यंत संकीर्ण विचारधारा है एक व्यक्ति या बालक जो कुछ सीखने के लिए अभ्यास कर रहा हो अथवा प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हो या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यव्हार में परिवर्तन लाने का प्रयास कर रहा हो उसे हम अधिगम कर्ता कहते है। दूसरे शब्दों में अधिगमकर्ता वह व्यक्ति होता है जो अध्ययन, अनुदेशन या अनुभव के माध्यम से ज्ञान और कौशल अर्जित करने की इच्छा रखता है। यदि हम एक स्कूल के परिप्रेक्ष्य में यहाँ पर बात करें तो कक्षा कक्ष में जो छात्र ज्ञान अर्जित करने आ रहे हैं उन्हें हम अधिगम कर्ता कह सकते है।

2.3.1 अधिगम कर्ता के प्रकार

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक सिधान्तों का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान होता है। अधिगम प्रक्रिया में मनोविज्ञान दो तरह से मदद करता है एक तो शिक्षक को सहायता प्रदान कर और दूसरे उसको अपने विद्यार्थियों के बारे में परिचित करा कर जिससे अधिगम प्रक्रिया सरल एवं सुगम हो जाती है। इस सृष्टि में कोई भी व्यक्ति एक समान नही है अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ताओं की व्यक्तिगत विभिन्नता अपना सकारात्मक प्रभाव डालती है। कक्षा कक्ष जहाँ पर छात्र अध्ययन करने के लिए एकत्रित होते है। विभिन्न रंग रूप, धर्म, सम्प्रदाय, रुचि, व्यक्तित्व एवं बौद्धिक क्षमता के होते हैं, वे सब एक जैसे नही हो सकते। उनमे विभिन्नताएं पाई जाती है इन विभिन्नताओं का आधार भिन्न भिन्न हो सकता है इस भिन्नता, अधिगम, रुचि, शैक्षिक उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए अधिगम कर्ताओं के कई प्रकार बताये जा सकते है। मूल रूप से अधिगम प्रक्रिया में छात्रो की उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए अधिगमकर्ताओं के निम्न प्रकार बताये गये है।

- प्रतिभावान बालक (तीव्र गति से सीखने वाला अधिगमकर्ता)
- सामान्य बालक (सामान्य रूप से सीखने वाला अधिगम कर्ता)
- धीमी गति से सीखने वाले बालक (अधिगम कर्ता)

i. **प्रतिभावान बालक (तीव्र गति से सीखने वाला अधिगम कर्ता) -** ये वे बालक होते है जिनकी बुद्धि लब्धि 120 या इससे अधिक होती है। ऐसे बालक कक्षा में अन्य बालको की तुलना में अत्यधिक तीव्र गति से सीखते हैं तथा जिज्ञासु प्रवृति के होते हैं।

ii. **सामान्य बालक (सामान्य रूप से सीखने वाला अधिगम कर्ता) -** एक सामान्य कक्षा में 60 से 70 प्रतिशत तक की संख्या सामान्य बालकों की होती है ऐसे बालको की बुद्धि लब्धि 90 से 120 के बीच में रहती है। यह बालक, धीमी गति से सीखने वाले बालकों की तुलना में कम समय में सीख लेते हैं।

iii. **धीमी गति से सीखने वाले बालक (अधिगम कर्ता)-** किसी भी कक्षा में तृतीय प्रकार के बालको को धीमी गति से सीखने वाले बालक कहा जाता है। इनका प्रतिशत भी लगभग प्रतिभाशाली बालकों के बराबर रहता है। जिन बालकों की बुद्धि लब्धि 90 से कम हो, उन्हें धीमी गति से सीखने वाले बालक कहा जाता है। इन्हें मुख्य रूप से दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है –1 अधिगम अक्षम बालक – ऐसे बालक जिनको अधिगम में किसी न किसी प्रकार से अक्षमता का सामना करना पड़ता है जिसमे निम्न प्रकार की अक्षमतायें शामिल होती है – गणना से सम्बन्धित, पढ़ने से सम्बंधित, उच्चारण से सम्बंधित इत्यादि।

2.4 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषाएं

अधिगम को ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मनुष्य जन्म के तुरंत बाद से ही सीखना आरम्भ करता है और जीवन पर्यन्त प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ सीखता ही रहता है जिसे हम अधिगम की संज्ञा देते है।

साधारण शब्दों में सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। परन्तु यहाँ यह बात जानना अत्यंत आवश्यक है कि व्यवहार में हुए सभी परिवर्तन को अधिगम की संज्ञा नही दी जा सकती। कभी कभी व्यवहार में परिवर्तन थकान, बीमारी, परिपक्वता, दवाओं के सेवन इत्यादि से भी होता है परन्तु ऐसे परिवर्तनों को अधिगम अथवा सीखना नही कहा जा सकता। मनोवैज्ञानिक शब्दावली में अधिगम के लिए कुछ शर्तों की बात की गई है और सिर्फ ऐसे परिवर्तन को अधिगम की संज्ञा दी जाती है जो अभ्यास, प्रशिक्षण, अनिभूति के फलस्वरूप होते हों तथा अपेक्षाकृत स्थाई प्रकृति के हों।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं। कि व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन जो अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप हो अधिगम कहलाता है। अधिगम को विस्तृत रूप से समझने के लिए इसकी परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

गार्डन मर्फी के अनुसार, "सीखने या अधिगम शब्द में वातावरण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवहार में होने वाले सभी प्रकार के परिवर्तन शामिल हैं।"

क्रो एवं क्रो के अनुसार, "सीखना आदतों, ज्ञान और अभिवृतियों का अर्जन है। इसमें कार्यों को करने के लिए नवीन तरीके सम्मिलित हैं और इसकी शुरुआत व्यक्ति द्वारा किसी भी बाधा को दूर करने अथवा नवीन परिस्थतियों में अपने समायोजन को लेकर होती है। इसके माध्यम से व्यवहार में उतरोत्तर परिवर्तन होता रहता है। यह व्यक्ति को अपने अभिप्राय अथवा लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ बनाती है।"

वुडउर्थ के अनुसार, "नवीन ज्ञान तथा नवीन प्रतिक्रियाओं का अर्जन करने की प्रक्रिया अधिगम प्रक्रिया है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन, विश्लेष्ण तथा व्याख्या से स्पष्ट है कि अधिगम में निम्न मुख्य बातें निहित होती हैं –

i. अधिगम कोई परिणाम न होकर एक प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है।
ii. अधिगम प्रक्रिया उद्देश्यपूर्ण होती है जो व्यक्ति को जीवन में समायोजन तथा अनुकूलन के लिए तैयार करती है ।
iii. अधिगम का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है जिसमे मानव व्यवहार के सभी क्षेत्र ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोक्रियात्म्क सम्मिलित रहते हैं।
iv. अधिगम व्यवहार में परिवर्तन की प्रक्रिया है परन्तु थकान, बीमारी, मादक द्रव्यों का सेवन या परिपक्वता आदि के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को अधिगम में शामिल नहीं किया जाता है।
v. अधिगम लगभग स्थाई प्रकृति का व्यवहार परिवर्तन होता है।
vi. अधिगम अभ्यास प्रशिक्षण तथा अनुभव पर आधारित होता है।

उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखकर हम कह सकते है की अधिगम अथवा सीखना शब्द का प्रयोग व्यक्ति के व्यवहार में अनुभव, अभ्यास तथा प्रशिक्षण से आने वाले सभी परिवर्तनों के लिए किया जाता है।

2.5 अधिगम अर्थात सीखने की प्रक्रिया

जैसा की हम पहलें ही जन चुके है की सिखाना एक विस्तृत तथा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और प्रक्रिया का सम्पादन बिभिन्न सोपानो से हो कर गुजरता है बिभिन्न मनोविज्ञानिको ने अधिगम की प्रक्रिया को अपने अपने अनुसार बताने का प्रयास किया है। सरलतम शब्दों में एक निश्चित वातावरण में शिक्षक, अधिगमकर्ता किसी बिषय वस्तु को लेकर अन्तःक्रिया करने का प्रयास करते है। जिसे हम अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते है – इस प्रक्रिया के दौरान यह आवश्यक है की सीखने के लिए एक उदिपक हो जो अभिप्रेरक का कार्य कर सके जिसके आधार पर अधिगमकर्ता द्वारा विभिन अनुक्रीयाये की जा सके तथा अनुक्रियायो के बीच उसे विभिन्न बाधाओ का सामना करते हुए सफलतम प्रयास कर लक्ष्य प्राप्ति करे को अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

2.5.1 अधिगम की प्रकृति एवं विशेषताएं

अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे अनुभव एवं प्रशिक्षण के माध्यम से अधिगमकर्ता के व्यवहार में परिवर्तन लाया जाता है । यह परिवर्तन जो व्यवहार में आता है वह व्यक्ति के द्वारा अर्जित होता है। अधिगम का अर्थ एवं परिभषाओं के अधयन्न के उपरांत इसकी प्रकृति एवं विशेषताएं स्पष्ट होती हैं जो इस प्रकार है-

i. सीखना व्यवहार में परिवर्तन है।
ii. सीखना जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।
iii. सीखना एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है।

iv. सीखना एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है।
v. सीखने द्वारा विद्यार्थी को उचित वृद्धि एवं विकास में सहायता मिलती है।
vi. सीखना समायोजन में सहायक है
vii. अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है जिसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

2.5.2 अधिगम के अनुक्षेत्र

जैसा की हम जानते है अधिगम का अर्थ व्यवहार में परिवर्तन है और यह परिवर्तन वक्तितव के सभी पक्षों में लाये जाते है। मानव व्यवहार के मुख्य रूप से तीन पक्ष होते है। वुडउर्थ ने व्यवहार के समबन्ध में लिखा है की "व्यवहार शब्द के परिपेक्ष्य में यदि हम विश्लेषण करे तो हम जान पायेंग कि व्यवहार पद अपने कार्यक्षेत्र, एवं उपयोग के सन्दर्भ में काफी बड़ा समप्रतय है आगे वुडउर्थ ने लिखा की जीवन के किसी भी अभिव्यक्ति को क्रिया कहा जा सकता है। और व्यवहार येसी सभी क्रियाओं का ही एक संयुक्त नाम है वुडउर्थ की इस ब्याख्या से पता चलता है की मानव व्यवहार का दायरा कितना बड़ा है । यहाँ पर अधिगम के अनुक्षेत्रो से तात्पर्य अधिगमकर्ता के सम्पूर्ण व्यवहार से है जिसे मुख्य रूप से तीन पक्ष बताये गए है।

i. अधिगम का संज्ञानात्मक पक्ष
ii. क्रियात्मक पक्ष
iii. भावात्मक पक्ष

अधिगम में उपरोक्त तीनो पक्षों का अपना महत्त्व होता है तथा अधिगम प्रक्रिया के दवारा व्यवहार के इन तीनो पक्षों में परिवर्तन लाया जाता है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है की अधिगम एक येसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जाता है जो सकारात्मक होता है। जो मानव व्यवहार के तीनो पक्षों में होता है। बालक के विकास में अधिगम प्रक्रिया का महत्पूर्ण स्थान होता है।

2.6 जिज्ञासा एवं अधिगम

जिज्ञासा का अर्थ- जिज्ञासा एक मानसिक प्रक्रिया है जो कि सामान्य रूप से हमें किसी विषय के बारे में सीखने को प्रेरित करती है। दुसरे शब्दों में जिज्ञासा मानव विकास के सभी पहलुओ जिसमे ज्ञानऔर कौशल इत्यादी सम्मलित होते है। के साथ घनिष्टता के साथ जुडी है इसके द्वारा व्यक्ति में ज्ञान और कौशल प्राप्त करने की इच्छा होती होती है। व्वाहरिक रूप से व्यवहार और भावना को निरुपित करने की इच्छा के लिए भी जिज्ञासा शब्द का प्रयोग किया जाता है। बचपन में जब हम किसी बालक को विभिन्न तरह के प्रश्न पूछते हुए देखते है- जैसे की चन्द्रमा गोल क्यों है ? रात क्यों होती है? इत्यादि प्रश्नों

के पीछें उनकी जिज्ञासा ही होती है और इसका बच्चों को सही तरीके से उत्तर देना भी आवश्यक होता है। अत: साधरणत शब्दों में हम कह सकते है की किसी भी बस्तु या विषय के बारे में जानने की इच्छा रखना ही जिज्ञासा कहलाता है।

जिज्ञासा के प्रकार मनोविज्ञान में मुख्यरूप से जिज्ञासा के दो प्रकार बताये गए है –

i. अवधारणात्मक जिज्ञासा
ii. ज्ञानात्मक जिज्ञासा

अवधारणात्मक जिज्ञासा- ज्ञान्नेंद्रियों को ज्ञान का द्वार कहा जाता है। अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा हम जो अनुभव करते है उसके आधार पर हमारे अंदर जो जिज्ञासा उत्तपन्न होती है उसे हम अवधारणात्मक जिज्ञासा कहते है।

ज्ञानात्मक जिज्ञासा- अवधारणात्मक जिज्ञासा के विपरित ज्ञानात्मक जिज्ञासा की उत्पति होती है।अंदर से कुछ सीखने और सूचनाये एकत्रित करने के लिए अभिप्रेरित करती है इसलिए इसमें जानबूझकर कर सीखने का प्रयत्न किया जाता है ज्ञानात्मक जिज्ञासा द्वारा व्यक्ति हर तरह के सामान्य ज्ञान को सीखने के लिए उत्सुक रहता है।

2.6.1 जिज्ञासा का महत्व जिज्ञासा

एक प्रतिभाशाली व्यक्ति की महत्तपूर्ण विशेषता होती है। मुझे नहीं लगता कि आप किसी यैसे व्यक्ति को खोज सकते है जो बुद्धिमान हो परन्तु जिज्ञासु प्रवृति का न हो। थामस एडिसन, लियोनोर्दो अल्बर्ट आइन्स्टीन ये सभी जिज्ञासु प्रवृति के पुरुष रहे है। तभी ये दुनिया को कुछ नया ज्ञान दे पाए है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह जिज्ञासा इतनी महतवपूर्ण क्यों है - इसको हम निम्न बिन्दुओ के माध्यम से स्पस्ट करेंगे –

i. जिज्ञासा मनुष्य के दिमाग को सक्रिय बनती है।
ii. मनुष्य के दिमाग को नए विचारो के लिए चौकना रखती है।
iii. जिज्ञासा नई दुनिया और नई सम्भानाओ को जन्म देती है।
iv. यह आपके जीवन में उतेजना भर देती है।

2.6.2 जिज्ञासा एवं अधिगम

अधिगम एवं जिज्ञासा का आपस में गहरा सम्बन्ध है। जब हम जिज्ञासा एवं अधिगम की बात कर रहे होते है तो हम कक्षा कक्ष के परिपेक्ष में परस्पर सहभागिताकी बात कर रहे होते हैं। यदि कोई विद्यार्थी किसी विषेय के बारे में रूचि रखते हैं और उत्सुक होते हैं तो वह जिज्ञासा ही होती है। स्पष्ट है की जिज्ञासा और सीखने का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है जबतक किसी कार्य को करने या सीखने के लिए हमारे अन्दर से इच्छा जागृत नहीं होती है तबतक हम कुछ भी सीखने के लिए तैयार नहीं होते हैं। जिज्ञासा के द्वारा ही हमारे अंदर सीखने की इच्छा जागृत होती है तभी सीखने की प्रक्रिया प्रभावी होती है। जिज्ञासा और

अधिगम दोनों साथ साथ चलते हैं। जिज्ञासा अधिगम के लिए प्राथमिक प्रेरक के रूप में काम करती है। जिज्ञासा अधिगम के विभिन्न स्तर पर अपना प्रभाव डालती है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रभावशाली सम्प्रेषण के लिए छात्रों की तत्परता बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिस काम के लिए हम पहले से ही तैयार होते हैं उसको बहुत ही प्रभावशाली एवं कुशलतापूर्वक संपन्न किया जा सकता है यह तभी संभव है यदि हम उस कार्य को करने के लिए पहले से ही रूचि रखते हैं और यह रूचि हमें तब उत्पन्न होती है जब हम किसी विषय को जानने के लिए पहले से ही उत्सुक होते हैं।

2.6.3 छात्रों में जिज्ञासा कैसे बढ़ाएं? अथवा जिज्ञासा बढ़ाने की रणनीतियाँ

अधिगम में छात्रों की जिज्ञासा का बहुत महत्त्व होता है यदि विद्यार्थियों में जिज्ञासा न हो न तो अधिगम हो ही नहीं सकता। जिज्ञासा छात्रों में सीखने के लिए प्रेरित करती है। किसी भी नई चीज को सीखने के लिए जिज्ञासा रूचि की उच्तर स्तिथि होती है। प्रेणादायक वयवहार में जिज्ञासा के महत्व को नाकारा नहीं जा सकता। आज के विद्यार्थियों में जिज्ञासा और सृजनात्मकता को विकसित करना एक कठिन कार्य है । अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए जिज्ञासा को विकसित करना अत्यंत आवश्यक है प्रशन यह है की जिज्ञासा को कैसे बढाया जाये उसकी क्या रणनीतिया होंगी, उसके लिए क्या उपाय करने होंगे यंहा पर कुछ उपाय एवं रणनीतिया को अध्यन करेंगे जिससेअधिगम को और प्रभावी बनाया जा सके।

कक्षा शिक्षण में विद्यार्थियों की जिज्ञासा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है एक शिक्षक हमेसा से यह प्रयास करता है की विद्यार्थियों में जिज्ञासा कैसे बढाई जाये इसके लिए वो विद्यार्थियों को मुक्त अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है। और छात्रों में जिज्ञासा बढ़ाना एक महतवपूर्ण कार्य है। जैसा की हम जानते है कि व्यक्तिगत विभिन्नता सर्वव्यापक है उसी तरह से एक कक्षा में भी छात्रों के बीच विभिनता पाई जाती है सभी जिज्ञासु प्रवृत के नहीं होते और कुछ को यह भी चिंता रहती है की लोग उनके बारें में क्या सोचेंगे अत: यहाँ पर एक अध्यापक का कर्तव्य होता है कि वह अपने विद्यार्थियों को येसा वातावरण प्रदान करे कि उनकी जिज्ञासु प्रविर्ती को बढ़ावा मिल सके इसके लिए वो कुछ रणनीतियों को अपनाता है। जो निम्न है।

i. जिज्ञासा को प्राथमिक अभिप्रेरक के रूप
ii. अवधारणातमक द्वंद उतपन्न
iii. येसा वातावरण तैयार करें किप्रत्येक छात्र प्रश्न पुछे
iv. समय और पसन्द का ध्यान
v. जिज्ञासा प्रवृति उतपन्न करने वाले तत्व को प्रस्तुत करना
vi. उचित उदिपक प्रस्तुत करना
vii. पुरस्कार देना
viii. खोजी प्रवृति की भावना पैदा करना

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि अधिगम में जिज्ञासा का महतवपूर्ण स्थान है जब हम विद्यार्थियों में जिज्ञासा उतपन्न करने की कोशिस करते है। तो उन्हें हम कुछ नया सिखाने की प्रविर्ती को प्रोत्साहित

कर रहें होते है। जब बालक के अन्दर किसी बिषय को सीखने के लिए जिज्ञासा उतपन्न नहीं होगी तब तक आप उसे कभी और कुछ भी अच्छें से नहीं सिखा सकते है। अत: अधिगम प्रक्रिया में प्रभावशाली सीखने के लिए विद्याथियों के अन्दर जिज्ञासा का होना नितान्त आवश्यक है।

2.7 रुचि एवं अधिगम

रुचि का अर्थ एवं परिभाषाएं - वक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में रूचि का अत्यंत महतवपूर्ण स्थान है। बुद्धि, यक्तितव आदि की तरह से रुचियों में भी व्यक्तिगत विभिन्नताए पाई जाती है। विभिन्न विषयों, प्रकरणों, क्रियायों, आदि के प्रति व्यक्ति की रुचियाँ भिन्न भिन्न होती है। कोई व्यक्ति अध्यापक बनना चाहता है तो कोई डॉक्टर या वकील बनना चाहता है। किसी विद्यार्थी को गणित अच्छा लगता है तो किसी को विज्ञानं किसी को टीवी देखना तो किसी को खेलना पसन्द है ये सभी अंतर रुचियों के विभिनता के कारण ही होते है। किसी कम को करने और न करने की इच्छा भी रुचियों पर निर्भर करती है यह बात अधिगम पर भी लागु होती है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि रूचि किसी वस्तु, व्यक्ति, तथ्य, प्रतिक्रिया आदि को पसन्द करने तथा न करने एवं उसके प्रति आकर्षित होने की प्रवृति है। रूचि बच्चों को केवल सीखने में ही सहायता प्रदान नहीं करती बल्कि उनके दृष्टिकोणों, उनकी प्रवृतियों तथा अन्य वय्क्तितव सम्बन्धी विशेषताओ के निर्माण में भी सहायक होती है। यह उनके व्यक्तितव के निर्माण की दिशा निर्देशित करती है। इस प्रकार रूचि को स्पस्ट करने के लिए उसकी परिभाषाओ का अध्यन आवश्यक है। कुछ पारिभाष निम्न है -

- **गिलफोर्ड के अनुसार -** " रूचि किसी क्रिया , वास्तु या व्यक्ति पर ध्यान देने , उसके द्वारा आकर्षित होने , उसे पसन्द करने तथा उससे संतुष्ट पाने की प्रवृति है। "
- **भाटिया के अनुसार -** " रूचि का अर्थ कुछ ध्यान देना । हम उन वस्तुओं में रूचि लेते है जो अन्य वस्तुओं से अलग दिखाई देती है क्योकि ये हमारे लिए मतलब रखती है।"

उपरोक्त परिभाषाओ के आधार पर हम कह सकते है कि किसी व्यक्ति , वस्तु,प्रक्रिया आदि को पसन्द करने अथवा उसके प्रति आकर्षित होने , उस पर ध्यान केन्द्रित करने तथा उससे संतुष्टि पाने की प्रवृति को ही रूचि कहते है।

2.7.1 रूचियों की प्रकृति एवं विशेषताएं

अधिगम से रूचि का गहरा सम्बन्ध होता है , रूचि का अर्थ एवं परिभाषा के आधार पर इसकी प्रकृति को स्पस्ट करने का प्रयास किया गया है।

i. रूचि का आवश्यकता एवं लक्ष्य के साथ सम्बन्ध
ii. रूचि एक अभिप्रेरक के रूप में
iii. जन्म जात अर्जित

iv. सीखने में सहायक
v. अस्थाई प्रकृति
vi. रूचि ध्यान को केन्द्रित करती है
vii. संतोष प्रदान करती है

उपरोक्त विशेषताओं को रूचि अपने अन्दर समाहित किये हुए है जिसके आधार पर हम कह सकते है की किसी कार्य को करने के लिए हमारी रूचि महतवपूर्ण है।

2.7.2 रूचियों के प्रकार

रुचियों को ज्ञात करने अथवा मापन करने की विधियों के आधार पर इनको चार भागो में बिभाजित किया जा सकता है – सुपर ने रुचियों के चार प्रकार बताये जो निम्न है।

i. अभिव्यक्ति रुचियाँ
ii. प्रदर्शित रुचियाँ
iii. आंकलित रुचियाँ
iv. सूचित रुचियाँ

इनमे से प्रथम तीन रुचियाँ की जानकारी अवलोकन , साक्षत्कार, प्रश्नावली, जैसे मापन उपकरणों से प्राप्त कर सकते है।

2.7.3 अधिगम में रुचि का महत्व एवं सम्बन्ध

रूचियों की प्रकृति, अर्थ एवं विशेषताओ से यह स्पस्ट है कि अधिगम से रूचि का गहरा सम्बन्ध होता है , रूचि का अर्थ एवं परिभाषा को आधार बनाने पर अधिगम से इसका घनिष्ट संबध स्पस्ट हो रहा है। और जैसा की हम जानते है कि रूचि का सीखने सिखाने की प्रक्रिया में बहुत ही महतव्पूर्ण स्थान है। एक अध्यापक का मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों में सीखने की रूचि उतपन्न करना, विकसित करना होता है। रूचि केवल विद्यार्थियों को सीखने में ही सहायता प्रदान नहीं करती बल्कि यह बालक के दृष्टिकोण , प्रवृति और अन्य व्यक्तितव सम्बन्धी विशेताओ के निर्माण में सहायक होती है । अत: रूचि का वय्क्तिताव के विकास में महतवपूर्ण भूमिका होती है। और व्यक्तित्व विकास में सीखने सिखाने की प्रक्रिया एक महतपूर्ण कारक का कार्य करती है जिससे स्पस्ट हो रहा है की सीखने सिखाने की प्रक्रिया जिसे हम अधिगम का नाम देते है उसमे रूचि का कितना गहरा सम्बन्ध है - निम्न बिन्दुओ को ध्यान में रखकर रूचि का अधिगम के साथ सम्बन्ध को और स्पस्ट किया गया है -

i. **सीखने -** सीखाने की प्रक्रिया में रूचि का स्थान- सीखने –सीखाने की प्रक्रिया में रूचि का प्रमुख स्थान होता है शिक्षक विषय चयन करते समय विद्यार्थियों की रूचि का विशेष ध्यान रखता है - ताकि अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बना सके जैसा की हम जानते है की जिस कार्य में

हमारी रूचि होती है उसको हम प्रभावी तरीके से करते है। यह बात छात्रों पर भी लागु होता है अत: सीखने में रूचि का महताव्पूर्ण स्थान है।

ii. **रूचि सीखने में आने वाली कठिनाईयों को दूर करती है -** जब हम कुछ सीखने का प्रयत्न करते है तो हमारे मार्ग में बहुत सारी बाधाएं उत्पन्न होती है। रूचि उन बाधा को दूर करने में बहुत सहायक होती है क्योकि यदि हम रूचि के साथ कोई कार्य करते है तो उसमे उत्साह और पुरे जोश के साथ लग जाते है। और जब तक हम उस काम को समाप्त नहीं कर लेते तब तक लगे होते है। अत: यह कार्य के बीच आने वाली बाधावों, सुस्ती इत्यादी को दूर कर देती है।

iii. **रूचि और ध्यान का सम्बन्ध-** किसी ने बिलकुल सही कहा कि रूचि ' ध्यान की माँ है। हम उन चीजो की तरफ ध्यान देते है जिनमे हमारी रूचि होती होती है। इस प्रकार रूचि हमें ध्यान के लिए मानसिक रूप से तैयार करती है। और ध्यान किसी भी अधिगम के लिए एक अनिवार्य कारक है अत: हम कह सकते है कि रूचि का अधिगम के साथ सम्बन्ध है।

iv. **अधिगम और रूचि साथ साथ चलते है -**अधिगम में रूचि का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थियोंकी जिस बिषय में रूचि होती है उसे वो अंत्यंत सरलता के साथ सिख लेते है। और शिक्षक भी विषय का चयन विद्यार्थियों की रूचि के अनुसार करते है ताकि अधिगम प्रक्रिया को सरल सहस और स्वाभाविक बना सके।इस प्रकार हम कह सकते है, की अधिगम और रूचि दोनों साथ साथ चलने वाली प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त एक शिक्षक जिसका कार्य शिक्षा अधिगम प्रक्रिया का सम्पादन करना होता है वह अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए छात्रों मे रूचि के लिए हमेशा प्रयास करता रहता है इसके लिए शिक्षक निम्न कार्य करता है -

- छात्रों के अनुसार विषय वस्तु का चयन करता है ताकि विद्यार्थियों की अधिगम मे रूचि बनी रहे।
- विद्यार्थियों को उनके लक्ष्यों से अवगत करवाता है ताकि विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने मे रूचि ले सके और अधिगम मे सहयोगी बन सके।
- उचित्त शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का प्रयोग।
- विभिन्न आदर्शो को प्रस्तुत करता है।
- कक्षा मे अधिगम के अनुकूल वातावरण तैयार करते है।

उपर्युक्त अध्ययन के बाद हम कह सकते है कि अधिगम का रूचि के साथ गहरा सम्बन्ध है। रूचि चाहे शिक्षक की हो या विद्यार्थी की दोनों ही अधिगम प्रक्रिया को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते है यह बात अधिगम के विभिन्न स्तर जैसे ब्लूम ,गैने एवं ब्रूनर के द्वारा प्रतिपादित विभिन्न अधिगम स्तरों मे भी रूचि का महतवपूर्ण स्थान है।

2.8 सक्रिय सहभागिता और अधिगम

कक्षा कक्ष मे चल रही अधिगम प्रक्रिया की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है, कि छात्रों की सहभागिता की स्थिति क्या है। यदि विद्यार्थी सक्रिय है तो अधिगम प्रभावी होगा नहीं तो नहीं। सक्रिय सहभागिता दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमे पहला सक्रिय , दूसरा सहभागिता। साधारण शब्दों मे व्यक्ति द्वारा किसी भी कार्य में अपनी प्रस्तुती या भागीदारी दर्ज करवाना सहभागिता कहलाती है।वहीँ जब कोई व्यक्ति किसी कार्य मे प्रेरणा , संज्ञानात्मक रणनीतिया एवं अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों को उस कार्य के लक्ष्य की प्राप्ति हेतू समाहित कर देता है तो उसी सक्रिय सहभागिता कहते है।जब कोई छात्र अथवा व्यक्ति सक्रियता से किसी कार्य से व्यस्त होता है तो वह उस कार्य या विषय में प्रभावशाली विशलेषण व उसके विषय में बहुतायात जानकारी अर्जित करने में सफल होता है।

भागीदारी को हम इस तरह से परिभाषित कर सकते है, " यह समय की वह राशि है जिसमे छात्र सक्रियता से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपनी भागीदारी देता है।" उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सक्रिय सहभागिता का शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बहुत मत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी विषय की अवधारणा को स्पष्ट तौर पर समझने और प्रभावशाली अधिगम में सक्रिय सहभागिता का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

2.8.1 सक्रिय सहभागिता और अभिप्रेरणा

सक्रिय सहभागिता और अभिप्रेरणा का एक दूसरे के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है व्यवहार में परिवर्तन के लिए एक अभिप्रेरक की आवश्यकता होती है और अभिप्रेरको की रचना हमारी जरूरतों के आधार पर होती है। अभिप्रेरणा से हमारा तात्पर्य है कि किसी कार्य को करने के लिए केन्द्रीय बल। हम प्राय यह देखते है कि साइकिल सीखने वाला बच्चा बार बार गिरने के बावजूद भी साइकिल सीखना नहीं छोड़ता है। अक्सर परीक्षा में विद्यार्थी देर तक पढ़ते हुए देखे जा सकते है क्यों? इतनी कठिनाइयाँ उठाने के बावजूद भी कोई कुछ कुछ न कुछ सीखने का प्रयास क्यों करता है ? इन सब बातों और क्यों का उत्तर केवल एक शब्द अभिप्रेरणा में निहित है। इस प्रकार हम देख रहे है कि अभिप्रेरणा किसी भी अधिगम कार्य को करने के लिए सक्रिय सहभागिता को बढ़ावा कर रही है।

2.8.2 अधिगम में सक्रिय सहभागिता का महत्त्व एवं सम्बन्ध

कक्षा कक्ष मे चल रही अधिगम प्रक्रिया की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है, कि छात्रों की सहभागिता की स्थिति क्या है। यदि विद्यार्थी सक्रिय है तो अधिगम प्रभावशाली होगा छात्र या विद्यार्थी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का मुख्य बिंदु है जो भी हम इस प्रक्रिया में करते है उसका मुख्य बिंदु बालक होता है इस प्रकार बालक की सक्रिय सहभागिता आवश्यक हो जाती है। बालक का अधिगम प्रक्रिया में उपस्थित रहना बहुत ही आवश्यक है यदि बालक शारीरिक तौर पर कक्षा में उपस्थित है परन्तु मानसिक रूप से नहीं तो इससे अधिगम प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसलिए प्रभावशाली अधिगम के लिए विद्यार्थी

की सक्रिय सहभागिता का होना अनिवार्य है। इस प्रकार सक्रिय सहभागिता और अधिगम का एक दूसरे के साथ बहुत ही सकारात्मक सम्बन्ध है जब तक अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता नहीं होगी तब तक अधिगम का कोई महत्त्व नहीं है । एक अध्यापक होने के नाते इन दोनों के संबंधो को जानना आवश्यक भी है। अधिगम एक निरंतर चलने

वाली प्रक्रिया है व्यक्ति अपने जन्म के कुछ घंटों बाद ही सीखना शुरू कर देता है और अपने जीवन के अंतिम क्षण तक सीखता रहता है । परन्तु यह सीखना तभी उपयोगी हो पाता है जब वह सक्रिय सहभागिता के साथ इसमें भाग लेता हो। अतः अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता का बहुत अधिक महत्त्व है और यह अधिगम पर प्रभाव भी डालती है जिसको हम निम्न बिन्दुओं के मध्यम से अध्ययन करेंगे-

i. कक्षा कक्ष में सक्रिय सहभागिता जितनी अधिक होगी विद्यार्थी उस विषय वस्तु को उतनी ही प्रभावशाली ढंग से सीखेंगे।
ii. सक्रिय सहभागिता का स्तर जितना ऊँचा होगा विद्यार्थियों की उपलब्धि उतनी ही अधिक होगी।
iii. विधार्थियों का अभिप्रेरणा स्तर भी उनकी सहभागिता को बढाता है इसलिए अभिप्रेरणा और सक्रिय सहभागिता दोनों का ही अधिगम में महत्त्व है।
iv. विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता से कक्षा का वातावरण भी अधिगम योग्य हो जाता है।
v. सक्रिय सहभागिता से अधिगम कर्ता और अध्यापक दोनों का मनोबल बढ़ता है जिससे कि बेहतर दिशा में वाद-संवाद होने की सम्भावना रहती है।

उपरोक्त विवेचन से पता चलता है कि सक्रिय सहभागिता का अधिगम के साथ एक घनिष्ट सम्बन्ध है और इसका अधिगम प्रक्रिया पर प्रभाव भी पड़ता है। प्रश्न यह है कि कक्षा कक्ष में सकिय सहभागिता को कैसे बढाया जाये ? एक अध्यापक हमेशा से अपनी कक्षा में विद्यार्थियों की सहभागिता बढ़ाने का प्रयास करता है अध्यापक द्वारा किये गये प्रयास को निम्न बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर सकते हैं –

i. अध्यापक विद्यार्थियों से पूर्व ज्ञान का परीक्षण कर उनका ध्यान आकर्षित करता है जिससे की विद्यार्थियों की सहभागिता कक्षा में बढाई जा सकें।
ii. अध्यापक छात्रों की सहभागिता बढाने हेतु विषय वस्तु को इस तरह से प्रस्तुत करता है जिससे विद्यार्थी विषय वस्तु में रुचि ले सकें और सक्रिय हो सकें।
iii. अध्यापक कक्षा का वातावरण सौहार्दपूर्ण बनाने का प्रयास करता है जिससे कि सभी बच्चों की सहभागिता सुनिश्चित की जा सकें।
iv. एक अध्यापक के द्वारा कक्षा कक्ष में हमेशा विद्यार्थियों को अपनी बात रखने का अवसर देना चाहिए एवं यदि कोई बच्चा गलत उत्तर भी देता है तो उससे मित्रवत व्यवहार कर उसकी सहभागिता कक्षा में सुनिश्चित करता है।

v. सामूहिक कार्यों को बढ़ावा देने के साथ साथ चुनौतीपूर्ण कार्य एवं विद्यार्थियों की रुचि के अनुकूल कार्यों को प्रदत कर कक्षा में विधार्थियों की सहभागिता बढाई जा सकती है।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों की सहभागिता बढ़ाने हेतु शिक्षक द्वारा कुछ शिक्षण नीतियों का भी प्रयोग किया जाता है जो इस निम्न है –

- किताब के साथ विद्यार्थी को व्यस्त रखना।
- किताबों में दिए गये विभिन्न अभ्यास प्रश्नों को हल करने का निर्देश देना।
- छात्रों से किसी विषय पर विचार विमर्श करने के लिए कहना।
- कक्षा में किसी आदर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व का मंचन करना।
- क्रिया कलापों एवं लेखन कार्यों को बढ़ावा देना।
- विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं जैसे रंगोली प्रतियोगिता, पेंटिंग प्रतियोगिता, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता आदि का आयोजन करना।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में मूल रूप से तीन घटक होते है जिसमे शिक्षक, शिक्षार्थी और वातावरण। इन तीनो में शिक्षार्थी एक ऐसा घटक है जिसके चारों तरफ सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था घूमती रहती है। यह अधिगम प्रक्रिया का एक ऐसा बिंदु है जिसके लिए अधिगम का आयोजन किया जाता है अतः इसकी सक्रिय सहभागिता नितांत आवश्यक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अधिगम और सक्रिय सहभागिता दोनों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है दोनों एक दूसरे के आभाव में अपूर्ण है।

2.9 परिपृच्छा (जाँच पड़ताल/इन्क्वायरी) और अधिगम

परिपृच्छा एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमारी ज्ञान सम्बन्धी शंकाओं का निवारण करती है और समस्याओं का समाधान करती है। परिपृच्छा के सिद्धांत अनेक प्रकार की पूछ-ताछ का परिणाम होते है जिसका अनेक ढंग से विश्लेषण किया जाता है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिपृच्छा आयाम एक ऐसा साधन है जो की सूचनाओं और आंकड़ो तक पहुँचाने के सिद्धांत पर केन्द्रित है। यह समस्या समाधान कौशल को विकसित करने के ऊपर आधारित है यह विधि अधिक छात्र केन्द्रित है जोकि अध्यापक को केवल अधिगम प्रक्रिया को सरलीकृत करने का साधन मात्र मानती है। यह इस बात पर अधिक बल देती है कि हम ज्ञान तक कैसे पहुंचें बजाय इसके के हम क्या जानते हैं। छात्र ज्ञान के निर्माण में सक्रिय सहभागिता द्वारा घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होते हैं अतः हम कह सकते है कि परिपृच्छा अधिगम का एक आयाम है जिससे भौतिक और प्राकृतिक विश्व के सम्बन्ध में जानने का प्रयास किया जाता है। इसमें प्रश्न पूछे जाते हैं और उनके उत्तरों का विवेचन करके नवीन ज्ञान की खोज की जाती है।

2.9.1 परिपृच्छा के प्रकार एवं स्तर

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिपृच्छा का महतव्पूर्ण स्थान है। यह एक छात्र केन्द्रित विधि है। जिसमे छात्रों की सक्रिय सहभागिता के द्वारा उनको नया ज्ञान प्रदान किया जाता है और उसका विश्लेसंन किया जाता है। अधिगम को आधार मानकर परिपृच्छा को विभिन्न स्तर पर उपयोग किया जाता है –

i. सत्यापन्न
ii. संरचनातमक
iii. मार्गदर्शित परिपृच्छा
iv. सर्विदित और सत्य परिपृच्छा

उपरोक्त चारो स्तरों को अध्यापक द्वारा कक्षा कक्ष में प्रयोग करता है पहले स्तर में प्रश्न पूछकर छात्रों से सत्यापन करने को कहता है दुसरे स्तर पर प्रश्न करके विश्लेष्ण करने को कहता है तीसरे स्तर पर शोध सवाल प्रदान किये जाते है तथा चौथे स्तर पर छात्रों को कोई समस्या ढूढने को कहा जाता है ।तथा उस समस्या का समाधान भी। परिपृच्छा के एक महतवपूर्ण प्रकार में वैज्ञानिक परिपृच्छा होती है।

वैज्ञानिक परिपृच्छा- ज्ञान शिक्षण की एक युक्ति के रूप में वैज्ञानिक परिपृच्छा अध्यापको की देन है इसके अंतर्गत इस प्रकारकी परिस्थितियां उतपन्न की जाती है जिससे छात्र की योग्यता का विकास हो सके। और विज्ञानं के प्रति समझ बढ़ सके वैज्ञानिक परिपृच्छा में छात्रों का लक्ष्य होता है कि कार्यो द्वारा खोज करना और प्रश्न पूछने की क्षमताओं को विकसित करना। वैज्ञानिक परिपृच्छा में सार्थक ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसका प्रयोग अरस्तु और सुकरात अपने समय में किया करते थे। ज्ञान एक समय के अनुसार बदलता रहता है।

वैज्ञानिक परिपृच्छा के सोपान - इसमें प्रश्नों का उत्तर वैज्ञानिक परिपृच्छा के सोपानो का प्रयोग करके प्राप्त किया जाता है – इस प्रक्रिया के सोपान इस प्रकार है

i. समस्या का कथन
ii. संभावित समाधान(परिकल्पना)
iii. प्रयोगात्मक प्रारूप तैयार करना
iv. प्रदतो का संकलन
v. विश्लेषण करना
vi. निष्कर्ष निकालना

इस प्रकार वैज्ञानिक परिपृच्छा की प्रक्रिया का अंत नहीं होता है अपितु आगे की परिपृच्छा का बिस्तार के साथ साथ ज्ञान का सृजन होता है।

2.9.2 परिपृच्छा एवं अधिगम

सामान्य रूप से सीखने के लिए पम्परागत दृष्टिकोण, सामग्री के स्वामित्व ध्यान केन्द्रित किया जाता है। एक समय था जब शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पूरी तरह से शिक्षक केन्द्रित होती थी। शिक्षक को ज्ञान का भंडार और छात्र को केवल मात्र ज्ञान प्राप्तकर्ता समझा जाता था। वर्तमान युग में यह अवधारणा पूरी तरह से बदल चुकी है अब शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का केंद्र बिंदु छात्र को माना जाता है और उसको केंद्र मान कर शिक्षा की नीतियों का निर्धारण किया जाता है। यह अधिगम प्रक्रिया का केंद्र बिंदु होता है। परिपृच्छा अधिगम कराने की एक युक्ति के रूप में प्रयोग की जाती है जिसमे अध्यापक और छात्र के बीच वाद-संवाद के द्वारा नये ज्ञान का सृजन किया जाता है। परिपृच्छा आधारित अधिगम में मुख्य रूप से ब्लूम के द्वारा प्रतिपादित मानव व्यवहार के पक्षों पर ही प्रश्न पूछे जाते हैं उन प्रश्नों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध बालक के ज्ञानात्मक, बोधात्मक, प्रयोगात्मक, विश्लेष्णात्मक, संश्लेश्नात्मक और मूल्यांकन क्षमता से होता है और यह क्षमता अधिगम के द्वारा ही विकसित की जाती है। एक अध्यापक द्वारा अपने अधिगम प्रक्रिया में परिपृच्छा का प्रयोग किया जाता है जिसको हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से अध्ययन कर सकते है –

i. अध्यापक द्वारा ऐसे प्रश्न पूछे जाते है जिनका उत्तर परिपृच्छा विधि का प्रयोग करके ही दिया जा सकता है।
ii. अध्यापक द्वारा कक्षा में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देना जिससे विद्यार्थी ज्ञान का सृजन स्वयं कर सकें।
iii. परिपृच्छा विधि से अधिगम कराने से अध्यापक विद्यार्थियों के अंदर वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर देता है।

इस प्रकार हम देखते है कि अधिगम प्रक्रिया में परिपृच्छा का प्रयोग करके छात्रों को सक्रिय, रूचिपूर्ण अधिगम करा सकते हैं। परिपृच्छा आधारित अधिगम बहुत अधिक महत्वपूर्ण अधिगम आयाम है क्योंकि इसमें छात्र सीखता है कि कैसे निरंतर सीखते रहना चाहिए। यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने पूरे जीवन में कुछ न कुछ सीखता रहता है और उस सीखे हुए ज्ञान का अकेले में चिंतन-मनन करता रहता है। परिपृच्छा के द्वारा विद्यार्थी की उत्सुकता और जानने की अभिवृति में वृद्धि होती रहती है इसके माध्यम से वह अपनी जिज्ञासाओं और मन में चल रहे प्रश्नों को अध्यापक के समक्ष रखता है और अपनी शंकाओं को दूर करता है। अतः हम कह सकते है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिपृच्छा का बहुत अधिक महत्त्व है जो विद्यार्थी के ज्ञान वृद्धि में सहायक होती है।

पूछताछ या परिपृच्छा एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमारी ज्ञान सम्बन्धी शंकाओं का निवारण करती है और समस्याओं का समाधान करती है। इसमें प्रश्न पूछे जाते है और उनके उत्तरों का विवेचन करके नवीन ज्ञान की खोज की जाती है।

परिपृच्छा प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य ज्ञान हासिल करना होता है जोकि प्रश्न उत्तरों के माध्यम से हासिल किया जाता है। इस प्रक्रिया को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए व्यक्ति में आलोचनात्मक चिंतन और निष्कर्षात्मक चिंतन की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते है कि

जाँच पड़ताल का प्रयोग करने से विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन करने की क्षमता का विकास होता है। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विद्यार्थियों के ज्ञान को विकसित करने के लिए, उनकी समस्याओं के समाधान के लिए और उनकी शंकाओं के निवारण के किये परिपृच्छा आयाम एक महत्वपूर्ण आयाम है।

2.10 अधिगम के विभिन्न स्तर और रुचि,जिज्ञासा ,सक्रिय सहभागिता, इन्क्वारी (परिपृच्छा), का आपस में सम्बन्ध

शिक्षा मनोविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करना होता है। और शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति कीअन्तर्निहित शक्तियों का अधिकतम सम्भव, सहज, स्वाभाविक, तथा सर्वंगीण विकास करके एक उपयोगी नागरिक बनाना होता होता है। इस प्रक्रिया में अधिगम महत्तवपूर्ण हो जाता है और अधिगम के अन्तर्गत अधिगमकर्ता अर्थात छात्र केंद्र बिंदु हो जाता है इस प्रकार शिक्षा की समस्त नीतियाँ छात्र केन्द्रित हो जाती है और उनका अधिकतम विकास की बात करती है और मनोविज्ञान इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु अधिगम को सरल बनाने हेतु सिधान्तो का प्रतिपादन करता है। मुख्यरूप से पुरी अधिगम प्रक्रिया दो बातो के लिए होती है। पहली अधिगमकर्ता के व्यवहार में वांछित परिवर्तन के लिए और मनोविज्ञान के अनुसार व्यवहार अर्थात अधिगमकर्ता को जाने बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता प्रस्तुत इकाई में रूचि , सक्रिय सहभागिता , जिज्ञासा, जाँच पड़ताल का अधिगम के विभिन्न स्तरों से सम्बन्ध एवं अधिगम के बारे में बात की जा रही है।

जैसा की हम जानते है अधिगम प्रक्रिया का प्रमुख घटक अधिगमकर्ता है। इसीको केंद्र विन्दु मानकर अधिगम प्रक्रिया सम्पादित की जाती है, सिधान्त बनाये जाते है ,नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। इसलिये अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता की रूचि,बुधिलब्धि, सक्रिय सहभागिता , परिपृच्छा, जिज्ञासा और उसका सीखने अर्थात अधिगम का स्तर पुरी अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करता है। उपरोक्त वर्णित सम्बन्द बिंदु अधिगम को सकरात्मक रूप एवं नकारात्मक रूप से प्राभवित करते है। यह अधिगमकर्ता पर निर्भर करता है। कि अधिगमकर्ता की अधिगम प्रक्रिया में सम्पादित की जाने वाली विषय बस्तु के प्रति रूचि, जिज्ञासा , परिपृच्छा , सक्रिय सहभागिता अधिगम को सकारात्मक रूप से अधिगम के प्रभावी बना सकते है। इन सब के अतिरिक्त अधिगमकर्ता का अधिगम स्तर भी अधिगम प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित करता है ,प्रश्न उठता है की यह अधिगम स्तर क्या है ?क्या होता है ? साधारण शब्दों में ज्ञान अर्जन की क्षमता से और उसकी कठिनाई के साथ लगाया जाता है

अधिगम स्तर को विभिन्न तरीको/आधारों पर विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है । और मनोवैज्ञानिको ने किया भी है जिसमे गैन्ने, ब्रूनर, ब्लूम पियाजे कुछ महतवपूर्ण मनोवैज्ञानिको ने अधिगम के प्रकार एवं स्तरों को बताया है। जिसमे ब्रूनर ने तीन स्तर बताये – 1.सक्रिय सहभागिता (enactive stage)2. प्रतिमा परक (iconic)3. प्रतिमा(symbolic) पियाजे ने चार स्तर बताये – संवेदी गामक अवस्था , पूर्व संक्रियाताम्क अवस्था ,मूर्त संक्रिया अवस्था, एवं ओपचारिक अवस्था ,गैन्ने ने आठ

प्रकार के अधिगम स्तर की बात की परन्तु यहाँ पर अधिगम के सबसे प्रचलित चार स्तर जो मुल स्तर है जो निम्न है – 1. (rote lerning) जिसे अधिगम का नुन्नतम स्तर कहा जाता है । इसके अंतर्गत अधिगमकर्ता में रटने की क्षमता अर्थात जो अधिगम कार्य किया गया है उसको दोहराना होता है। -2. इसके बाद अधिगम का स्तर क्रमशः उच्च होता जाता है इस प्रकार दुसरे स्तर पर बोधात्मक स्तर तथा – तीसरे स्तर पर प्रयोगात्मक स्तर के अधिगम की बात की जाती है और अंत में सहसमंध्तामक अधिगम का स्तर जिसका की पूर्व में अपने से निचे तीनो अधिगम स्तरों से सम्बन्द होता है , बेंजामिन बी. यस, ब्लूम ने भी मानव व्यवहार(अधिगम) के तिन पक्ष बताये जिसमे –

1. संज्ञानात्मक पक्ष (cognative domin)
2. भावनात्मक पक्ष(affective domin)
3. मनोक्रियात्मक पक्ष(psychomotor domin)

वास्तव में इसको शैक्षिक उद्देश्यों की शब्दावली कहा जाता है (a texonomy of educational objective) इस पदानुकर्मित उद्देश्यों के वर्गीकरण को हम अधिगम आउटकम अर्तांथ (परिणाम) के रूप में वर्गीकृत कर सकते है। जो अधिगमकर्ता के अधिगम स्तर को बताता है कि उसने किस प्रकार का अधिगम किया है जिसका पदानुक्रम नुन्नतम कठिन स्तर से लेकर कठिन और अंत में अधिकतम कठिन स्तर का अधिगम कहा जाता है। जिसे हम निम्न नामों से भी जान सकते है – अधिगम का संज्ञानात्मक स्तर , अधिगम का भावात्मक स्तर, अधिगम का मनोक्रियातमक स्तर इनको विस्तृत रूप से चित्र के माध्यम से स्पस्ट किया गया है । प्रत्येक अधिगम स्तर को अधिगमकर्ता की क्षमता के अनुसार विभिन्न अन्य स्तरों में भी वर्गीकृत किया गया है -

1. **संज्ञानात्मक पक्ष (Cognative Domain)-** इसे हम अधिगम का संज्ञानात्मक स्तर कहते है इस स्तर को छ उप अधिगम स्तर में विभक्त किया गया है जो चित्र में वर्णित है –

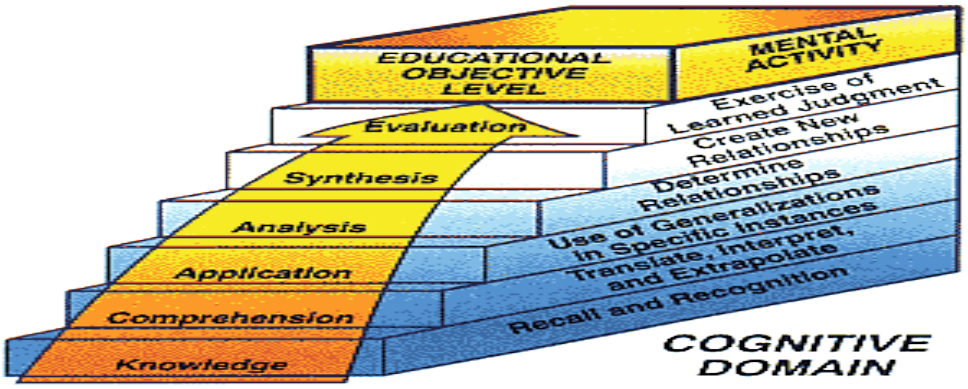

Figure 1-4. Dr. Bloom's hierarchical taxonomy for the cognitive domain (knowledge) includes six educational objective levels.

Cognative Domain (अधिगम का संज्ञानात्मक स्तर)

2. **भावनात्मक पक्ष(Affective Domain) -** अधिगम का भावात्मक स्तर इसको भी ब्लूम एवं उनके सहयोगियों ने छ भागो में अधिगमकर्ता के अधिगम स्तर के अनुसार वर्गीकृत किया जो निम्न चित्र से स्पस्ट है –

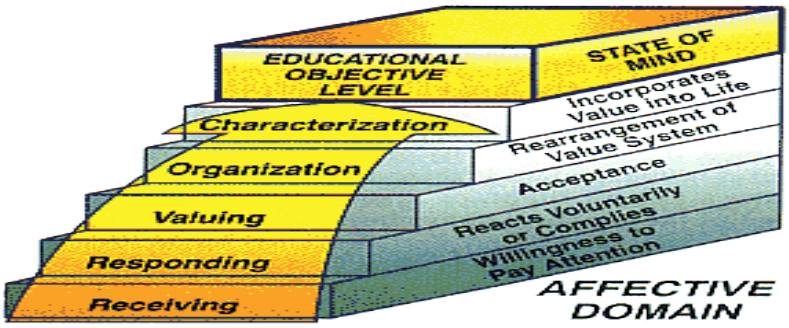

Figure 1-5. D. R. Krathwohl's hierarchical taxonomy for the affective domain (attitudes, beliefs, and values) contains five educational objective levels.

Affective Domin (अधुगम का भावात्मक स्तर)

3. Psychomotor Domin (अधिगम का मनोक्रियातामक स्तर) इस अधिगम में हम अभियन्त्रिक, शारीरिक, मन तथा हाथ , से होने वाले अधिगमो को विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत करते है जो चित्र के माध्यम से स्पस्ट है।

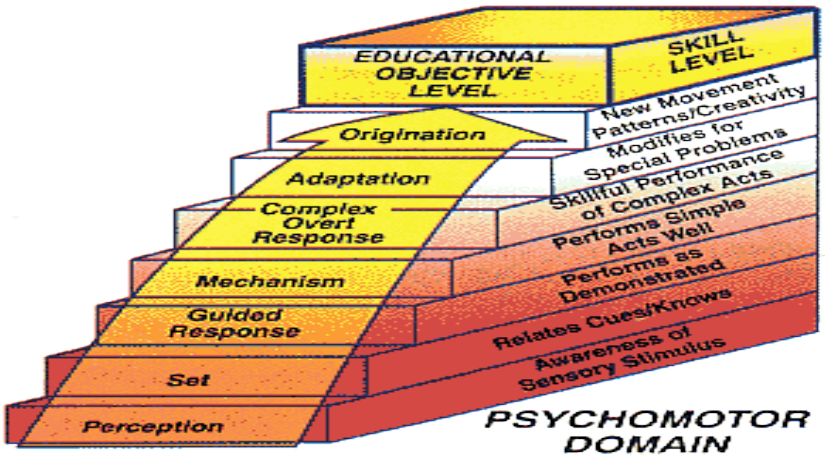

Figure1-6. E.J. Simpson's hierarchical taxonomy for the psychomotor domain (physical skills) consists of seven educational objective levels.

अधिगम का मनोक्रियातामक स्तर

	OBJECTIVE LEVEL	ACTION VERBS FOR EACH LEVEL
COGNITIVE DOMAIN	Evaluation	assess, evaluate, interpret, judge, rate, score, or write
	Synthesis	compile, compose, design, reconstruct, or formulate
	Analysis	compare, discriminate, distinguish, or separate
	Application	compute, demonstrate, employ, operate, or solve
	Comprehension	convert, explain, locate, report, restate, or select
	Knowledge	describe, identify, name, point to, recognize, or recall
AFFECTIVE DOMAIN	Characterization	assess, delegate, practice, influence, revise, and maintain
	Organization	accept responsibility, adhere, defend, and formulate
	Valuing	appreciate, follow, join, justify, show concern, or share
	Responding	conform, greet, help, perform, recite, or write
	Receiving	ask, choose, give, locate, select, rely, or use
PSYCHOMOTOR DOMAIN	Origination	combine, compose, construct, design, or originate
	Adaptation	adapt, alter, change, rearrange, reorganize, or revise
	Complex Overt Response	same as below except more highly coordinated
	Mechanism	same as below except with greater proficiency
	Guided Response	assemble, build, calibrate, fix, grind, or mend
	Set	begin, move, react, respond, start, or select
	Perception	choose, detect, identify, isolate, or compare

Figure 1-7. A listing such as the one shown here is useful for development of almost any training program.

संज्ञानात्मक, भावात्मक, एवं मनोक्रियात्मक स्तर

यह कहा जा सकता है कि अधिगम हो या अधिगम के विभिन्न स्तर जो भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिको के द्वारा प्रतिपादित किये गए है । उनका प्रत्यक्ष संबंद अधिगमकर्ता से है। और अधिगमकर्ता का सम्बन्ध अधिगम से और अधिगम का अधिगमकर्ता की रूचि ,उसकी जिज्ञासा,उसकी सक्रिय सहभागिता , एवं उसकी परिपृच्छा से है इन सब के अभाव में एक सफल एवं प्रभावपूर्ण अधिगम प्रक्रिया का सम्पादन सम्भव नहीं है । इस प्रकार हम कह सकते है कि अधिगम में रूचि , जिज्ञासा , परिपृच्छा , सक्रिय सहभागिता का महतवपूर्ण स्थान है । अब चाहे इन बिन्दुओ को हम अधिगमकर्ता के पक्ष में रख कर देखे या शिक्षक अर्ताथ अधिगम कराने वाले के दोनों की ही रूचि, जिज्ञासा, परिपृच्छा , सहभागिता अधिगम को

प्रभावित करते है अतः इन सभी बिन्दुओ का आपस में एक दुसरे के साथ एवं अधिगम के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है।

2.11 सारांश

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यू तक कुछ न कुछ सिखाता रहता है। सिखाना एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। अधिगमकर्ता उस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसको केंद्र बिंदु मानकर अधिगम प्रक्रिया सम्पादित की जाती है। प्रस्तुत इकाई में हमने पढ़ा कि व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन जो अनुभव या प्रशिक्षण के द्वारा होता है उसे अधिगम कहते है। हमने यह भी पढ़ा की ,अधिगमकर्ता वह व्यक्ति अथवा बालक होता है जो अधयन्न,अनुदेशन या अनुभव के माध्यम से ज्ञान और कौशल अर्जित करने की इच्छा रखता है, दूसरी तरफ कक्षा कक्ष में अध्ययन कर रहे विद्यार्थी को अधिगमकर्ता की संज्ञा दि जाती है – और अधिगमकर्ता को हम उनकी अध्ययन क्षमता के आधार पर तिव्र गति से सीखने वाले अधिगमकर्ता, सामान्य गति से ,एवं धीमी गति से सीखने वाले अधिगमकर्ता के रूप में वर्गीकृत करते है। सीखने की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता एक महत्तवपूर्ण कारक होता है। हमने यह भी अध्ययन किया कि अधिगम में अधिगमकर्ता की रूचि, उसकी सक्रिय सहभागिता , जागरूकता , जिज्ञासा , अधिगम को प्रभावित करती है और इनका अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी एवं सरल बनाने में महतवपूर्ण योगदान होता है , रूचि को हम एक मानसिक स्थिति के रूप में परिभाषित करते है जो ध्यान बनाकर कार्य की एकाग्रता को बनाये रखती है। उसी प्रकार जिज्ञासा किसी भी वस्तु के बारे में या विषय के बारे में जानने की इच्छा रखना ही जिज्ञासा कहलाता है। जिज्ञासा के साथ साथ सक्रिय सहभागिता का भी अधिगम में उतना ही महत्व है " यह समय की वह राशि है जिसमे छात्र सक्रियता से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में अपनी भागीदारी देता है चाहे अधिगम किसी भी स्तर या किसी भी प्रकार का हो। "

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अधिगमकर्ता के व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है , और अधिगमकर्ता का अधिगम स्तर , ज्ञान का स्तर , उसकी बौद्धिक क्षमता , विभिन्नता के साथ साथ अधिगम प्रक्रिया में उसकी रूचि, सक्रिय सहभागिता , ज्ञान के प्रति उसकी जिज्ञासा ये सभी अधिगम प्रक्रिया के एक महतवपूर्ण कारक है। और अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते है बिना इनके सकरात्मक प्रभाव के अधिगम प्रक्रिया सरल,स्पष्ट एवं प्रभावी नहीं हो सकती।

2.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मंगल एसके (2015) शिक्षा मनोविज्ञान, पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमटेड, न्यू दिल्ली पी, 209-221
2. सिंह अरुण कुमार (2005) उच्तर सामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास, बंगलो दिल्ली
3. गुप्ता एसपी (2003) उच्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक मन्दिर यूनिवर्सिटी रोड इलाहबाद।

(In English)

4. Jon P Decicco (1984) the Psychology of learning and Instruction , PHI New Delhi
5. Chauhan SS (1990) Advanced Educational Psychology, Vikas Publication House, N. Delhi
6. Aggrawal J. C. (1995) Essentials of Educational Psychology, Vikas Publ House, N. Delhi
7. Sharma RA (1996) Essentials of Educational Psychology, R Lall Book Depot, Meerut
8. Bhatia HR (1997) A text book of Educational Psychology, N. Delhi
9. Aggarwal J. C. (2001) Basic ideas in Educational Psychology, Shipra Publisher, N. Delhi
10. Sharma RN & Sharma RK (2002) Educational Psychology, Atlantic Publishers & Distributors, N. Delhi.
11. Aggarwal J. C. (2004) Psychology of learning & development, Shipra Publishers, N. Delhi
12. Bhatnager Suresh & Saxena Anamika (2007) Advanced Educational Psychology, R Lall Book Depot, Meerut
13. Mangal SK: (2010) Educational Psychology, Prentice Hall of India, N. Delhi

Retrived & concern from website :

1. www. edweek.org/ew/how-can teacher –foster curisity
2. www. edutopia.org
3. www. opencollege.edu.au/why-curiossity- enhance – learnig
4. www. educationosis.com/vistor-resources/fostring-couriosity
5. www. edweek.org/fostering curisity in the classrrom
6. www. edutopia.org/blog/student-engagement
7. www. crlt.unrich.edu/active-learning- student engagement

8. http://wikipedia.org/inquiry-based learning
9. http://www.etupia.org/inquiry-based learnig
10. www. edu,gov/ca/eng/literacy/research inquiry based learning
11. www. inspiredteaching.org
12. www. inquirybasedlearnig

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

i. अधिगम कर्ता किसे कहते है इनके विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
ii. अधिगम का अर्थ स्पस्ट करते हुए अधिगम प्रक्रिया का अधिगमकर्ता के साथ उसकी रूचि , जिज्ञासा का विवेचन कीजिए ?
iii. सक्रिय सहभागिता का अधिगम में महत्व स्पस्ट कीजिए
iv. अधिगम के विभिन्न स्तर का अधिगम कर्ता के साथ सम्बन्ध का अपने शब्दों में उदहारण सहित समझिये
v. अधिगम किसे कहते है? उसकी प्रकृति , उसकी विशेषताए तथा अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए सुझाव अपने अनुसार दे।

इकाई 3 - अधिगमर्ता ज्ञान के निर्माता के रूप में

Learner as Constructor of Knowledge

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अधिगमर्ता ज्ञान के निर्माता के रूप में
3.3.1 निर्मितवाद क्या है ?
3.3.2 निर्मितवादी कक्षा की विशेषताएँ
3.3.3 निर्मितवादी उपागम
3.3.4 परम्परागत एवं निर्मितवादी कक्षा में भिन्नता
3.3.5 निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत द्वारा शिक्षण हेतु सुझाव
3.4 निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत
3.4.1 पियाजे का योगदान
3.4.2 वाइगोत्सकी का योगदान
3.4.3 ब्रूनर का योगदान
3.5 स्कूल में प्रभावपूर्ण शिक्षण
3.5.1 सीखने में प्रेरणा का स्थान
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

हमने पछली इकायों में अधिगम के सिद्धान्तों का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकला कि आधुनिक परिपेक्ष में छात्रों को निष्क्रिय ज्ञान के प्राप्तकर्ता न होकर शिक्षकों के साथ आदान प्रदान हेतु सक्रिय रहना चाहिए। अत: इसके लिए शिक्षक को भी अपनी भूमिका में परिवर्तन करना होगा। उन्हें यह अनुमान लगाना होगा की छात्र में कितनी क्षमता है तथा उसी के अनुसार उन्हें अधिगम क्रियाएं प्रस्तुत करनी होगी

और छात्रों में ज्ञान की रचना करने के लिए सहायक भूमिका निभानी होगी। यह विशेषताएँ निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत में पाई गई हैं। इस इकाई में हम जानेंगे की निर्मितवाद क्या है तथा निर्मितवाद कक्षा की विशेषताएँ क्या है ? इसके उपरांत हम परम्परागत एवं निर्मितवाद कक्षा में भिन्नता, निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत तथा स्कूल में शक्तिशाली शिक्षण का वर्णन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

5. निर्मितवाद शिक्षा का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
6. निर्मितवाद कक्षा की विशेषताएँ बता सकेंगे।
7. परम्परागत एवं निर्मितवाद कक्षा में भिन्नता का वर्णन कर सकेंगे।
8. निर्मितवादी अधिगम सिद्धान्तों के कार्य क्षेत्रोंकी व्याख्या कर सकेंगे।
9. स्कूल में शक्तिशाली शिक्षण का वर्णन कर सकेंगे।

3.3 अधिगमर्ता ज्ञान के निर्माता के रूप में Learner as Constructor of Knowledge

जॉन लॉक (John Locke) के अनुसार, बालक एक 'खाली पट्टी' है (blank slate)। इस संदर्भ को झुठलाते हुए निर्मितवादी दृष्टिकोण यह मानती है कि छात्र में उपस्थित ज्ञान का भण्डार होता है जिसे व्यवस्थित कर वह नवीन ज्ञान की संरचना करता है। शिक्षक केवल एक सहायक की भूमिका निभाते हैं। एक निर्मितवादी शिक्षक केवल छात्र को अधिक जानकारी देने में मदद नहीं करता, न ही वह पाठ्यसामग्री की गहरी समझ विकसित करने की कोशिश करता है। अपितु वह छात्र की मौजूदा संज्ञानात्मक संरचना को समझने और उचित शिक्षण गतिविधियों द्वारा ज्ञान के निर्माण में छात्रों की सहायता करता है। इस प्रकार निर्मितवादी सीखने की गतिविधि पर ज़ोर देता है। इनका मानना यह है कि छात्र निष्क्रिय जानकारी प्राप्तकर्ता नहीं है बल्कि सक्रिय रूप से अपने अनुभवों और पूर्व ज्ञान से अर्थ का निर्माण करते हैं। तथा वह समुदाय की मदद से अधिक ज्ञान प्राप्त करने में योग्य है। वह अपनी व्यक्तिगत समझ से पूर्व धारणाओं में संशोधन करता है और अगर उसे वह उचित नहीं लगता तो वह छोड़ देता है। इसलिए यह कहना अनिवार्य होगा कि आज के युग में छात्रों को केवल सूचना ग्रहण करने का यन्त्र न मानते हुए उन्हें ज्ञान के निर्माता के रूप में देखा गया है अब हम ये जानेंगे कि निर्मितवाद क्या है ?

3.3.1 निर्मितवाद क्या है ? What is Constructivism?

निर्मितवाद की पृष्ठभूमि संज्ञानात्मक मनोविज्ञान तथा मस्तिष्क आधारित शोध का अधिगम पर प्रभाव है। यह शोध शिक्षक के विकास और परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टी उपलब्ध कराती है। फोसनोद (1996) के अनुसार निर्मितवाद अधिगम सिद्धांत के अनुसार ज्ञान को अस्थायी, विकासशील, आन्तरिक निर्मित तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, मध्यस्थ होना माना गया है। यह सिद्धांत मानता है कि ज्ञान का निर्माण किया जाता है न की स्थानान्तरण। निर्मितवावादी प्रश्न पूछना, अन्वेषण, चिंतन तथा तर्क विधि को स्वीकारते है। वे स्मृति द्वारा सीखने या रटने की विधि को मान्यता नहीं देते। निर्मितवादी के अनुसार बालक अपने पर्यावरण का बोध व ज्ञान विभिन्न अनुभवों द्वारा चिंतन व तर्क करते हुए निर्मित करता है ।उनका मानना है कि सीखना (संज्ञानात्मक) 'मानसिक निर्माण' का परिणाम है और बालक अपनी समझ का निर्माण व्यक्तिगत अनुभवों तथा नवीन ज्ञान को पूर्व ज्ञान से संबंधित करते हुए करता है। वह अपने लिए 'स्कीमा' या 'मानसिक माडल' बनता है और उसमे नए ज्ञान का समायोजन करता है।

3.3.2 निर्मितवादी कक्षा की विशेषताएँ Characteristics of Constructivist Classroom

'मैंने सुना और मैं भूल गया। मैंने देखा और मुझे याद है। मैं करता हूँ और मैं समझता हूँ।"
"I hear and I forget, I see and I remember. I do and I understand."

- Confucius

कन्फ़्यूशियस के इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि सुनने और देखने से ज्यादा 'करना' अधिक सशक्त है। इसी कथन पर निर्मितवाद सिद्धांत ने बल दिया है। निर्मितवादी कक्षा में ध्यान शिक्षक से छात्र की ओर केन्द्रित होता है क्योकि यह सिद्धांत छात्र को अधिक महत्व देता है। ब्रूक्स एवं ब्रूक्स (Brooks and Brooks, 1993) ने निर्मितवादी कक्षा की निम्नलिखित विशेषतएँ बतायी है–

1. इस सिद्धांत में छात्र की स्वायत्तता (autonomy) और पहल (initiative) को स्वीकारा जाता है और उसे प्रोत्साहित करते हैं।
2. शिक्षक प्रश्न पूछते हैं और छात्रों के उत्तर की प्रतीक्षा करते हैं।
3. इस सिद्धांत में उच्च स्तर की सोच को प्रोत्साहन देते हैं।
4. इसमें छात्र शिक्षक के साथ और एक दूसरे के साथ बातचीत द्वारा हल निकालते हैं।
5. छात्र अपने अनुभवों में लीन रहते हैं और आपस में चर्चा करते हुए परिकल्पनाओं को चुनौती देते हैं।
6. इस विधि में छात्र सामग्री द्वारा, एक दूसरे के संग बातचीत व निरीक्षण द्वारा अर्थ का निर्माण करता है।

3.3.3 निर्मितवादी उपागम

किसी भी कार्य को करने के लिए जिस प्रकार किसी विधि की आवश्यकता पड़ती है, ठीक इसी प्रकार निर्मितवादी दृष्टीकोण द्वारा शिक्षण के लिए कई उपागम या विधियों निर्मितवादियों द्वारा सुझाई गई है। अतः शिक्षक को चाहिए कि वे निम्नलिखित उपागम का प्रयोग करे तथा शिक्षार्थी को अपने ही अन्दर के ज्ञान का निर्माण करने में सहायता दे।

1. संप्रत्यय मानचित्रण (concept mapping)
2. समस्या समाधान विधि (Problem solving method)
3. जाँच पड़ताल उपागम (Investigatory approach)
4. सामाजिक जाँच उपागम (Social inquiry approach)

3.3.5 परम्परागत एवं निर्मितवादी कक्षा में भिन्नता

स.न.	परम्परागत कक्षा	निर्मितवादी कक्षा
1.	प्राय: शिक्षक परम्परागत तरीके से व्यवहार करते है व छात्रों को केवल सूचनाएं प्रदान करते हैं ।	शिक्षक अंत: क्रिया के रूप में व्यवहार करते है तथा उचित वातावरण बनाते हैं।
2.	परम्परागत शिक्षण में छात्र अकेले ही प्रयत्नशील होता है । शिक्षक उसे 'खाली पट्टी' (blank slate) की तरह मानकर उसे सूचनाएं देते रहते हैं।	निर्मितवादी कक्षा में छात्र समूह में कार्य करते हैं। छात्रों को एक उदित होते हुए दार्शनिक या चिंतकों के रूप में देखा जाता है जो विश्व के सम्बन्ध में नए सिद्धांत जागृत करते हैं।
3.	परम्परागत शिक्षण में शिक्षा के क्रियाकलाप मूल रूप से पाठ्यपुस्तक पर निर्भर होता है।	शिक्षा के क्रियाकलाप प्राथमिक श्रोता पर आधारित रहते हैं।
4.	परम्परागत शिक्षण में पाठ्यक्रम अंश से पूर्ण की ओर आधारित होता है।	निर्मितवादी कक्षा में पाठ्यक्रम पूर्ण से अंश की ओर होता है।
5.	परम्परागत शिक्षण मूल कौशल पर बल देता है।	निर्मितवादी शिक्षण प्रत्यय पर बल देता है।

3.3.5 निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत द्वारा शिक्षण हेतु सुझाव

निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत शिक्षक को निम्नलिखित सुझाव देते है -

i. शिक्षक को चाहिए कि वे अपने छात्रों के आत्म-अधिकार एवं आत्मबल को स्वीकृत करके उन्हें प्रोत्साहन दें।
ii. छात्रों को कार्य बताते समय शिक्षक को संज्ञानात्मक शब्द जैसे वर्गीकरण, विश्लेषण, मूल्यांकन अदि शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
iii. इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षक- शिक्षार्थी एवं शिक्षार्थी- शिक्षार्थी के मध्य आदान प्रदान होना चाहिए ।

iv. छात्रों के आरम्भिक प्रतिक्रिया के पश्चात् शिक्षक को चाहिए कि वह उससे प्रश्न पूछे व व्याख्या करने को कहे ।

v. प्रश्न पूछने के पश्चात शिक्षक को चाहिए कि वह छात्र को चिंतन करने के लिए प्रोत्साहित करे।

vi. शिक्षक को चाहिए कि वह छात्र को ज्ञान का सृजन करने में सहायता दे।

vii. शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्र में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करे।

viii. शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्र को लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता करे।

ix. शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्र में कार्य के प्रति रूचि विकसित करे।

x. शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्र को विभिन्न अधिगम युक्तियों के प्रति जागरूक करे और उनमें उपयुक्त युक्ति के चयन का कौशल विकसित करे।

अभ्यास प्रश्न

1. निर्मितवाद अधिगम सिद्धांत के अनुसार ज्ञान को _____ होना माना गया है।
   a. आन्तरिक निर्मित
   b. सामाजिक
   c. सांस्कृतिक
   d. उपरोक्त सभी
2. निर्मितवाद अधिगम सिद्धांत मानती है की ज्ञान का _____ किया जाता है न की _____ । (निर्माण, स्थानान्तरण)
3. परम्परागत शिक्षण _____पर बल देता है जबकी निर्मितवादी शिक्षण _____पर बल देता है। (मूल कौशल, प्रत्यय)
4. बालक एक 'खाली पट्टी' है, यह कथन किसकी है –
   a. जॉन लॉक
   b. ब्रूनर
   c. बण्डूरा
   d. स्किनर
5. 'मैंने सुना और मैं भूल गया। मैंने देखा और मुझे याद है। मैं करता हूँ और मैं समझता हूँ।" यह कथन किसकी है –
   a. फोसनोद
   b. पियाजे
   c. कन्फ़्यूशियस
   d. वाइगोत्सकी

3.4 निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत

निर्मितवादी सिद्धांत आधुनिक परिपेक्ष में कक्षा में प्रयोग होने वाली नवीनतम दृष्टीकोण है। कई सिद्धान्तों को शामिल करने में, निर्मितवाद एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसमे छात्र वह ज्ञान प्राप्त करता है जो कक्षा से प्रभावित होते हुए उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। निर्मितवादी प्रतिमान के रूप में पियाजे, ब्रूनर तथा वाइगोत्सकी का योगदान रहा है। वे कहते हैं कि अधिगमकर्ता ज्ञान की खोज द्वारा निर्माण करता है। ज्ञान का निर्माण करने के लिए अधिगमकर्ता को अपने नए अनुभवों को पुराने ज्ञान से सबंधित करना चाहिए। इस प्रकार निर्मितवादी उपागम द्वारा अधिगमकर्ता एक सक्रिय निर्माण प्रक्रिया द्वारा ज्ञान का विकास करता है और न कि निष्क्रिय होकर सूचना एकत्रित करता है । हम इस इकाई में निर्मितवादी सिद्धान्तों का संक्षिप्त में चर्चा करेंगे।

3.4.1 पियाजे का योगदान

जीन पियाजे (1896-1980) का सिद्धांत विकासात्मक है तथा विकास के चरणों पर सीखने की क्रिया पर बल देता है। पियाजे का यह मानना है कि व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक क्रियाओं की योजना बनाता है जो समस्या के समाधान में मदद करता है। उन्होंने बताया कि बालक कई अवस्थाओं में सीखता है और विचारों के आपसी टकराव से उनका ज्ञान विकसित होता है। पियाजे के अनुसार, "ज्ञान न तो पूरी तरह वस्तुओं के अनुभव से और न ही कर्ता पर जन्मजात प्रोग्रामिंग से लेकिन लगातार निर्माणों से आगे बढ़ता है"।

Accoding to Piaget, "Knowledge proceeds neither solely from the experience of objects nor from an innate programming performed in the subject but from successive constructions."

इस प्रकार पियाजे के निर्मितवादी सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति ज्ञान का निर्माण अपने अनुभवों द्वारा करता है। पियाजे ने अधिगम सिद्धांत, शिक्षण विधि और शिक्षा में सुधार को अपने सिद्धांत के अंतगर्त लिया। उनके अनुसार नए ज्ञान के निर्माता है – आत्मसात्करण (assimilation) तथा समायोजन (accomodation)। आत्मसात्करण द्वारा व्यक्ति अपने नए अनुभवों को पूर्व अनुभवों से जोड़ते है। इस प्रकार वह नए दृष्टिकोण विकसित करने के लिए पुर्नविचार तथा मूल्यांकन द्वारा अपनी धारणायें बदलता रहता है। समायोजन नए अनुभवों को मानसिक संप्रत्यय (mental concepts) में परिवर्तन कर, नए और पुराने अनुभवों में संतुलन करता है। इस प्रकार व्यक्ति में साम्यधारण (Equalibration) की स्थिति उत्पन्न होती है।

पियाजे का निर्मितवादी सिद्धांत वास्तव में यह बताता है कि अधिगम कैसे होता है, न कि कौन से कारक उन्हें प्रभावित करते हैं। इसमें शिक्षाक की भूमिका अति महवपूर्ण है। वह एक सुगमकर्ता (facilitator) की तरह बालक को सहायता देता है। इस प्रकार यह परम्परागत शिक्षण से भिन्न है। शिक्षक पाठ्यक्रम से

सूचनायें प्रदान न करते हुए छात्रों को सुविधा प्रदान करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि छात्र खुद से ज्ञान का निर्माण करे। इस विधि में शिक्षक निरंतर अपने छात्र से बातचीत द्वारा उन्हें दिशा देते है और जैसे-जैसे सीखने की प्रक्रिया आगे बढती है, वे उन्हें चुनौतियों के लिए तैयार करते है। इस प्रकार वे एक संरक्षक (mentor) , एक सलाहकार (consultant) व एक कोच (coach) के रूप में उन्हें प्रोत्साहित करते रहते है। वे छात्रों को समूह में एक दूसरे से सीखने के लिए भी प्रेरित करते हैं। छात्र एक विशेषज्ञ (expert) की भाँतिं कक्षा को संबोधित करता है। इस प्रकार वह सक्रिय होकर ज्ञान का निर्माण करता है।

3.4.2 वाइगोत्सकी का योगदान

वाइगोत्सकी के अनुसार बालक एक दूसरे के साथ अंतःक्रिया द्वारा सीखता है। सीखा हुआ ज्ञान बालक की मानसिक संरचना में एकीकृत होता है। पियाजे की तरह वाइगोत्सकी भी यह मानते थे कि बच्चे ज्ञान का निर्माण करते हैं किन्तु इनके अनुसार संज्ञानात्मक विकास एकाकी नहीं हो सकता। यह भाषा विकास, सामाजिक विकास तथा शारीरिक विकास के साथ-साथ सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ में भी होता है। उन्होंने सामाजिक कारक को उच्चतर संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओ के रूप में देखा। अतः हम यह कह सकते है कि पियाजे का सिद्धांत जो जैविकता और अधिगम में महत्व देते हैं से विपरीत वाइगोत्सकी का सिद्धांत है जो अधिगम और विकास को सांस्कृतिक व सामाजिक वातावरण की मध्यस्थता के साथ जोड़ता है। इस प्रकार सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियाँ को उन्होंने बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका बताई है।

वाइगोत्सकी के अनुसार बालक के सीखने का लक्ष्य उसकी क्षमताओं और आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिए। अर्थात वह उसके संभावित विकास के क्षेत्र (ZPD) के अन्तर्गत हो। इसलिए शिक्षक को चाहिए कि बालक के संभावित विकास का क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही उसे चुनौती दे जिससे उसका मनोबल व आत्मविश्वास बना रहे। ढाँचा निर्माण द्वारा शिक्षक को बालक को चुनौतियों से अवगत कराना चाहिए। शुरू में उन्हें बालक को सहायता देनी चाहिए व धीरे-धीरे स्वयं कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

3.4.3 ब्रूनर का योगदान

ब्रूनर के सिद्धांत को आधुनिक संज्ञानात्मक सिद्धांत के श्रेणी में रखा गया है। ब्रूनर ने छात्रों का कक्षा में व्यवहार निरीक्षण किया जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने सीखने के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इसलिए उनके सिद्धांत की उपयोगिता शिक्षा में अधिक बताई गई है। उन्होंने सिखाने में अन्तर्दर्शन (intuition) को महत्वपूर्ण स्थान दिया। ब्रूनर के अनुसार कक्षा में अंतदर्शी चिंतन (intuitive thinking) में विशलेषणात्मक चिंतन (analytical thinking) की अपेक्षा कम ध्यान दिया जाता है जो सही नहीं है। इसलिए शिक्षक को चाहिए कि वह बालक की अंतदर्शी समझ पर अधिक बल दे। उनका मत था कि प्रत्येक विषय की अपनी संरचना होती है इसलिए छात्रों को इन संरचनाओं को अर्थात उनके संप्रत्यय (concepts), सिद्धांत/नियम (principles) एवं प्रविधियों को सीखने में बल देना चाहिए। इस प्रकार

ब्रूनर ने संप्रत्यय निर्माण को महत्त्व देते हुए कहा की यह शैशवावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। संप्रत्ययों के संगठन से सामंजस्य उत्पन्न हो जाता है व संप्रत्ययों से ही संज्ञानात्मक विकास होता है ।उन्होंने शिक्षा को केवल व्यक्तिगत रूप से नहीं अपितु सामजिक उद्देश्यों के परिपेक्ष में रखा तथा बल दिया कि पाठ्यक्रम को छात्रों के अनुरूप तैयार करना चाहिए जिससे वे सीखने के लिए तत्पर रहें । ब्रूनर ने अन्वेषणत्मक विधि (Discovery method) को सबसे उत्तम विधि माना । उन्होंने माना की अन्वेषणत्मक विधि से बालक में सृजनशीलता का विकास होता है तथा उसे स्मृति, चिंतन व निर्णय शक्ति का भी विकास होता है । ब्रूनर के अनुसार ज्ञान आत्म-अन्वेषित (knowledge is self-discovered) है। उन्होंने कहा कि छात्र आगमनात्मक चिंतन (inductive thinking) कर, विषय से सम्बंधित संप्रत्ययों (concepts) के सम्बन्धो की खोज करे । इस प्रकार ब्रूनर का सिद्धांत यह मानता है कि छात्र सीखने की परिस्थिति में निष्क्रिय न होकर सक्रिय ढंग से भाग लें ।

अभ्यास प्रश्न

6. "ज्ञान न पूरी तरह वस्तुओं के अनुभव से और न ही कर्ता पर जन्मजात प्रोग्रामिंग से लेकिन लगातार निर्माणों से आगे बढ़ता है ।"यह कथन किसके द्वारा कही गयी ।
    a. ब्रूनर
    b. वाटसन
    c. थार्नडाइक
    d. पियाजे
7. पियाजे
    a. आत्मसात्करण
    b. समायोजन
    c. साम्यधारण
    d. उपरोक्त सभी
8. ब्रूनर ने कौनसी विधि को सबसे उत्तम विधि माना?
    a. अन्वेषणत्मक विधि
    b. परमपरगत विधि
    c. प्रश्न उत्तर विधि
    d. उपरोक्त सभी
9. ब्रूनर ने कौनसी चिंतन को अपने सिद्धांत में अधिक महत्व दिया ।
    a. विशलेषणात्मक चिंतन
    b. अंतदर्शी चिंतन
    c. उपरोक्त दोनों
    d. कोई नहीं

10. निम्नलिखित प्रत्यय का अर्थ स्पष्ट करे –

a. अंतदर्शी व विशलेषणात्मक चिंतन
b. संभावित विकास के क्षेत्र
c. आत्मसात्करण तथा समायोजन
d. शिक्षक एक फैसिलिटेटर के रूप में

3.5 स्कूल में प्रभावपूर्ण शिक्षण

उपरोक्त सिद्धान्तों में अधिगम की प्रक्रिया तथा शिक्षक की भूमिका का हमनें विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। अब हम चर्चा करेंगे कि शिक्षण तथा अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक क्या है और वह बालक को कैसे प्रभाव करते हैं ?

शिक्षण क्रिया पर शिक्षक के मानसिक, शारीरिक, शैक्षिक योग्यताएँ तथा व्यक्तित्व गुण भी शिक्षण के स्वरूप को प्रभावित करते है । शिक्षण क्रिया का नियोजन, छात्र का मनोशारीरिक स्तर, व्यक्तिगत विभिन्ताएँ , शैक्षिक उद्देश्य , पाठ्यवस्तु की उपयोगित और कक्षा का वातावरण भी शिक्षण क्रिया को प्रभावित करते है। चूँकि वर्तमान प्रणाली बाल केन्द्रित है, इसलिए स्कूल में प्रभावपूर्ण शिक्षण हेतु बालक को प्रोत्साहित करना चाहिए। निम्नलिखित पंक्तियों में हम उन बिन्दुओं की चर्चा करेंगे जो बालक को सीखने के लिए तैयार करता है, उसे प्रोत्साहित करता है । बालक सीखने का प्रयास तभी करता है -

i. जब वह जानता है कि जो वह सीख रहा है वह उसके लिए लाभदायक है।
ii. जब व्यक्तिगत रूप से कार्य सार्थक होता है।
iii. जब वह जानता हो कि जो वह सीख रहा है उसमे चुनौती है और वह उस चुनौती को स्वीकारता है।
iv. जब वह जानता है कि जो वह सीख रहा है वह उसके विकास के स्तर को विकसित करने के लिए उपयुक्त है।
v. जब वह अपने तरीके से सीखता है।
vi. जब वह पूर्व ज्ञान का प्रयोग नए ज्ञान के निर्माण में करते है।
vii. जब उन्हें सामाजिक अंत:क्रिया करने का अवसर प्रदान होता है।
viii. जब उन्हें सकारात्मक पुनर्बलन प्राप्त होता है।
ix. जब वह तकनीकियों को अधिग्रहण करते है व उसका उपयोग करते है।
x. जब वह सकारात्मक व भावनात्मक वातावरण का अनुभव करते है।
xi. जब सीखने का वातावरण सीखने के इरादे का समर्थन करता है।

इस प्रकार वही शिक्षक शक्तिशाली शिक्षक कहलाएगा जो अपने प्रशिक्षण के साथ साथ स्वंय के ज्ञान में वृद्धि करता रहे व छात्र को ज्ञान प्रदान करने के साथ साथ उसके अन्तनिहित ज्ञान को भी उजागर करें।

3.5.1 सीखने में प्रेरणा का स्थान

मानव के समस्त व्यवहार व क्रियाएं प्रेरणा पर आधारित हैं। प्रेरणा या अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो किसी कार्य को करने के लिए दिशा निर्धारित करती है। यह व्यक्ति के समस्त विकास व सफलता प्राप्त करने का एक महवपूर्ण श्रोत है। अभिप्रेरणा दो प्रकार की होती है – बाह्य तथा आंतरिक। जब विधार्थी के सामने शिक्षक उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करता है तो उसे बाह्य अभिप्रेरणा कहते है। परन्तु जब छात्रों को पाठ्यवस्तु अथवा क्रिया द्वारा स्वतः प्रोत्साहन मिले तो उसे आन्तरिक अभिप्रेरणा कहते है।

अधिगम में प्रेरणा को प्रमुख स्थान दर्शाते हुए एडरसन ने कहा , "अधिगम प्रेरणा पाकर सर्वोतम ढंग से आगे बढता है।" मनोवैज्ञानिक थामसन ने भी प्रेरणा का अधिगम में मुख्य स्थान पर प्रकाश डालते हुए कहा है, "प्रेरणा छात्र में रूचि उत्पन्न करने की कला है।"

प्रेरणा का अधिगम में क्या स्थान है इसे निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत किया गया है –

i. रूचि का विकास
ii. लक्ष्य प्राप्ति में सहायता
iii. व्यवहार को नियंत्रण करने में सहायता
iv. चरित्र निर्माण में सहायता
v. मानसिक विकास में सहायता
vi. ध्यान केन्द्रित करने में सहायता

उपर्युक्त कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिगम का प्रमुख आधार प्रेरणा हैं। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह सर्वप्रथम बालक को प्रेरणा दे। निम्नलिखित विधियों द्वारा कक्षा में शिक्षक बालक को अभिप्रेरित कर सकता है –

i. छात्रों को सामूहिक कार्यो में भाग लेने का अवसर देना चाहिए जिससे उन्हें मिलजुल कर कार्य करने में आनंद उत्पन्न हो।
ii. छात्रों के बीच स्वस्थ प्रतियोगिता का भाव उत्पन्न करना चाहिए परन्तु उनको इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिए कि छात्रों के बीच कटुता उत्पन्न न हो जो हानिकारक होती है।
iii. पाठ्यविषय छात्रों की क्षमता एवं मनोवृति के अनुकूल होना चाहिए।
iv. शिक्षक को प्रयास करना चाहिए कि पाठ छात्रों की रुचियों के अनुसार हो जिससे वे अपनी अभिरूचि बनाये रखें।
v. शिक्षक को चाहिए कि वह समय-समय पर छात्रों की उप्लब्दियों को पुरस्कृत करें जिससे उनका मनोबल बना रहे। इससे छात्रों में आत्मसम्मान, आत्म गौरव की भावना विकसित होती है व छात्र परिश्रम करते है।
vi. शिक्षक को दंड का प्रयोग प्राय: नहीं करना चाहिए क्योंकि दंड एक निवेधात्मक अभिप्रेरक है हालांकि आचरण में सुधार लाने के लिए दंड का प्रयोग व्यापक है। परन्तु आधुनिक

मनोवैज्ञानिक दंड का विरोध करते हैं क्योंकि दंड की स्थिति में बालक में आत्महीनता की भावना उत्पन्न होती है व उसका संवेगात्मक संतुलन बिगड़ जाता है । इससे बालक के मन में नकारात्मक संवेदना जैसे कि ईष्या, द्वेष और प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है।

vii. शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को उनके पढ़े हुए विषयों की प्रगति से भी अवगत करते रहे जिससे उन्हें प्रेरणा मिलती रहे । इसके अतिरिक्त उन्हें परिणाम से भी परिचित करना चाहिए क्योंकि प्रेरणा परिणामों के तात्कालिक ज्ञान से प्राप्त होती है।

viii. शिक्षक को चाहिए कि शिक्षा के लक्ष्य को स्पष्ट व आकर्षक बनाये जिससे छात्रों को कार्य करने में प्रेरणा मिले।

ix. कक्षा का वातावरण पाठ्यविषय के अनुकूल होना चाहिए ताकि छात्र उसमें रूचि ले और उपयुक्त वातावरण से प्रेरणा प्राप्त कर सके।

x. अन्त में शिक्षक का व्यवहार व आचरण छात्रों पर प्रभाव डालता है इसलिए शिक्षक को चाहिए कि उसका व्यक्तित्व अच्छा हो और वह छात्रों का आदर्श बना रहे।

उपर्युक्त विधियों द्वारा शिक्षार्थी को अधिगम में प्रेरणा मिलती है। इस सम्बन्ध में क्लौसिमिएर और गुडविन का कहना है , "सीखने में प्रेरणा का स्थान निःसंदेह प्रश्न रहित है।

अभ्यास प्रश्न

11. अभिप्रेरणा का अर्थ बताओ ?
12. बाह्य तथा आंतरिक अभिप्रेरणा किसे कहते है ?
13. "आप घोड़े को तालाब तक ले जा सकते हो, परन्तु उसे पानी पीने के लिए मजबूर नहीं का सकते" यह किस प्रकार की प्रेरणा को दर्शाता है ?
14. "अधिगम प्रेरणा पाकर सर्वोतम ढंग से आगे बढता है।" यह किसने कहा?
15. बालक सीखने का प्रयास नहीं करता है जब –
    a. पूर्व ज्ञान का प्रयोग नए ज्ञान के निर्माण में उपयोग करते है।
    b. उन्हें सामाजिक अंत:क्रिया करने का अवसर प्रदान होता है।
    c. वह चुनौती को स्वीकारता है।
    d. उसे नकारात्मक पुर्नबलन प्राप्त होता है।

3.6 सारांश

निर्मितवादी सिद्धांत आधुनिक परिपेक्ष में कक्षा में प्रयोग होने वाला नवीनतम दृष्टिकोण है। यह पियाजे, वाइगोत्सकी तथा ब्रूनर के सिद्धांतो पर आधारित है। इस सिद्धांत के अनुसार नये ज्ञान पूर्व ज्ञान की नींव पर निर्मित होता है। इसका मुख्य सिद्धांत यह है कि सीखना अर्थ के खोज के लिए होता है, इसलिए प्रभावी शिक्षक बनने के लिए छात्र को स्वयं अर्थ की खोज में सहायता करनी चाहिए। निर्मितवादी शिक्षण हेतु छात्रों के संज्ञानात्मक ज्ञान को समझना होगा। निर्मितवादी दृष्टिकोण के अनुसार छात्र सदैव अपने अन्तर्निहित ज्ञान को परिवर्तन कर उसे नया रूप देते हुए ज्ञान की संरचना करता है और उसे नए ज्ञान के साथ जोड़ता है। शिक्षक को चहिए की वे ढाँचा निर्माण द्वारा तथा बालक के संभावित विकास का क्षेत्र को ध्यान मे रखते हुए खुद सीखने के लिये प्रेरित करे।

3.7 शब्दावली

1. **आत्मसात्करण (assimilation)-** आत्मसात्करण द्वारा व्यक्ति अपने नए अनुभवों को पूर्व अनुभवों से जोड़ते है। इस प्रकार वे नए दृष्टीकोण विकसित करने के लिए पुर्नविचार तथा मूल्यांकन द्वारा अपनी धारणायें बदलता रहता है।
2. **समायोजन (accomodation):-** समायोजन नए अनुभवों को मानसिक संप्रत्यय (mental concepts) में परिवर्तन कर, नए और पुराने अनुभवों में संतुलन करता है।
3. **निर्मितवाद(Constructivism):-** निर्मितवाद अधिगम सिद्धांत के अनुसार ज्ञान को अस्थायी, विकासशील, आन्तरिक निर्मित तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, मध्यस्थ होना माना गया है। यह सिद्धांत मानता है कि ज्ञान का निर्माण किया जाता है न कि स्थानान्तरण। निर्मितवावादी प्रश्न पूछना, अन्वेषण, चिंतन तथा तर्क विधि को स्वीकारते है। वे स्मृति द्वारा सीखने या रटने की विधि को मान्यता नहीं देते।
4. **बाह्य अभिप्रेरणा (Extrinsic Motivation):-** बाह्य अभिप्रेरणा का तात्पर्य है, शिक्षक द्वारा छात्रों के सामने उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करना।
5. **साम्यधारण (Equalibration):-** साम्यधारण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसात्करण तथा समायोजन की प्रक्रियाओ के बीच एक संतुलन कायम करता है। इस तरह से साम्यधारण एक तरह के आत्म-नियंत्रक (self -regulatory) प्रक्रिया है।
6. **अंतदर्शन (Intuition)-** किसी विषय का संज्ञान या तात्कालिक ज्ञान को अंतदर्शन कहते है।
7. **आंतरिक अभिप्रेरणा (Intrinsic Motivation):-** आंतरिक अभिप्रेरणा का तात्पर्य है छात्रों को पाठ्यवस्तु अथवा क्रिया द्वारा स्वतः प्रोत्साहन मिलना।
8. **अभिप्रेरणा (Motivation):-** अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो किसी कार्य को करने के लिए दिशा निर्धारित करती है। यह व्यक्ति के समस्त विकास व सफलता प्राप्त करने का एक महवपूर्ण श्रोत है।

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (d) उपरोक्त सभी
2. निर्माण, स्थानान्तरण
3. मूल कौशल, प्रत्यय
4. (a) जॉन लॉक
5. (c) कन्फ़्यूशियस
6. (d) पियाजे
7. (d) उपरोक्त सभी
8. (a) अन्वेषणत्मक विधि
9. (b) अंतदर्शी चिंतन
10. (a) किसी विषय-वस्तु के तात्कालिक बोध या संज्ञान को अंतदर्शन कहा जाता है। अंतदर्शी चिंतन द्वारा बालक विशलेषणात्मक उपागमों पर बिना किसी तरह की निर्भरता दिखाय ही समस्या की संरचना, अर्थ व महत्त्व को समझता है। अक्सर यह पाया गया है कि शिक्षक छात्रों में विशलेषणात्मक चिंतन पर अधिक बल देते है। इसलिए शिक्षक को चाहिए की वे बालक की अंतदर्शी समझ पर अधिक बल दे।

    (b) बच्चा जो कर रहा है और जो करने की क्षमता रखता है के बीच के क्षेत्र को संभावित विकास का क्षेत्र कहा जाता है।

    (c) आत्मसात्करण द्वारा व्यक्ति अपने नए अनुभवों को पूर्व अनुभवों से जोड़ते है। इस प्रकार वे नए दृष्टीकोण विकसित करने के लिए पुर्नविचार तथा मूल्यांकन द्वारा अपनी धारणायें बदलता रहता है। समायोजन नए अनुभवों को मानसिक संप्रत्यय (mental concepts) में परिवर्तन कर, नए और पुराने अनुभवों में संतुलन करता है।

    (d) शिक्षक एक फैसिलिटेटर (facilitator) की तरह बालक को सहायता देता है । वह पाठ्यक्रम से सूचनायें प्रदान न करते हुए छात्रों को सुविधा प्रदान करते है और यह सुनिश्चित करता है की छात्र खुद से ज्ञान का निर्माण करे। वह निरंतर अपने छात्र से बातचीत द्वारा उन्हें दिशा देते है और जैसे-जैसे सीखने की प्रक्रिया आगे बढती है, वह उन्हें चुनौतियों के लिए तैयार करते है। इस प्रकार वे एक संरक्षक (mentor) , एक सलाहकार (consultant) व एक कोच (coach) के रूप में उन्हें प्रोत्साहित करता है। वह छात्रों को समूह में एक दूसरे से सीखने के लिए भी प्ररित करता है। छात्र एक विशेषज्ञ (expert) की भाँतिं कक्षा को संबोधित करता है। इस प्रकार शिक्षक छात्र को सक्रीय होकर ज्ञान का निर्माण में मदद करता है।
11. प्रेरणा या अभिप्रेरणा वह शक्ति है जो किसी कार्य को करने के लिए दिशा निर्धारित करती है। यह व्यक्ति के समस्त विकास व सफलता प्राप्त करने का एक महवपूर्ण श्रोत है।

12. जब विधार्थी के सामने शिक्षक उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करता है तो उसे बाह्य अभिप्रेरणा कहते है। परन्तु जब छात्रों को पाठ्यवस्तु अथवा क्रिया द्वारा स्वतः प्रोत्साहन मिले तो उसे आन्तरिक अभिप्रेरणा कहते है।
13. आंतरिक अभिप्रेरणा
14. (c) एडरसन
15. (d) उसे नकारात्मक पुर्नबलन प्राप्त होता है।

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भटनागर, ए. बी एट .एल. (2015) बाल्यावस्था एव विकास , आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
2. पाठक, आर. पी. (2011) उच्च शिक्षा मनोविज्ञान, पियर्सन, दिल्ली
3. पाठक, पी. ड़ी (2011) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, अगरा
4. राय, गीता (2011) अधिगाम्कर्ता का विकास तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
5. सिंह अ. क. (2013) शिक्षा मनोविज्ञान, भरती भवन, मुम्बई
6. सिन्हा, जे. से. शिक्षण अधिगम का मनोवैज्ञानिक आधार, श्रीकविता प्रकाशन, जयपुर
7. शर्मा, क्रिर्तिका (2009) शैक्षिक मनोविज्ञान: एक अध्ययन, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. निर्मितवाद क्या है ? निर्मितवाद कक्षा की विशेषताएँ तथा निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत द्वारा शिक्षण हेतु सुझाव दीजिए।
2. निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत के दृष्टिकोण के अनुसार आधुनिक परिपेक्ष में शिक्षक की क्या भूमिका है?
3. परम्परागत एवं निर्मितवाद कक्षा में भिन्नता बताएं। निर्मितवादी अधिगम सिद्धांत द्वारा शिक्षण हेतु सुझाव दीजिए।
4. अभिप्रेरणा का क्या अर्थ है? प्रेरणा का अधिगम में क्या स्थान है विस्तार से बताएं।
5. "प्रेरणा छात्र में रूचि उत्पन्न करने की कला है।" इस कथन को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ?

खण्ड 3

Block 3

इकाई 1- अधिगम को केवल विद्यालय तक सीमित रखने के नुकसान और अधिगम को केवल विद्यालय की जिम्मेदारी ठरहाने के दुष्प्रभाव

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अधिगम की प्रक्रिया
  1.3.1 औपरचारिक शिक्षा के केन्द्र के रुप में विद्यालय
  1.3.2 अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय की भूमिका
  1.3.3 अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय की सीमायें
  1.3.4 अधिगम की प्रक्रिया तथा विविध सामाजिक अभिकरण
  1.3.5 अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय के अतिरिक्त अन्य अभिकरणों की भूमिका
  1.3.6 अधिगम को केवल विद्यालय तक सीमित रखने के नुकसान
  1.3.7 अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने के दुष्प्रभाव
1.4 सारांश
1.5 शब्दाशवली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 निबंधात्मक प्रश्न
1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1 प्रस्तावना

इस एकांश में आप अधिगम की प्रक्रिया को समझ सकेंगे तथा अधिगम के स्रोतों एवं संसाधनों से अवगत हो सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप यह समझ सकेंगे कि अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय के अतिरिक्त अन्य सामाजिक अभिकरणों की क्या भूमिका है ? आप यह भी समझ सकेंगे कि अधिगम को केवल विद्यालय तक सीमित रखने के नुकसान क्या हैं साथ ही अधिगम को केवल विद्यालय की जिम्मेदारी ठहराने के क्या दुष्प्रभाव हैं ?

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. अधिगम की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
2. अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय एवं विविध सामाजिक अभिकरणों की भूमिका का बोध कर सकेंगे।
3. अधिगम को केवल विद्यालय तक सीमित रखने के नुकसान को समझ सकेंगे
4. अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने के दुष्प्रभावों को जान सकेंगे।

1.3 अधिगम की प्रक्रिया

"सीखने की सामाजिक प्रक्रिया मूल्यवान है और उसके साथ समन्वित होकर औपचारिक पाठ्यचर्या में और अधिक समृद्धि आएगी " प्राक्कथन , राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005

अधिगम का सामान्य अर्थ है " सीखना"। मनुष्य स्वाभाविक रूप से जिज्ञासु प्रवृत्ति का होता है तथा वह अपनी इस प्रवृत्ति एवं आवश्यकता के कारण नित नये अनुभवों को ग्रहण करके अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता रहता है। इस प्रकार अधिगम मानवीय व्यवहार का वह महत्वपूर्ण पक्ष है जो व्यवहार-परिवर्तन या व्यवहार-परिमार्जन के रूप में परिलक्षित होता है। व्यक्ति अपने भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के साथ सतत अन्तर्क्रिया करता रहता है जिससे प्राप्त अनुभव के आधार पर व्यवहार में बदलाव लाता है जो कि अपेक्षाकृत स्थायी होता है तथा भविष्य की परिस्थितियों का सामना करने में सहायक होता है, अधिगम के रुप में अभिहित किया जाता है। अधिगम अपने आप में एक क्रिया एवं क्रिया का उत्पाद या परिणाम , दोनों ही है। अधिगम की प्रक्रिया दो रुपों में पायी जाती है-एक-अनौपचारिक अधिगम प्रक्रिया, जिसके लिये किसी विशेष नियोजन एवं आयोजन की आवश्यकता नहीं होती अपितु वह कभी समाप्त न होने वाली घटना है जो जीवनपर्यन्त चलती रहती है। इस रुप में अधिगम सहज एवं स्वतः स्फूर्त स्वाभाविक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्म से शुरू होकर मृत्यु तक चलती रहती है तथा व्यक्ति समाज के सदस्य के रुप में समाज के साथ अन्तर्क्रिया करते हुये उसमें प्रतिभाग करता है। दूसरे औपचारिक अधिगम प्रक्रिया, जो सुनियोजित एवं संगठित रुप में शिक्षा संस्थाओं में नियोजित एवं आयोजित की जाती है। जब हम इस रूप में अधिगम की बात करते है तो प्रायः हमारा ध्यान विद्यालय में होने वाली गतिविधियों की ओर जाता है और अधिगम को शिक्षा, विशेष रुप से औपचारिक शिक्षा का उत्पाद मानकर व्यवहार किया जाता है।

अधिगम के लिए शिक्षा की औपचारिक संस्था के रुप में विद्यालय की स्थापना अधिगम को सुनियोजित एवं संगठित रुप से आयोजित करने के उद्देश्य से ही किया गया जहां एक निश्चित समयावधि में निर्धारित योजना के अनुरुप दक्षता प्राप्त व्यक्ति या व्यक्ति समूहों के द्वारा अधिगम के लिए सृजित उचित वातावरण में अधिगम के घटित होने का उपक्रम किया जाता है।

इस प्रकार आप पायेंगे कि विद्यालय का जन्म समाज के द्वारा समाज की आवश्यकताओं ,आकांक्षाओं, मूल्यों विश्वासों के अनुरुप अधिगम के लिए उचित वातावरण का निर्माण कर उसे औपचारिक रुप से संचालित करने वाली संस्था के रुप में हुआ। धीरे-धीरे अधिगम को औपचारिक शिक्षा से जोड़कर देखा जाने लगा तथा उसको पूरी तरह से विद्यालय की जिम्मेदारी ठहरा दिया गया। यह माना गया कि विद्यालय बालकों के सर्वांगीर्ण विकास एवं अधिगम के लिए विशिष्ट वातावरण तैयार करने वाली संस्था है जिसका एकमात्र उद्देश्य ही यही है तथा ऐसा वातावरण तैयार कर पाना परिवार, समाज, राज्य, धर्म या किसी अन्य सामाजिक अभिकरण के लिए सम्भव नहीं है क्योंकि यह इन संस्थाओं का प्राथमिक कार्य ही नहीं है। शिक्षा के इन अनौपचारिक अभिकरणों की अधिगम में किसी महत्वपूर्ण भूमिका को न मानते हुए अधिगम को विद्यालय की चहारदीवारी में कैद कर दिया गया है। इस बात को और अधिक बल विज्ञान और तकनीकी के बढ़ते प्रभाव से मिला जब यह मान लिया गया कि आज छोटे-छोटे कार्य को करने के लिए विशिष्ट ज्ञान, प्रशिक्षण एवं दक्षता प्राप्त व्यक्तियों की आवश्यकता है जो उसके लिए दक्ष अभिकरण द्वारा ही सम्भव है तो अधिगम कैसे उससे अलग हो सकता है। इस प्रकार अधिगम को विद्यालय की परिधि तक सीमित रखकर उसे दक्षता प्राप्त व्यक्तियों की जिम्मेदारी मानते हुए अधिगम का संस्थानीकरण कर दिया गया जिसकी परिणति यह है कि अधिगम को केवल विद्यालय रुपी संस्था की जिम्मेदारी ठहरा दिया गया है।

किन्तु अधिगम का एक बहुत बड़ा हिस्सा वह होता है जिसके लिए हमेशा किसी विशेष सचेतन, सोद्देश्य एवं सुनियोजित प्रयास की आवश्यकता नहीं होती अपितु व्यक्ति अनुकरण एवं आचरण द्वारा ग्रहण कर लेता है। अनुकरण , आचरण और प्रभाव या छाप को अधिगम का साधन मानकर एक लम्बे समय तक शिक्षा का आयोजन होता रहा किन्तु बाद में शिक्षा के संस्थानीकरण के साथ विद्यालय एवं विशेष रुप से शिक्षक केन्द्रित शिक्षा द्वारा बालकों के व्यवहार परिवर्तन का प्रयास होता रहा तथा बालक एक निष्क्रिय ग्राही के रुप में स्वीकर किया जाता रहा जिसमे विद्यालय, पाठ्यवस्तु, तथा शिक्षक को प्राथमिक स्थान मिला । धीरे-धीरे मनोविज्ञान में प्रयोगों का दौर शुरू हुआ तथा अधिगमकर्ता केन्द्रित शिक्षा की अवधारणा के साथ अधिगम को उद्दीपक-अनुक्रिया सम्बन्धों के रुप में देखा जाने लगा जहां माना जाने लगा कि अधिगम तब तक नहीं हो सकता जब तक कि वह आवश्यकता द्वारा प्रणोदित व अभिप्रेरित न हों या किसी उद्दीपक द्वारा अनुप्रेरित न हों। समीपता, बारम्बारता, अभ्यास, संयोजन या बन्ध प्रयास एवं त्रुटि, उद्दीपक-अनुक्रिया का क्रम आदि अनेकों विविध प्रयोगों के आधार पर अधिगम को समझने का प्रयास होता रहा। इसी क्रम में संज्ञानात्मक विचारधारा का भी प्रभाव दिखाई देने लगा जब संवेदन से प्रत्यक्षीकरण की ओर बढ़कर अधिगम को समझने का प्रयास होने लगा। प्रत्यक्षीकरण को समग्राकृति के रुप में अधिगम की प्रक्रिया के निर्वचन के प्रयास में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान तथा बाद में क्षेत्र मनोविज्ञान स्थलाकृति (टोपोलॉजिकल) मनोविज्ञान का प्रभाव पड़ा तथा अधिगम की प्रक्रिया एवं उसको प्रभावित करने वाले कारणों की नयी व्याख्या प्रचलित हुयी। इस प्रकार अनुभवों के अर्जन के स्वरुप तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों के आधार पर अधिगम के विभिन्न उपागमों एवं सिद्धान्तों का जन्म हुआ जिससे अधिगम की प्रक्रिया को समझने में मदद मिलती है। अधिगम को चाहें व्यवहारवादी उपागम की

दृष्टि से देखें या संज्ञानात्मकतावादियों की दृष्टि से अधिगम की सम्पूर्ण प्रक्रिया में वातावरण का विशेष महत्व है जिसके सृजन का दायित्व विद्यालय द्वारा अकेले वहन कर पाना सम्भव ही नहीं है। चाहे वह अधिगम के लिए आवश्यकता का सृजन करना हो या प्रणोदन एवं अभिप्रेरणा को सही दिशा देकर अधिगमकर्ता को अधिगम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना या अधिगमकर्ता की आधारभूत शक्तियों को समझकर उसका अधिकतम उपयोग अधिगम के लिए करने में सहायता देना या फिर अधिगम के मार्ग की बाधाओं को समझना एवं उन्हें दूर कर अधिगम के लिए सहूलियत देना, अधिगम के हर सोपान में विद्यालय के अतिरिक्त समाज की अन्य संस्थाओं जैसे-परिवार, समाज, राज्य, धर्म, राजनीतिक संस्थाओं, सामाजिक संस्थाओं वं सास्कृतिक संस्थाओं, व्यावसायिक माध्यमों जैसे- रेडियो, दूरदर्शन, इण्टेरनेट, सिनेमा, पत्र-पत्रिकाओं आदि जो शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण हैं, की महत्वपूर्ण भूमिका है। ये सभी विद्यालयेतर अभिकरण अधिगम के लिए उचित वातावरण का सृजन कर अधिगम के अवसर उपलब्ध कराने में सहायक होते है। इस प्रकार अधिगम की प्रक्रिया को केवल विद्यालय तक सीमित रखना अधिगम के अवसर को सीमित कर देने के समान होगा।

1.3.1 औपरचारिक शिक्षा केन्द्र के रुप में विद्यालय

औपरचारिक शिक्षा के केन्द्र के रुप में विद्यालय अधिगम के मुख्य केन्द्र है जो एक लघु समाज का निर्माण कर अधिगम का वातावरण तैयार करते है। इस लघु समाज में शिक्षक-छात्र, छात्र-छात्र तथा शिक्षक-शिक्षक के मध्य अन्तर्क्रिया मुख्य भूमिका निभाती है। औपचारिक शिक्षा के केंद्र के रूप में विद्यालय का सबसे मत्वपूर्ण कार्य है बालक की मानसिक शक्तियों का विकास जिससे वह स्वतंत्र, तार्किक एवं स्पष्ट चिंतन की शक्तियों का विकास कर सके तथा प्रगतिशील एवं लचीले मस्तिष्क का निर्माण कर सके । साथ ही विद्यालयों के ऊपर मानवीय अनुभवों का पुनर्गठन एवं पुनर्रचना करने की प्रयोगशाला के रूप में भी कार्य करने का गुरुतर दायित्व है। विद्यालयों से जहाँ एक ओर अपेक्षा रहती है की वे मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के विकास में मदद दें वहीं उनसे अपेक्षा रहती है की वे चारित्रिक विकास में भी सहायक हों तथा संस्कृतियों के संरक्षण, संवर्धन एवं हस्तांतरण के द्वारा समाज में सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करें । विद्यालयों से यह भी अपेक्षा रहती है की व्यावसायिक , औद्योगिक एवम तकनीकी शिक्षा के प्रसार द्वारा समाज के आर्थिक उन्नयन के भी साधन बनें। इन औपचारिक कार्यों के अतिरिक्त विद्यालय समाजिकता का विकास, सावेंगिक विकास, नागरिकता का प्रशिक्षण जैसे अनौपचारिक कार्य भी करते हैं।

1.3.2 अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय की भूमिका

जैसा कि आपको स्पष्ट हो गया होगा कि अधिगम को सचेतन एवं सोद्देश्य प्रयास के रूप में व्यवस्थित रूप से पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों एवं प्रक्रियों के अनुरूप संचालित करने वाले अभिकरण के रूप में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

आइये देखें अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय इस भूमिका का किस प्रकार निर्वहन करता है। यदि आप विद्यालय की गतिविधियों का सूक्ष्म अवलोकन करें तो आप पाएंगे की विद्यालय निम्नवत कार्यों के संपादन के माध्यम से अधिगम कि प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं

i. अधिगम के लिए उचित वातावरण का निर्माण जिसमें बालक अपनी अन्तर्निहित शक्तियों के विकास का अवसर प्राप्त कर सकें।
ii. अधिगम की आवश्यकता को जागृत करना एवं प्रणोदन को सही दिशा की ओर अग्रसर होने में सहायता देना।
iii. अधिगम के मार्ग की बाधाओं को दूर करने में सहायता।
iv. अधिगम के लिए अनुकूल दिनचर्या का अनुपालन।
v. अधिगम के लिए अनुकूल सामाजिक वातावरण का निर्माण।
vi. अधिगम लक्ष्य की सम्प्राप्ति हेतु उद्देश्यों का निर्धारण एवं उनके अनुरुप पाठ्यचर्चा एवं शिक्षण प्रविधि का आयोजन।
vii. उद्देश्यों की सम्प्राप्ति का सतत मूल्यांकन एवं प्रतिपुष्टि।
viii. विद्यालय को समाज के प्रतिबिम्ब के रूप में स्थापित कर एक लघु समाज का निर्माण जिसमे अधिगमकर्ता का सर्वांगीण विकास कर उसे भावी समाज के लिए तैयार किया जा सके।

1.3.3 अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय की सीमायें

विद्यालय जहाँ अधिगम के लिए सहायक वातावरण के निर्माण का दायित्व वहन करते हैं तथा एक निश्चित योजना के अनुरूप एक निश्चित पाठ्यक्रम एवं पद्धति के द्वारा निश्चित उद्देश्यों की सम्प्राप्ति का प्रयास करते है वहीं इस सारे प्रयासों में सहजता का लोप होता जाता है तथा अधिगम के लिए कृत्रिम वातावरण का सृजन हो जाता है जिसका दुष्प्रभाव यह होता है कि बालक नये अनुभवों को आत्मसात करने के बजाय त्वरित एवं अस्थायी रूप से ही ग्रहण कर पाता है। यही कारण है कि विद्यालय छात्रों को सूचनाओं के भंडार से परिचित तो करा देता है किन्तु अधिगम को व्यवहार परिमार्जन के रूप में स्थापित नहीं कर पाता। दूसरी बात यह है कि विद्यालय समाज के प्रतिबिम्ब के रूप में लघु समाज का निर्माण तो करता है किन्तु इस लघु समाज की अपनी अलग विशेषता होती है । इस लघु समाज का वातावरण वयस्क समाज से पूर्णतया भिन्न होता है एवं अनेकों प्रयासों के बावजूद इस विद्यालय रूपी लघु समाज के द्वारा जटिल समाज के अनुभवों एवं सिद्धान्तों को हस्तांतरित कर पाना दुरूह होता है । तीसरे , विद्यालय बालकों पर नियंत्रण करके कठोर संरचनागत ढांचा खड़ा कर देते हैं जो उनकी कल्पनाशीलता एवं सृजनात्मकता को अवरुद्ध कर देते हैं।

इस प्रकार आप पायेंगे कि विद्यालय का पूर्णतया नियंत्रित वातावरण अधिगम के मार्ग में अनेकों बाधाएं खड़ी कर देता है । भय ,अनुशासन व तनाव पर आधारित विद्यालयी वातावरण अधिगम के लिए कभी भी सकारात्मक वातावरण का सृजन नहीं कर सकता । उसकी कृत्रिमता एवं व्यवस्थागत जटिलता अधिगम

के लिए सहज वातावरण का निर्माण करने में असमर्थ रहती है। यही कारण है कि अधिगम को केवल विद्यालय तक सीमित कर देना अधिगम के लिए एकांगी साधन उपलब्ध कराने के समान होगा।

1.3.4 अधिगम की प्रक्रिया तथा विविध सामाजिक अभिकरण

अधिगम की सहायक प्रक्रिया के अनुरूप विद्यालय के सामाजिक वातावरण के निर्माण में अनेकों कारकों का योगदान होता है जिसमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से समाज के विविध अभिकरणों की भूमिका होती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 सामाजिक अभिकरणों की भूमिका पर जोर देते हुए कहती है " उर्वर और ऊर्जादायी शिक्षा की जड़ें हमेशा ही बच्चे की भौतिक और सांस्कृतिक जमीन में गहरे पैठी होती है और उन्हें माता, पिता, शिक्षकों, सहपाठियों और समुदायों के साथ पारस्परिक क्रियाओं से पोषण मिलता है" ।

आइये देखें वह कौन-कौन से कारक एवं अभिकरण है जो विद्यालयी परिवेश को अधिगम के लिए तैयार करते हैं – आइये चलते हैं उस पृष्टिभूमि में जहाँ से इसकी शुरुवात होती हैं।

विद्यालय आने से पूर्व विद्यार्थी कोरी-स्लेट के समान नहीं होता अपितु वह कुछ प्राकृतिक शक्तियों, योगयताओं एवं आदतों (व्यवहारों) के साथ विद्यालय में प्रवेश करता है। उसकी बुद्धि, रुचि, व्यक्तित्व, स्वास्थय आदि अनेकों कारक उसके अधिगम को प्रभावित करते है जिनके विकास का दायित्व विद्यालय तथा समाज के अन्य अभिकरणों का है। विद्यालय में विविध सामाजिक एवं सास्कृतिक पृष्ठभूमि से विद्यार्थी आते है। भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, वर्ग, क्षेत्र, भाषा के विद्यार्थी विद्यालय में एक लघु समाज का निर्माण करते है। इस लघु समाज के अपने नियम-कानून कायदे होते है जिनका लक्ष्य अधिगम के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करना तथा भावी वृहद समाज में जीनवन जीने के लिये तैयार करना होता है। विविध प्रकार के ज्ञान एवं कौशलों के साथ-साथ जहां बालक संकल्पो की अंतसथतः आत्मबोध, समूह बोध तथा सामाजिक समायोजन सहअस्तित्व के साथ सीखता है। इस प्रकार इस विद्यालय रुपी लघु समाज के सदस्य के रुप में विद्यार्थी को एक नये समाज का अनुभव प्राप्त होता है जहाँ वह अपने अनुभवों का विस्तार करता है, ज्ञान एवं कौशल का अर्जन करता है जिससे कि वह भविष्य में वृहद समाज में कुशलता पूर्वक अपना जीवनयापन कर सके तथा समाज में योगदान दे सकें। हर बालक के लिए विद्यालय रुपी इस लघु समाज का अनुभव भी भिन्न-भिन्न होता है। विद्यालय के भौतिक संसाधन, मानवीय संसाधन, सामाजिक संगठन, विद्यालय में अधिगम का परिवेश तैयार करते है। विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षकों की बुद्धि, रुचि, क्षमता, अभिवृत्ति ज्ञान, कौशल, मूल्य का भी विद्यालय में अधिगम का वातावरण तैयार करने में प्रमुख भूमिका होती है।

किन्तु विद्यालयी वातावरण केवल शिक्षक-विद्यार्थी, विद्यार्थी-विद्यार्थी तथा शिक्षक-शिक्षक के मध्य अन्तर्क्रिया पर ही निर्भर नहीं होता। एक लम्बा समय विद्यार्थी विद्यालय के बाहर व्यतीत करता है जिसमें परिवार, समुदाय, समाज, संचार के विविध साधनों, पत्र-पत्रिका, रेडियो, दूरदर्शन, इण्टरनेट आदि का उस पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। विद्यालय सीमित रुप में ही समाज का प्रतिनिधित्व करते है तथा वृहद समाज

का बालक पर प्रभाव पड़ता है जो विद्यालय रुपी लघु समाज से कहीं अधिक व्यापक होता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

1.3.5 अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय के अतिरिक्त अन्य अभिकरणों की भूमिका

i. **परिवार-** अधिगम की प्रक्रिया में परिवार की सबसे बड़ी भूमिका होती है जहां बालक विद्यालय से भी अधिक समय व्यतीत करता है तथा जिसका बालक के जन्म से ही लगातार प्रभाव पड़ता रहता है। परिवार की संस्कृति, विचार, विश्वास, सामाजिक-आर्थिक स्तर आदि विविध तत्वों का बालक पर प्रभाव पड़ता है। बालक परिवार में रह कर अनुकरण एवं अनुशीलन द्वारा परिवार के विचारों, विश्वासों , रीतिरिवाजों , धर्म , संस्कारों आदि को सहज ही आत्मसात कर लेता है। परिवार के साथ-साथ समुदाय का भी अधिगम की प्रक्रिया में विशेष महत्व है।

ii. **समुदाय -**प्रत्येक समुदाय अपनी संस्कृति, मूल्यों, विश्वासों एवं परम्पराओं का वाहक होता है तथा बालक पर विशेष प्रभाव डालता है जो उसके अधिगम को प्रभावित करता है। समुदाय में बालक विभिन्न प्रकार के अनुभव तथा सामाजिक प्रतिमानों को ग्रहण करता है तथा उनसे प्रभावित होता है और नित नये अनुभव प्राप्त करता रहता है। समुदाय न केवल शारीरिक एवं मानसिक विकास के अवसर उपलब्ध कराता है अपितु नैतिक एवं चारित्रिक विकास में भी सहायता करता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा इसके महत्व को रेखांकित करते हुए कहती है " बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक सन्दर्भ होता है जिसमे ज्ञान अपना महत्व अर्जित करता है परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है" इस प्रकार आप देख सकते है कि हर समुदाय की अपनी अलग अलग आवश्यकताएं होती हैं जिसके अनुरूप शिक्षा व्यवस्था का नियमन किया जाता है साथ ही हर समुदाय अपने आदर्शों, रीतिरिवाजों , परम्पराओं को संरक्षित एवं संवर्धित करने के लिए समुदाय के सदस्यों को शिक्षित करता है समुदाय अधिगम को घटित होने के अवसर एवं संसाधन उपलब्ध करता है

iii. **धर्म -** धर्म और शिक्षा का लंबे समय से गहरा अन्तर्सम्बन्ध रहा है। दोनों ही का प्रमुख उद्देश्य रहा है मानव का मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास । यदि हम अतीत की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि महान धार्मिक विद्वान् ही आचार्य के रूप में शिक्षण कार्य में रत थे जो लोगो को जीवन बोध कराते थे तथा मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास कर व्यक्ति के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करते थे । धर्म अपनी इस शक्ति का आज भी उपयोग करके सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों के विकास में योगदान देता है जो विद्यालयी शिक्षा से कहीं अधिक प्रभावी है।

iv. **राजनैतिक संस्थाएं-** प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति , सभ्यता , संसाधन एवं आवश्यकता के अनुरूप ही सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाओं की स्थापना करता है जिसके अनुरूप ही शिक्षा व्यवस्था का नियमन होता है अतः राजनैतिक संस्थाएं मानवीय अधिगम का महत्वपूर्ण

स्रोत एवं संसाधन होती है। राजनैतिक संस्थाएं ही शिक्षा के उद्देश्य एवं स्वरुप का निर्धारण करती हैं। शैक्षिक अवसरों की उलब्धतता, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति आदि के निर्धारण में भी इन संस्थाओं का योगदान रहता है।

v. **जनसंचार के साधन -** वर्तमान युग में अधिगम की प्रक्रिया में जनसंचार के साधनों की बड़ी ही सक्रिय भूमिका है। सूचना संचार तकनीकी नें जीवन के क्षेत्र के ज्ञान की सम्प्राप्ति को सरल, सहज एवं सुलभ बना दिया है। यहां तक कि विद्यालय भी जनसंचार के साधनों का उपयोग अधिगम को सुगम बनाने के लिए करने लगे है।

निःसंदेह शिक्षा के अन्य अभिकरणों की अधिगम की प्रक्रिया में महती भूमिका होती है किन्तु इन अभिकरणों को विद्यालय का स्थानापन्न नहीं माना जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम से तात्पर्य है :
    a. व्यवहार परिवर्तन
    b. लिखने की योग्यता का विकास
    c. बोलने की योग्यता का विकास
    d. पढ़ने की योग्यता का विकास
2. विद्यालय का सबसे मत्वपूर्ण कार्य है:
    a. मानसिक शक्तियों का विकास
    b. चारित्रिक विकास
    c. संस्कृतियों के संरक्षण, संवर्धन एवं हस्तांतरण
    d. उपर्युक्त सभी

1.3.6 अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने के नुकसान

अधिगम को विद्यालय की परिधि तक सीमित कर देने के कई नुकसान हैं। सबसे बड़ा नुकसान तो यह है कि अधिगम केवल कृत्रिम वातावरण पर ही निर्भर रह जायेगा जो धीरे धीरे संस्थानीकरण की प्रवृत्ति का ही पोषण करेगा जिसकी परिणति अधिगम के लिए सहज तथा स्वाभाविक साधनों की उपेक्षा के रूप में होगी। अधिगम के अनौपचारिक साधनों का अधिगमकर्ता के मन एवं मस्तिष्क पर अधिक गहरा एवं व्यापक प्रभाव पड़ता है अपनी स्वेक्षा से एवं जीवन के साथ जुड़े होने के कारण अधिगम के अनौपचारिक साधन कहीं अधिक प्रभावी एवं शक्तिशाली होते हैं इनका प्रभाव तात्कालिक नहीं अपितु दीर्घकालिक होता है अधिगम को विद्यालय तक सीमित करके हम अधिगम इन शक्तिशाली साधनों के उपयोग से वंचित हो जायेंगे।अधिगम को विद्यालय तक सीमित कर देने पर व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास

अवरुद्ध हो जायेगा क्योंकि समाज के सभी प्रकार के अनुभवों ज्ञान एक मात्र संस्था के द्वारा दे पाना दुष्कर कार्य है। समाज के अन्य अभिकरण समाज की विशाल सांस्कृतिक संपत्ति के वाहक होते हैं।अधिगम को विद्यालय तक सीमित कर देने पर अधिगमकर्ता इस विशाल ज्ञान राशि के उपयोग से वंचित हो जायेगा। अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने का नुकसान यह होगा कि समुदाय अपने मूल्यों, विश्वासों , रीति रिवाजों, परम्पराओं को बालको में अंतरित नहीं कर सकेगा । विद्यालय के कृत्रिम सामाजिक वातावरण में विकसित तथा पोषित विचारों , मूल्यों एवं आदर्शों में यह सामर्थ्य नहीं होगी कि वे बालकों के आचरण को उनके समुदाय के मूल्यों के अनुरूप विकसित कर सकें।

1.3.7 अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने के दुष्प्रभाव

इस प्रकार आप पाएंगे कि अधिगम को विद्यालय तक सीमित कर देने के दूरगामी दुष्प्रभाव होंगे। अधिगम को केवल कक्षीय वातावरण का विषय मानकर विद्यालय की चहारदीवारी तक सीमित रखना अधिगम के अवसरों को सीमित करने के समान है। विद्यालय के भीतर तथा बाहर दोनों ही जगहों पर सीखने की प्रक्रिया चलती है। इन दोनों जगहों में यदि सम्बन्ध रहे तो सीखने की प्रक्रिया पुष्ट होती है। अतः अधिगम को विद्यालय तक सीमित नहीं रहने देना चाहिए अपितु इसे वृहद सामाजिक सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने को सबसे प्रमुख बड़ा दुष्प्रभाव यह होगा कि शिक्षा के अनौपचारिक साधनों जैसे – परिवार, समुदाय, समाज, रेडियो, दूरदर्शन, इण्टरनेट, सिनेमा, पत्र-पत्रिका आदि जो अधिगम के महत्वपूर्ण स्रोत है और जिनका उपयोग करके अधिगम को सुगम बनाया जा सकता है, से अधिगमकर्ता को अलग करके ज्ञान को स्कूल के बाहर के जीवन से जोड़ना मुश्किल हो जायेगा। शिक्षा के ये अनौपचारिक साधन जिन्हें हम अधिगम के विद्यालयेतर अभकरण के रूप में अभिहित करते हैं , ज्ञान को जीवन्त तरीके से जोड़कर अधिगम को सुगम बनाते है। इनके महत्व पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 कहती है "समाज में मिलने वाली अनौपचारिक शिक्षा, विद्यर्थी में अपना ज्ञान स्वयं सृजित करने की स्वाभाविक क्षमता को विकसित करती है जिससे विद्यार्थी में अपने आस-पास के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से और विभिन्न कार्यों से जुड़ने की क्षमता बढ़ती है"।

विद्यालय तक सीमितत कर देने से अधिगम एक नीरस, कठोर एवं अलग-अलग गतिविधि बनकर रह जायेगा जो रचनात्मक चिंतन तथा अन्तर्दृष्टि का विकास करने में अक्षम हो जायेगा। अधिगम की मानवीय सामर्थ्य का समुचित विकास समग्रता में ही सम्भव है न कि एकाकीपन में। विद्यालय लघु समाज के रुप में समाज के प्रतिबिम्ब हो सकते है किन्तु समग्र समाज नहीं। यथार्थ- समाज मे ही व्यक्ति जीवन का अर्थ समझ कर अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का बोध कर सकता है तथा उसके अनुरुप अपनी योग्यताओं का विकास कर अधिगम लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। बालक की प्रथम पाठशाला कहा जाने वाला परिवार तथा वह समाज जहाँ वह जीवन के मूल्यों को ग्रहण करता है, विद्यालयेतर अधिगम का बहुत बड़ा स्रोत है। विद्यालय तक अधिगम को सीमित करके जीवन मूल्यों का विकास कर पाना दुष्कर कार्य होगा। परिवार, समुदाय, एवं समाज में ही रहकर बालक सामाजिकता के गुण सीखता है तथा अपनी अभिव्यक्ति

का समुचित स्थान प्राप्त करता है। अधिगम को विद्यालय तक सीमित कर देने पर उनकी अपने अनुभवों के आधार पर ज्ञान के संश्लेषण एवं एवं विश्लेषण द्वारा नये ज्ञान के सृजन की सामर्थ्य सीमित हो जायेगा जो स्कूली जानकारी को प्रतिदिन के अनुभव से अलग कर एकांकी अधिगम की ओर ले जायेगी। अतः विद्यालय की सीमाओं को समाज के प्रति अधिक उदार होने की जरुरत है। सामाजिक सांस्कृतिक संसार के अनुभव पुस्तकीय एवं विद्यालयी अनुभवों से कहीं अधिक समृद्ध होते है।

इस प्रकार आप स्वयं देख सकते हैं कि अधिगम को विद्यालय तक सीमित रखने के निम्नवत दुष्प्रभाव होंगे:

i. अधिगम के संस्थानीकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन
ii. अधिगम के सहज एवं स्वाभाविक साधनों की उपेक्षा
iii. अधिगम की प्रक्रिया में वैयक्तिक भिन्नता कि उपेक्षा
iv. अधिगम के लिए अमनोवैज्ञानिक वातावरण का सृजन
v. पुस्तकीय एवं शिक्षक केंद्रित शिक्षा पर बल
vi. दोषपूर्ण एवं एकांगी अधिगम प्रक्रिया पर बल

इस प्रकार अधिगम को विद्यालय तक सीमित कर देने के दूरगामी दुष्प्रभाव परिलक्षित होंगे जो अधिगम के साधनों को सीमित करने से लेकर अमनोवैज्ञानिक वातावरण के सृजन , ज्ञान एवं अनुभव के मध्य अंतर, अधिगमकर्ता के सामाजिक सन्दर्भों की उपेक्षा , विद्यालय एवं समाज के मध्य अंतराल आदि के रूप में हमारे समक्ष एक गंभीर चुनौती बन कर उभरेंगे, अतः यह आवश्यक है कि अधिगम को विद्यालयी परिवेश की सीमाओं से बाहर निकाल कर अधिगम के क्षेत्र एवं साधनों को और विस्तृत किया जाय अन्यथा विद्रूपित अधिगम व्यवस्था का सृजन होगा जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को अवरुद्ध कर देगी।

अभ्यास प्रश्न

3. शिक्षा के अनौपचारिक साधन हैं
   a. परिवार
   b. समुदाय
   c. धर्म
   d. उपर्युक्त सभी
4. बालक की प्रथम पाठशाला कहा जाता है :
   a. परिवार
   b. समुदाय
   c. धर्म
   d. उपर्युक्त सभी

1.4 सारांश

अधिगम को व्यवहार परिवर्तन एवं परिमार्जन की प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक सतत रूप से अपने परिवेश के साथ अन्तर्क्रिया करता रहता है जिसके परिणामस्वरूप नित नए अनिभव प्राप्त कर अपने व्यवहार में बदलाव लता है जिसे अधिगम के रूप में अभिहित किया जाता है। अधिगम की यह प्रक्रिया दो रूपों में पायी जाती है - एक अनौपचारिक , जिसके लिए किसी विशेष नियोजन एवं आयोजन की आवश्यकता नहीं होती है अपितु वह जीवन के विविध अनुभवों को ग्रहण करने की प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है जिसमे व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में अन्तर्क्रिया करते हुए प्रतिभाग करता है। दूसरे - औपचारिक प्रक्रिया जो सुनियोजित एवं संगठित रूप से शिक्षण संस्थाओं में नियोजित एवं आयोजित की जाती है। शिक्षा की औपचारिक संस्था के रूप में विद्यालय की स्थापना अधिगम को निश्चित समयावधि में सुनियोजित उद्देश्य एवं निर्धारित योजना के अनुरूप दक्षता प्राप्त व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों के द्वारा सृजित वातावरण में घटित होने वाले उपक्रम के रूप में किया गया है। इस संस्था का उपयोग कर समाज अपने कौशलों, मूल्यों , विश्वासों एवं विचारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तांरित करता है। इस रूप में अधिगम की प्रक्रिया को विद्यालय रूपी संस्था के दायरे में कैद कर उसे विद्यालय की जिम्मेवारी मानकर एक लम्बे समय तक शिक्षक एवं पाठ्यवस्तु केंद्रित अधिगम व्यवस्था का पोषण होता रहा। किंतु अधिगम का एक बड़ा हिस्सा वह होता है जिसके लिए हमेशा किसी विशेष प्रयास की जरुरत नहीं होती अपितु व्यक्ति समाज के अन्य अभिकरणों के साथ सहभागिता के द्वारा ग्रहण कर लेता है । इस रूप में विद्यालयेतर अभिकरणों का अधिगम की प्रक्रिया में बड़ा महत्व होता है।धीरे धीरे मनोविज्ञान में प्रयोगों का दौर शुरू हुआ तथा अधिगमकर्ता केंद्रित शिक्षा की ओर उन्मुखीकरण हुआ । अधिगम के व्यवहारवादी उपागम से लेकर संज्ञानात्मक उपागम तह अधिगम की प्रक्रिया में वातावरण को बड़ा महत्व दिया गया। इस वातावरण के सृजन में विद्यालय की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है किन्तु उसकी अपनी कुछ सीमायें भी हैं।विद्यालय के द्वारा सृजित वातावरण नियंत्रित एवं नियोजित होने के कारण कठोर, कृत्रिम एवं असहज होता है जबकि अधिगम की प्रक्रिया में विद्यालय के अतिरिक्त अन्य सामाजिक अभिकरण जैसे परिवार, समुदाय , धर्म ,राजनैतिक संथाएं एवं जनसंचार माध्यम आदि महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं तथा अधिगम की प्रक्रिया को अधिक सरस , सहज, सुलभ, सुगम एवं जीवंत बनाते हैं। अधिगम को विद्यालय की सीमा में सीमित कर देने का नुकसान यह होगा कि अधिगम प्रक्रिया विद्यालय में सृजित कृत्रिम वातावरण पर निर्भर रह जाएगी तथा अधिगम के संस्थानीकरण की प्रवृत्ति का पोषण होगा एवं समाज के सहज एवं सवाभिक साधनों का उपयोग नहीं हो सकेगा। इनका दूरगामी दुष्परिणाम यह होगा कि अधिगम एकांगी होगा और व्यक्ति का सर्वांगीण विकास अवरुद्ध हो जायेगा।समाज के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध के अभाव में समाजिक गुणों के विकास का अवसर कम मिलेगा तथा बालकों का सामाजिक सन्दर्भ उपेक्षित हो जायेगा जिससे शिक्षा अपनी जड़ों से दूर हो जाएगी तथा अधिगम के अवसर सीमित हो जायेंगे।

1.5 शब्दावली

1. **अधिगम -** किसी बात को सीखने या जानने कि प्रक्रिया एवं सीखे हुए के अनुसार व्यवहार में बदलाव।
2. **धर्म -** ईश्वर, देवताओं में विश्वास एवं सम्बंधित दार्शनिक विचारधारा।
3. **समुदाय -** एक समूह के रूप में संगठित स्थान-विशेष के समस्त निवासी।
4. **समाज-** किसी देश या क्षेत्र के लोग जिन्हें एक समूह माना जाए और जिनकी प्रथाएं एवं कानून साझे हों।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. a
2. d
3. d
4. a

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चंद्रा, एस० एस० एवं शर्मा आर ० के ० (2012), सोशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन , दिल्ली , अटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
2. डयूवी, जॉन (2007). द स्कूल एंड सोसाइटी, आकार बुक्स।
3. तनेजा , वी ० आर ० (2005) , सोसिओ-फिलोसोफिकल अप्प्रोच टू एजुकेशन , दिल्ली , अटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
4. मार्शल , गॉर्डोन (सम्प०) (1994) . द कंसाइज ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी ऑफ़ सोशियोलॉजी , ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ।
5. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा (2005) दिल्ली , एन० सी ० ई ० आर० टी ०।
6. वर्मा , आचार्य रामचंद्र (2012) . लोकभारती वृहत प्रमाणिक हिंदी कोष , इलाहबाद ,लोकभारती प्रकाशन।
7. शर्मा योगेंद्र के ० (2012).फाउंडेशन इन सोशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन , कनिष्का पब्लिकेशन्स।
8. शाह बी ० वी ० एवं शाह के ० बी ० (2014) . सोशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन , रावत पब्लिकेशन्स।
9. शुक्ला , ऍस० एवं कुमार कृष्ण (संपा०) (1985) . सोशियोलॉजिकल पर्सपेक्टिव इन एजुकेशन , दिल्ली , चाणक्य प्रकाशन ।

10. सक्सेना , एन ० आर ० स्वरुप (2008) . शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशात्रीय सिद्धांत, आर लाल बुक डिपो।

1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगम के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को रेखांकित करते हुए विद्यालयेतर अभिकरणों की भूमिका का उल्लेख कीजिए?
2. " सामाजिक सांस्कृतिक संसार के अनुभव पुस्तकीय एवं विद्यालयी अनुभवों से कहीं अधिक समृद्ध होते है " इस कथन की समीक्षा कीजिए एवं अपने विचारों को उद्धरण के साथ पुष्ट कीजिए।
3. "विद्यालय एवं समाज को नजदीक आने की आवश्यकता है " इस कथन के आलोक में विद्यालय का समाज पर तथा समाज का विद्यालय पर क्या प्रभाव पड़ता स्पस्ट कीजिए।

इकाई 2- विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने की अवधारणा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सीखना :एक अवधारणा
  2.3.1 सीखना व्यवहार में परिवर्तन
  2.3.2 व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप
  2.3.3 सीखने से व्यवहार में स्थायी परिवर्तन
2.4 स्कूल में सीखना
  2.4.1 पाठ्यचर्या
  2.4.2 पाठ्यक्रम
  2.4.3 शिक्षक
  2.4.4 स्कूलों में सीखने के संसाधन
  2.4.5 स्कूल में सीखने से जुड़ी मान्यताएं
2.5 स्कूल के बाहर सीखना
  2.5.1 स्कूल के बाहर सीखने के मनोवैज्ञानिक रूप
  2.5.2 स्कूल के बाहर सीखने के सामाजिक रूप
  2.5.3 स्कूल के बाहर सीखने के माध्यम
2.6 सारांश
2.7 सन्दर्भ सूची
2.8 सहायक /उपयोगी सामग्री
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सीखना मानव की स्वभाविक और बहुआयामी प्रक्रिया है। जो न सिर्फ जरूरतों के अनुसार बदल सकती है बल्कि निश्चित स्थान, समय,एवं दिशा निर्देशों के अनुसार इसके अलग अलग स्वरूप होते है।जो किसी लक्ष्य, उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्रदान किए जाते है। सीखने को लेकर सामान्यत माना जाता है कि

सीखना सिर्फ स्कूल जैसे स्थानों में ही हो सकता है। जबकि ऐसा नही ,सीखना स्कूल के बाहर भी होता है, जिसको क्रमश: औपचारिक शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा कहा जाता है। औपचारिक सीखना वह सीखना होता है जो स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा के माध्यम से सीखाया जाता है । जिसके कुछ निश्चित उद्देश्य होते है। अनौपचारिक सीखना वह सीखना होता है जो स्कूल जैसे किसी निश्चित स्थान के बाहर होते है । आरम्भ में बच्चा अपने आस – पास के वातावरण से सक्रिय रूप से जुड़ा रहता है, और कई प्रकार की खोजी , लगातार प्रश्न करने की ,चीजों के साथ लगातार छेडछाड करने जैसी गतिविधियों से सीखता रहता है। उसका शारीरिक और मानसिक विकास उसकी अपनी जानी पहचानी दुनिया और वहां के लोगों के साथ अंतक्रिया से होता है । इस प्रक्रिया में वह न सिर्फ सीखता है, बल्कि अपने ज्ञान की पुनर्निर्मिति भी करता है । समाज से मिलने वाली यह अनौपचारिक शिक्षा न सिर्फ बच्चें की सीखने की स्वभाविक क्षमता का विकास करती है, बल्कि उसको अपने आस – पास के सामाजिक एवं भौतिक कार्यों से जुड़ने की क्षमता का भी विकास होता है ।

स्कूलों में सीखने के दौरान बच्चों को अपने और दुसरे समाज को जानने समझने के अवसर प्रदान किए जाते है। ताकि वह विरासत को समझ सके । स्कूली शिक्षा बच्चें के पूर्व सीखे गये ज्ञान को एक समावेशी तरीके से सोचने की क्षमता को विकसित करती है । स्कूलों में सीखने के लिए तैयार किए गये पाठ्यक्रम और अन्य संसाधन उनके समाजीकरण और उनकी सीखने में ग्रहणशीलता के गुणों को ध्यान में रखते हुए बनायीं जाती है । इस इकाई में स्कूल में सीखना और स्कूल के बाहर सीखना में अंतर को समझने का प्रयास किया गया है ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. अधिगम की विभिन्न अवधारणाओं को समझ पाएँगे ।
2. विद्यालय के बाहर होने वाले अधिगम की प्रकृति , स्वरूप ,एवं संरचना को जान पाएँगे ।
3. कक्षा कक्ष में होने वाले अधिगम की प्रकृति एवं संरचना को समझ पाएँगे ।
4. विद्यालय के अंदर और विद्यालय के बाहर की स्थितियों का अधिगम एवं अधिगमकर्त्ता पर पड़ने वाले प्रभावों को जान पाएँगे ।

2.3 सीखना: एक अवधारणा

सीखना एक जन्मजात प्रक्रिया है। मनुष्य एक जैविक प्राणी के रूप में जन्म लेता है लेकिन जल्दी ही वह जैविक से एक सामाजिक प्राणी बन जाता है। जिस समाजीकरण की प्रक्रिया से मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है, वह सिखने की प्रक्रिया द्वारा ही सम्पन्न होती है । इस सिखने की प्रक्रिया का आरम्भ बच्चा अपने घर से ही आरम्भ करता है। जिस बोली,भाषा,गतिविधि को बच्चा करता है, वह उसकी व्यक्तिगत विरासत नही होती बल्कि वह अपने माता, पिता, घर के अन्य सदस्यों और पड़ोस से ही सीखता है। जैसे

जैसे उसका सामाजिक दायरा बढता जाता है, वैसे वैसे उसका सिखने का दायरा भी बढ़ता चला जाता है। उसकी आरम्भिक धारणाएँ उसे दूसरों से ही प्राप्त होती है ।

सीखने की इस प्रक्रिया द्वारा बच्चा समाज के आधारभूत नियमों,व्यवस्थाओं,मूल्यों ,प्रतिमानों को सीखता है। इसके माध्यम से न ज्ञान के सृजन की क्षमता का ही विकास होता है बल्कि जिस सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से सीखता है, उसके विभिन्न गतिविधियों से जुड़ने की भी क्षमता बढती है । इस तरह सीखना अपने आपमें एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि है जो कि प्रत्येक प्राणी की आवश्यक क्षमता है

सीखने का मतलब भलीभांति जानकार, समझकर, विचार विमर्श करने योग्य होना या फिर, सीखी हुयी बात या वस्तु को जीवन में व्यावहारिक रूप से ढाल लेना। सीखे हुए के अनुसार व्यवहार में बदलाव लाना है।

सीखना अपने आप में क्रिया व क्रिया का परिणाम दोनों ही है। यह सहज या फिर प्रयासपूर्ण की गई क्रिया या इसका परिणाम है। सहजरूप में यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। जिसमें व्यक्ति औपचारिक, अनौपचारिक माध्यम से नए नए अनुभवों को लगातार प्राप्त करता रहता है । सीखने की प्रक्रिया के लिए वातावरण भी बनाया जाता है। जिसमें सीखने वाला सिखाई जाने वाली बातों को आसानी से सीख सके। ऐसा मनुष्य की सीखे जाने वाली आवश्कताओं और उसकी जिज्ञासू प्रवृति के कारण भी हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य जहाँ अपने आपमें चिंतनशील, अपनी रुचिओं, योग्यताओं, क्षमताओं को समेटने वाला एक प्राणी है। वही दूसरी ओर वह समाज या समूह में रहने वाला व्यक्ति है, और सीखने की इस प्रक्रिया द्वारा वह समाज में अपना समायोजन करता है। अत: समाज अपने समूह के इस सदस्य को चेष्टापूर्वक सिखाने की कोशिशें करता है। इस सम्पूर्ण चर्चा के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि सीखने की प्रक्रिया के प्रमुख रूप से निम्नलिखित अंग है

- सीखने वाला
- सिखाने वाला
- सीखने वाली या सिखाई जाने वाली विषयवस्तु
- वातावरण
- सीखने की विधियाँ

सीखने पर इन सबका एक साथ प्रभाव पड़ता है । अत : किसी प्रकार के सीखने के बारे में कहा जा सकता है कि

- सीखना एक प्रक्रिया है ।
- यह सहज रूप से अथवा किन्ही विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सहउद्देश्य पूर्वक चलने वाली प्रक्रिया है ।
- सीखने वाला सिखाने वाला और सिखाई जाने वाली विषयवस्तु इसके प्रमुख भाग हैं ।

मनोवैज्ञानिकों में सीखने से तात्पर्य उन्हीं परिवर्तनों से होता है। जो अभ्यास या अनुभव के फलस्वरूप होता है। जिसे अनुभव परक सीखना भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के सीखने का आधार उद्दीपन तथा अनुक्रिया पर निर्भर करता है। जिसके द्वारा व्यवहार में परिवर्तन आवश्यक माना जाता है। बालक द्वारा व्यवहार तो पहले भी किया जाता है, परन्तु अब उसके व्यवहार में परिवर्तन यह हो गया कि उसे किस कार्य को करना है? कब करना है ? और क्यों करना है ?इसकी समझ विकसित हो जाती है। यह सारा अनुभव उसने घटनाओं एवं अनुभव द्वारा प्राप्त किया जिसे उद्दीपन अनुक्रिया भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा ही निश्चित होता है कि बालक के व्यवहार में क्या अपेक्षित परिवर्तन हो सकते है। सभी तरह के व्यवहारिक परिवर्तन को सीखना नही कहा जा सकता है, सिर्फ उन्हीं परिवर्तनों को सीखना कहा जा सकता है जो अनुभव और अभ्यास के फलस्वरूप होते है तथा जिसका उद्देश्य बालक को समायोजन में मदद करना होता है।

मनोवैज्ञानिकों में सीखने को लेकर काफी मतभेद है लेकिन फिर भी उनके विचारों में इस बात को लेकर काफी सहमती है जो इस प्रकार है –

- **सारटेन,नार्थ ,स्ट्रेज तथा चैपमैन** के अनुसार "सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है।''
- **हर्गेनाहन** के अनुसार "सीखना व्यवहार में या व्यवहारात्मक अंतशक्ति में अनुभूति के कारण उत्पन्न होनेवाला परिवर्तन है तथा जिसे अस्थायी शारीरिक अवस्थाओं,जो मूलत: बीमारी,थकान या औषधि खाने आदि से उत्पन्न होते है, द्वारा व्याख्या नही की जा सकती है।''
- **रिली तथा लेविस** के अनुसार "अभ्यास या अनुभूति से व्यवहार में धारण योग्य परिवर्तन को सीखना कहा जा सकता है।''

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेष्ण करे तो सीखने का स्वरूप स्पष्ट होता है। इस तरह के विश्लेष्ण करने पर सीखने को लेकर निम्नलिखित निष्कर्षों पर पंहुचा जा सकता है। जो सीखने की अवधारणा को स्पष्ट करते है –

2.3.1 सीखना व्यवहार में परिवर्तन

प्रत्येक तरह के सीखने की प्रक्रिया से बालक के व्यवहार में परिवर्तन होता है। व्यवहार में परिवर्तन सीखने की आवश्यक शर्त है। जब हम देखते है कि बालक के व्यवहार में परिवर्तन नही हुआ तो उसे सीखने की श्रेणी में नही रखते है। यह परिवर्तन सकारात्मक और नकारात्मक दोनों हो सकता है। जैसे बालक द्वारा शब्दों का सही सही उच्चारण करना सीख लेना या शब्दों का सही सही लिख लेना सकारात्मक सीखने का उदाहरण है। चोरी करना ,झूठ बोलना आदि व्यवहार नकारात्मक व्यवहार परिवर्तन के उदाहरण है। सीखने से तात्पर्य व्यवहार में इन दोनों तरह के परिवर्तन से होता है।

2.3.2 व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप

सीखने की प्रक्रिया में जो परिवर्तन होता है। वह अभ्यास या अनुभूति के परिणाम स्वरूप होता है। यहाँ अभ्यास से तात्पर्य किसी प्रकार के प्रशिक्षण से होता है। जिसमें किसी प्रक्रिया को बार बार करके सुधारा जाता है। अनुभूति से तात्पर्य किसी प्रकार की आकस्मिक अनुभूतियों से जो व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाती है। स्कूलों में सीखना अभ्यास का उदाहरण है। जिसमें बच्चों को अक्षर ज्ञान, उच्चारण करना,लिखना सिखाना बार बार अभ्यास द्वारा ही सीखाया जाता है। जिसमें शुरू शुरू में बहुत गलतियाँ करते है। लेकिन धीरे धीरे अभ्यास या प्रशिक्षण से उनमें सुधार हो जाता है। व्यक्ति को हर प्रक्रिया को सीखने के लिए अभ्यास या प्रशिक्षण की जरूरत नही होती है। ऐसा भी होता है कि वह एक मात्र अनुभव से ही उसे सीख लेता है, जैसे किसी बालक का किसी गर्म चीज पर अचानक से हाथ पड़ जाने से वह सीख लेता है कि उसे गर्म चीज पर हाथ नही रखना चाहिए ।

2.3.3 सीखने से व्यवहार में स्थायी परिवर्तन

सीखने से व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है, जो धारण करने योग्य भी होता है। अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन वैसे परिवर्तन को कहा जाता है। जो एक समय तक स्थायी होता है। लेकिन इस समय की कोई निश्चित अवधि नही होती है। जो कुछ दिन या कुछ महीने भी हो सकती है ।

उपर्युक्त विश्लेष्ण के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि किसी व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना कहलाने के लिए निम्न शर्तों का होना अनिवार्य है-

व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप ही हुआ हो। थकान, परिपक्वन, दवा खाने आदि से हुए परिवर्तन को सीखना नही कहा जा सकता है ।

सीखने से अभ्यास या अनुभूति से उत्पन्न परिवर्तन को क्षणिक न होकर अपेक्षाकृत स्थायी होता है ।

1.4 स्कूल में सीखना

"विद्यालय वह पावन स्थान है, जहाँ सभी मिलकर जीवन की जटिलता और उसकी सरलता के बारे में सीखते है । विद्यालय सीखने का स्थान है इसलिए पवित्र है।" जिद्दु कृष्णमूर्ति

स्कूल में सीखने की प्रक्रिया एक विशेष प्रकार के वातावरण में सम्पन्न होती है । जिसके कुछ अपने कायदे कानून होते है, जो सीखने की प्रक्रिया को एक निश्चित, नियंत्रित संरचना में रखते है । जैसे ही हमारे दिमाग में स्कूल का नाम आता है, वैसे ही हमारे दिमाग में इसको लेकर तरह तरह संरचना बनने लगती है। ऐसा लगता है कि स्कूल हमारी दुनिया से अलग कोई दुनिया है। जहाँ पर सिर्फ सीखने सिखाने का काम किया जाता है । ज्ञान के सृजन एवं पुन: सृजन के लिए अनुभव ,भाषाई क्षमताओं और प्राकृतिक संसार और दुसरे लोगों के साथ अंतक्रिया की जरूरत होती है। जिसके लिए स्कूल अवसर प्रदान करता है । स्कूलों में

प्रवेश करने वाला बच्चा संसार के ज्ञान का सृजन कर चुका होता है। हर चीज जो बच्चें बाद में सीखते है। वह उस ज्ञान से सम्बंधित होता है। जो स्कूल में लेकर आते है, और स्कूल इस ज्ञान को आधार मानकर सक्रियता और जुड़ाव के साथ उसे आगे बढ़ाने में सहायता करता है। स्कूल में सीखना एक विशेष प्रकार की कठोर व्यवस्था के तहत होता है। जिसमें पाठ्यचर्या,पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें,अनुशासन शिक्षक,छात्र और परीक्षा प्रणाली उसकी जरूरतों के अनुसार होते है। इन साधनों की परस्पर अंतक्रिया से स्कूल में सीखना न सिर्फ एक प्रक्रिया के रूप में बल्कि उत्पाद स्वरूप भी प्रदान कराया जाता है। यहाँ पर उत्पाद आधारित सीखने का मतलब है कि स्कूल में सीखने के पश्चात् बालक उसको अपने व्यवहारिक जीवन में उपयोग करेगा,जो न सिर्फ श्रम आधारित होगा बल्कि सामाजिक ,आर्थिक स्थिति भी सुधारने में मदद मिलेगी। अत : स्कूलों में सीखना कुछ निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाता है। जो हमारी सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक स्थितियों से प्रभावित होता है। स्कूल में सीखने की प्रक्रिया में जिन साधनों का उपयोग किया जाता है। उनका भी अपना एक उद्देश्य और स्वरूप होता है जो इस प्रकार है-

2.4.1 पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या स्कूलों में सीखने को सुगम बनाने की एक योजना है। यह सीखने के उन सभी आयामों और पहलूओं को क्रमबद्ध करती है। जो जरुरी होता है। यह कारण भी बताती है कि इस तरह का सीखना क्यों जरुरी समझा गया और किन उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। यह योजना विशेष स्तरों के उद्देश्यों को अलग अलग परिभाषित करेगी कि कौन सी पाठ्यचर्या किस स्तर पर पढाई जाय, और किस प्रकार उसका संचालन हो। यह स्कूली शिक्षा प्रणाली के सामान्य उद्देश्यों और परिक्षण,योग्यता का आधार तथा बेहतर शिक्षण सामग्री की सिफारिश करती है। इस पाठ्यचर्या के माध्यम से स्कूल में बच्चों को ऐसा ज्ञान प्रदान किया जाता है। जिसके माध्यम से न सिर्फ उनमें अपने समाज की एक बेहतर समझ बने बल्कि समाज के लिए शैक्षिक लक्ष्यों के उद्देश्यों को भी सीख सके और ये अनुभव किस तरह दिए जाए इसका भी निर्धारण किया जाता है।

2.4.2 पाठ्यक्रम

यह एक प्रकार से पाठ्यचर्या का ही भाग होता है। इसका मतलब होता है कि विषयवस्तु के अनुसार क्या पढाया जाय क्या नही और वे ज्ञान कौशल एवं अभिवृतियां जिन्हें खास रूप से बढ़ावा मिले। इनका स्तर विशिष्ट उद्देश्यों के साथ हो।

2.4.3 शिक्षक

स्कूलों में सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान होता है। शिक्षक वह साधन होता है जिसके द्वारा विद्यार्थियों का पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या, विषयवस्तु से सार्थक सम्बन्ध स्थापित होता है। जिसके द्वारा न सिर्फ विद्यार्थियों में ज्ञान व निपुणता को संप्रेषण होता है बल्कि उनका चारित्रिक निर्माण भी होता है।

स्कूलों में सीखना एक नियंत्रित माहौल में सम्पन्न होता है। जिसको वयस्कों द्वारा निर्मित किया जाता है। यह माहौल जैसा रहता है ,बच्चे वैसे ही सोचते और अनुभव करते है। स्कूली सीखना प्रत्यक्ष रूप से नही बल्कि वहां के माहौल के माध्यम से परोक्ष रूप से होता है। समाज के जिस अंग को स्कूल कहा जाता है। उसके माहौल या पर्यावरण के विषय में *जॉन डीवी* ने मुख्यतः तीन बाते कही है। जो स्कूल के सीखने में महत्वपूर्ण योगदान देता है –

- पहला, स्कूल का पहला काम सरलीकृत पर्यावरण उपलब्ध कराना है।जिसमे ऐसे विशेष तत्वों को चुनकर रखा जाता है।जो बहुत कुछ आधारभूत होते है ,तथा जो बच्चों की अनुक्रिया को प्रेरित करने में सक्षम होते है। इसके साथ ही स्कूल द्वारा प्रगति का ऐसा क्रम स्थापित किया जाता है कि जो कुछ ज्ञान शुरू में अर्जित किया जाता है। उसका प्रयोग उन बातोँ को समझने के लिए किया जाता है जो अपेक्षाकृत अधिक जटिल है।
- दूसरा, स्कूलों में सीखने का संशोधित माध्यम तैयार किया जाता है,चयन का उद्देश्य सिर्फ सरलीकरण ही नही होता है, बल्कि जो कुछ अवांछित होता है। उसको छांटकर निकलना भी होता है। स्कूल का काम होता है कि ऐसे तत्वों को बाहर करना जो समाज के लिए हानिकारक हो और बच्चे का सामाजिक जीवन में कोई सहयोग न करे। ऐसे तत्वों का चयन करके स्कूल न सिर्फ सीखने को दिशा प्रदान करता है बल्कि ऐसे तत्वों की सर्वश्रेष्ठता भी साबित करता है।
- तीसरा- स्कूल पर्यावरण का यह भी काम है कि वह सामाजिक पर्यावरण के विभिन्न तत्वों में संतुलन कायम करे और यह सुनिश्चित करे कि प्रत्येक व्यक्ति को उस सामाजिक समूह के दायरे से बाहर निकलकर व्यापक पर्यावरण के सम्पर्क में आने का अवसर मिले। स्कूल में सीखने से प्रत्येक व्यक्ति के स्वभाव में उन सभी विभिन्न सामाजिक पर्यावरण के विविध प्रभावों को समन्वित किया जाता है। जिसमें वह प्रवेश करते है।

इस प्रकार डीवी के अनुसार स्कूल में सीखने के लिए वहां के पर्यावरण का महत्वपूर्ण स्थान होता है, जो न सीखने के लिए सकारात्मक माहौल का निर्माण करता है बल्कि उसके व्यवहारिक जीवन में अनुप्रयोग के तरीकों को भी सुझाता है।

2.4.4 स्कूलों में सीखने के संसाधन

स्कूलों में सीखने के कुछ संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है जो न सिर्फ सीखने के लिए जरुरी बल्कि सीखने को सुगम भी बनाते है

i. **पाठ्यपुस्तकें -** पाठ्यपुस्तकों में पाठ्यचर्या द्वारा निर्धारित विषयवस्तु के बारे लिखा जाता है। एक प्रकार से पाठ्यपुस्तकें पाठ्यचर्या की कर्मस्थली होती है। जो सीखी गयी चीजों को समझने में मदद करती है। प्रो कृष्ण कुमार के अनुसार "पाठ्यपुस्तकें ही वह धुरी है जिसके इर्द गिर्द कक्षा

में होने वाला शिक्षण घूमता है,वह आधार जिस पर परीक्षा ली जाती है। वह एक ऐसा जरिया है जिससे राज्य कक्षा में होने वाले शिक्षण पर नियन्त्रण करता है, पाठ्यपुस्तकें ही तो है''। पाठ्यपुस्तकों द्वारा तय होता है कि वह बच्चों को सूचनात्मक तरीके से सीखती है या उनको अंतक्रिया के अवसर भी देती है । प्रत्येक स्तर पर पुस्तकें और उनका संदर्भ सीखने वाले की क्षमता अनुसार अलग अलग होता है।

ii. **पुस्तकालय -** स्कूलों में पुस्तकालय की संकल्पना एक ऐसे स्थल के रूप में की जाती है, जहाँ न सिर्फ विद्यार्थी बल्कि शिक्षक और निकटस्थ समुदाय के लोग भी ज्ञान के गहरे अर्थो और कल्पनाशीलता की तलाश सकते है। वे पुस्तकालय को सीखने, आनंद और तन्मयता के साथ इस्तेमाल करते है। पुस्तकालय में पुस्तको का सूचीबद्ध के अलावा अन्य पत्र पत्रिकाओं को इस तरह व्यवस्थित किया जाता है कि विद्यार्थी उनका उपयोग आत्मनिर्भर होकर कर सके।

iii. **शैक्षिक तकनीकी -** शैक्षिक तकनीकी का उपयोग शिक्षण काम को सरल और सुगम बनाने के लिए किया जाता है। सामान्यतौर पर तकनीकी का प्रयोग प्रसार के लिए किया जाता है जो सीखायी जाने वाली विषयवस्तु पर निर्भर करता है कि सीखने के लिए किस तरह की रणनीति का प्रयोग करे। जिससे बच्चें आसानी से सीख ले। शैक्षिक तकनीकी का उपयोग न सिर्फ सीखे जाने वाली विषयवस्तु को रुचिकर बनाने के लिए किया जाता है, बल्कि पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए भी किया जाता है ।

2.4.5 स्कूल में सीखने से जुडी मान्यताएं

स्कूलों में सीखने सीखाने की प्रक्रिया ही वह जरिया है जिसके माध्यम से समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों और उद्देश्यों,लक्ष्यों को चरितार्थ किया जा सकता है। यदि बहुलतावाद समाज का एक लक्ष्य है तो स्कूली शिक्षा केवल यही मदद कर सकती है कि बच्चें में किसी भी चीज के प्रति समझ विकसित करे , जानकारी उपलब्ध कराए और आलोचनात्मक या विवेचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करना सीखाए । इन सबका आधार है ज्ञान ,जिसका विस्तारित अर्थ है समझना, सोचने के तरीके ,मूल्य कौशल शामिल है । यह तभी हो सकता है जब स्कूलों में एक स्वस्थ्य लोकतान्त्रिक संवाद ,सीखने का उचित माहौल उपलब्ध कराया जा सके ।

2.5 स्कूल के बाहर सीखना

स्कूल के बाहर सीखना स्कूली सीखना के विपरीत होता है। यह ऐसा सीखना होता है जिसका न कोई उद्देश्य होता है, न कोई योजना होती है, न कोई पाठ्यचर्या होती है और न ही कोई निश्चित शिक्षण विधि होती है । इस प्रकार का सीखना उसी समय से आरम्भ हो जाता है। जब से मानव इस दुनिया में आता है, और पुरे जीवन तक चलती है। जिसका सबसे अधिक असर मानव जीवन पर पड़ता है । बच्चें के सीखने का आरम्भ इसी तरह के सीखने से आरम्भ होता है ।

स्कूल के बाहर सीखने की क्रिया विभिन्न जगह और विभिन्न अवस्थाओं में अलग अलग तरीके से हो सकती है। एक समय तक जब बच्चें में सोचने समझने की क्षमता का अभाव रहता है तो उसके सीखने के तरीके अलग होते है। और जब उसमे सोचने समझने की क्षमता बढ़ जाती है। तब उसके सीखने के तरीके बदल जाते है यानि सीखने की दो अवस्थाएँ है पहली अवस्था वह है जब बच्चा वयस्कों के समाज से दूर रहता है और दूसरा जब वह वयस्क समाज के सम्पर्क में आता है। इन दोनों में सीखने की प्रक्रिया अलग अलग तरीके से होती है। पहली अवस्था में सीखना बच्चों के स्वयं के संवेगों के माध्यम से सीखना होता है । इस अवस्था में बच्चें की सहजता विकास की क्षमता और पहल किसी विशेष तरह के खुलेपन से होती है। वह परम्परा या समाज के रीति रिवाजों से अनभिज्ञ रहते है,और मुख्यतः अपने आंतरिक संवेगों से संचालित होते है। विभिन्न वस्तुओं के साथ उनकी अंतक्रिया न सिर्फ आनन्द से भरपूर रहती है बल्कि अपने अनुभव माध्यम से सीखते हुए ज्ञान भी प्राप्त करने के साथ बालक का शारीरिक और मानसिक विकास भी होता है ।

2.5.1 स्कूल के बाहर सीखने के मनोवैज्ञानिक रूप

आरम्भ में बच्चें अपने आपको दुसरे के साथ जोड़कर देखना शुरू करते है । जिससे उनमें भाषा चिन्तन, विचार करना जैसे अन्य शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास होता है। जिसे अगर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखे तो सीखने का आरम्भ विभिन्न प्रकार के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं से आरम्भ होता है। जो सीखने को आधार प्रदान करते है । जीन पियाजे के अनुसार बालक आरम्भिक बाल्यावस्था से ही क्रियात्मक और स्वतंत्र रचनाकार होता है। जो अपने वातावरण की वस्तुओं से अंतक्रिया करते हुए सीखता है और ज्ञान का निर्माण करता है न कि दूसरों से ग्रहण करता है । मनुष्य जन्म से ही सतत रूप से ज्ञान कौशल सम्बन्धी सूचनाओं को इकठ्ठा करते रहते है। जिसके माध्यम से वातावरण में अपने को समायोजित करते रहते है ।जीन पियाजे ने सीखने में सहायक संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन चार अवस्थाओं में किया है जिसमें पहली अवस्था संवेदी –पेशीय अवस्था, दूसरी अवस्था – प्राकसंक्रियात्मक अवस्था, तीसरी अवस्था – ठोस संक्रिया की अवस्था , चौथी अवस्था – औपचारिक संक्रिया की अवस्था । संक्षेप में पियाजे के सिध्दांत में जो बात सबसे महत्वपूर्ण है, वह है कि पियाजे के अनुसार बालकों का वास्तविकता के बारे में चिंतन करने तथा उसे खोज करने की शक्ति न सिर्फ बालकों के परिपक्वता स्तर पर और न सिर्फ उसके अनुभवों पर निर्भर करता है ,बल्कि इन दोनों की अंतक्रिया द्वारा निर्धारित होती है । पियाजे अनुसार सीखना मनुष्य में अनुभव द्वारा होता है जो उसकी परिपक्वता पर निर्भर करता है। जिसकी परिपक्वता जितनी अधिक होगी उसका अनुभव या सीखना भी उतना अच्छा होगा और उसका संज्ञानात्मक विकास भी अच्छा होगा ।

वाईगोत्सकी का विचार था कि जीन पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास, जोकि सीखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह बच्चें के परिपक्वता पर निर्भर करता है। जिसके द्वारा बच्चा वातावरण में स्वतंत्र रूप से खोजबीन द्वारा सीखता है। जिससे उसकी संज्ञानात्मक क्षमता बढती है लेकिन वाईगोत्सकी का मानना था

कि सीखने में परिपक्वता के अलावा बच्चें के सामाजिक- सांस्कृतिक संदर्भ भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इन्होंने बच्चें के संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक कारकों एवं भाषा को भी महत्वपूर्ण माना है। बच्चें जिस किसी उम्र में किसी संज्ञानात्मक कौशल को सीखते है उन पर उनके आसपास के सांस्कृतिक सामाजिक परिवेश से सूचना और निर्देश प्राप्त हो रहे होते है। इस प्रकार से संज्ञानात्मक विकास जो सीखने की प्रक्रिया से होती है, वह अंतर्वैयक्तिक सामाजिक परिस्थिति में सम्पन्न होती है। जो बच्चें में सीखने के स्तर को न सिर्फ आगे बढ़ाता है बल्कि उसके लिए एक मार्ग भी प्रशस्त करता है। वाईगोत्सकी ने सीखने में भाषा और चिंतन को भी महत्वपूर्ण माना है। बच्चों में भाषा का उपयोग सिर्फ सामाजिक संचार के लिए नही किया जाता है, बल्कि वह अपने व्यवहार को नियोजित और निर्देशित करने के लिए भी करते है। जिसको इन्होंने आंतरिक संभाषण कहा है। जिसके द्वारा बच्चा आत्म नियमन करना सीखता है।

वाईगोत्सकी ने प्रारम्भ में चिन्तन और भाषा दोनों को ही स्वतंत्र माना है, जो बाद में चलकर एक हो जाते है। इनके अनुसार हर तरह के मानसिक कार्य के सामाजिक उद्भव होते है। अपने चिन्तन पर ध्यान केन्द्रित करने से पहले बच्चें को दूसरों के साथ बातचीत करने के लिए भाषा सीखना अनिवार्य होता है। इस तरह से बच्चों को लम्बें समय तक बाहरी दुनिया से संचार स्थापित करने के लिए भाषा का उपयोग करना अनिवार्य रूप से सीखना होता है। इसके बाद ही वे ठीक ढंग से बाहरी और आंतरिक सम्भाषण को जोड़ पाते है।

वाईगोत्सकी का मानना है कि वयस्कों के साथ की गई सामाजिक अंतक्रिया द्वारा बच्चें का होने वाला संज्ञानात्मक विकास भी सीखने में सहायक होता है। जिसको पारस्परिक शिक्षण कहा जाता है। जिसमें बालक वयस्कों द्वारा की जाने वाली गतिविधियों इस तरह करना सीख जाता है कि वह उसके लिए मांडल का काम करने लगता है। यह माँडल से तात्पर्य एक ऐसी मानसिक संरचना से है जिसे बच्चें किसी नये कार्य को करते समय उसका उपयोग करते है।

अल्बर्ट बन्दुरा ने अपने सामाजिक सीखने के सिध्दांत में बताया है कि व्यक्ति जिस सामाजिक परिवेश में रहता है उसमें अनुकरण और प्रेक्षण द्वारा भी सीखता है। इनका मानना है कि सामाजिक परिवेश में हम नकल कर करके भी बहुत कुछ सीख लेते है और इस अनुकरण/नकल करने में संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं भी चलती है। हम केवल प्रतिरूप या मांडलो को देखकर और जो कुछ देखा है उसको दिमाग में दर्ज करके काफी जानकारी हासिल कर लेते है। उदाहरण के लिए, जब बच्चें नए गीत सीखते है या अपने माँ बाप के कई सारे व्यवहारों की लम्बी श्रृंखला मंचित कर देते है। मानवशास्त्रीय साहित्य में भी प्रेक्षण आधारित सीखने पर काफी काम हुआ है। ग्वेतामाला की एक उपसंस्कृति में लड़कियां लगभग पूरी तरह केवल प्रतिरूपों या माँडलों को देखकर बुनना सीख लेती है। अध्यापिका कपड़ा मशीन को चलाकर दिखाती है और लड़की सिर्फ देखती रहती है। फिर जब लड़की को लगने लगता है कि वह सब कुछ समझ चुकी है तो मशीन उसको सौप दिया जाता है और आमतौर पर वह अपने पहली ही आजमाइश में उसको बड़े कौशल के साथ चलाने लगती है। बन्द्यूरा के अनुसार यह अभ्यास रहित सीखना का उदाहरण पेश करती

है। वह केवल प्रेक्षण के जरिए फौरन नया व्यवहार अर्जित कर लेती है ।बन्द्यूरा ने सीखने की प्रक्रिया में प्रेक्षण के साथ समाजीकरण को भी महत्वपूर्ण माना है ।

उपरोक्त के अलावा थार्नडाइक, स्किनर ,पाँवलव, इरिक्सन जैसे अन्य कई मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के न सिर्फ मनोवैज्ञानिक बल्कि सामाजिक आधारों के संदर्भ में अपने सिध्दांत प्रतिपादित किया है।

2.5.2 बाह्य रूप से सीखने के सामाजिक रूप

स्कूल के बाहर सीखने का विस्तृत आधार सामाजिक अंतक्रिया या समाजीकरण द्वारा होता है। जिसमें बच्चा छोटे छोटे अनुभवों से गुजरता है। यह अनुभव से गुजरना ही सीखना है। यह अपने आस पास के लोगों के साथ खुलकर बातचीत करता है ,दूसरों की बातों को सुनता है उस पर अपनी प्रतिक्रिया देता है। घर पर या दोस्तों के साथ बच्चें खेल का आनंद उठाते है। खेल के नियमों को स्वयं बनाते है ,कभी कभी नियमों को बदलते भी है ,आपस में लड़ाई झगड़ा भी करते है जिनसे न सिर्फ उनका समाजीकरण होता है बल्कि सीखना भी होता है । बच्चा अपने समाज की समस्त मान्यताओं,आस्थाओं ,संस्कृति और गतिविधियों अपने से बड़े लोगों से ग्रहण करता है चाहे वह स्वास्थ्य ,कृषि ,स्थान ,सम्बन्ध किसी के विषय में हो यानी की परिपक्व समाज के लोग, अपरिपक्व लोगों (बच्चों) को अपनी विरासत हस्तांतरण करते है जोकि एक सीखने की प्रक्रिया द्वारा होता है । यह औपचारिक शिक्षा या स्कूल शिक्षा का आधार बनता है। इसलिए घर को प्राथमिक पाठशाला कहा जाता है । जाँन डीवी ने इस प्रक्रिया को सम्प्रेष्ण कहा है जिसके माध्यम से समाज कायम रहता है। शिक्षा भी अपने व्यापक अर्थ में जीवन की इस सामाजिक निरन्तरता का माध्यम रहती है "एक ओर तो प्रतिकूलता होती है कि समूह के जो नवजात सदस्य समाज के एक मात्र भावी सदस्य होते है ,वे अपरिपक्व होते है और ,उनके मुकाबले, वयस्क सदस्य परिपक्व होते है । इन्ही को समूह और उसके रिवाजों का ज्ञान होता है ।दूसरी ओर ,यह भी आवश्यक होता है कि इन अपरिपक्व सदस्यों को ठीक ढंग से न केवल शारीरिक रूप से सुरक्षित रखा जाय वरन उन्हें परिपक्व सदस्यों के सरोकारों प्रयोजनों ,जानकारी ,कौशलो और रिवाजों से भी परिचित कराया जाय ,अन्यथा जीवन की विशिष्टता का अंत हो जाएगा.....जिस प्रकार जैविक रूप से जीवन सम्प्रेषण की प्रक्रिया के माध्यम से कायम रहता है ,उसी प्रकार समाज भी सम्प्रेष्ण के माध्यम से कायम रहता है । यह सम्प्रेषण आयु में बड़े लोगों द्वारा अपने से कम आयु के लोगों करने ,सोचने और अनुभूति की आदतों के जरिए होता है ।" इस प्रकार सीखने का आरम्भ बच्चें के जन्म से ही शुरू हो जाता जो वह अपने परिवार के लोगों द्वारा की जाने वाली गतिविधियों और उसके संप्रेषण या हस्तांतरण से होता है । परिवार के लोग जिस प्रकार का काम करते है बच्चा भी वही करना आरम्भ कर देता है फिर जैसे जैसे उसका सामाजिक दायरा बढ़ता जाता है वैसे वैसे उसके सम्प्रेषण और अंतक्रिया का माध्यम बड़ने लगता है जिससे उसका सीखने का दायरा भी बढ़ जाता है।

समाजीकरण के दौरान जिस प्रकार के लोगों , स्थानों ,संस्थाओं, विचारों ,मान्यताओं के सम्पर्क में आता है।उससे उस तरह सीखता है । इस प्रकार की सीखने की प्रक्रिया उसके स्थानीय प्राकृतिक और सांस्कृतिक

परिवेश के साथ जुड़ना होता है जो न सिर्फ वहां के स्थानीय तौर तरीको से सम्पन्न होता है बल्कि रोजगार परक भी हो सकता है। अर्धेन्दु शेखर चटर्जी के अनुसार सीखने सिखाने के दृष्टि से स्थानीय परिवेश और समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जो उस क्षेत्र के सांस्कृतिक इतिहास या इन जैव भौतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए स्थानीय समुदायों तथा समूहों द्वारा उपयोग किए जाने वाले उपकरणों और तकनीकी पर जोर देती है । इस प्रक्रिया द्वारा ज्ञान कौशलों, तकनीकी व संसाधनों आदि को एक साथ बाटने को सुगम बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले विभिन्न प्रबंधन ढाचों और सामाजिक व्यवस्थाओं पर ध्यान देती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता : इसका स्थान विशेष पर आधारित होना ,तथा ऐसी गतिविधियाँ या परियोजनाओं पर आधारित होना जिनके माध्यम से बालक द्वारा छानबीन किए जाने वाले सवालों की गहराई एवं विस्तार को स्वयं तय करते है और इस तरह अन्वेषण करते हुए सीखने की एक खुली पद्धति होती है।

2.5.3 स्कूल के बाहर सीखने के माध्यम

स्कूल के बाहर सीखने का न कोई निश्चित माध्यम होता है न ही कोई निश्चित संरचना ही होती है। यह स्थिति परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। स्कूल के बाहर सीखने के कुछ निम्नलिखित माध्यम होते है –

i. **माता पिता द्वारा सीखना -** बच्चें के सीखने का आगाज उसके माता पिता या परिवार द्वारा होता है। बच्चा जिस किसी भी गतिविधि को करता है उसको अपने माता पिता से ही सीखता है । माता पिता बच्चें की उम्र के साथ उसको सिखाते है । बच्चा अपने से बड़ो के साथ कैसे व्यवहार करेगा ,अपने से छोटे लोगों के साथ ,परिवार के बाहरी लोगों के साथ कैसे अंतक्रिया करे इन सबको बच्चा अपने माता पिता और परिवार से ही सीखता है । यहाँ तक बच्चे द्वारा बोली जाने वाली भाषा, बोली भी वह माता पिता से सीखता है।

ii. **पास-पड़ोस से सीखना -** बच्चें अपने पास पड़ोस के साथ भी अंतक्रिया करते हुए काफी कुछ सीखते हुए अपने समाजीकरण का दायरा बढ़ाते है। पास पडोस के लोगों को जिस प्रकार व्यवहार और गतिविधि करते हुए देखते है वैसा वह भी अनुकरण करना सीख लेते है । मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि पड़ोसी अच्छा होने से उनमें उत्तम नैतिकता एवं शिष्टाचार का गुण विकसित होता है। उसके विपरीत यदि पास पड़ोस का माहौल अच्छा नही है तो बच्चों का मानसिक विकास उससे अनुचित रूप से प्रभावित हो जाता है ऐसी स्थिति में बच्चें कई सारी अनुपयुक्त आदते भी सीख लेते है।

iii. **साथियों के समूह से सीखना-** बच्चें दोस्तों के समूह से भी सीखते है। प्रत्येक दोस्त एक दुसरे को प्रभावित करते हुए आपसी अंतक्रिया द्वारा एक दुसरे की आदतों को सीखते है । ऐसी अवस्था में बालक अपने साथियों के समूह पर काफी विश्वास भी करता है। वह कोई काम मिलजुलकर करना में अधिक रूचि रखते है। उनमें अपने आपको परोपकारी और सहयोगात्मक भावना का विकास होता है।

iv. **सीखने के अन्य माध्यम -** सीखने के अन्य माध्यम में वे सारे माध्यम के आने की उम्मीदें बढ़ जाती है जो उपरोक्त बताए गये माध्यम में नही है। इसके अंतर्गत नये स्थान, व्यक्ति, समुदाय ,नाटक, फ़िल्म, समाचार पत्र, संगीत, पोस्टरों का किसी सार्वजनिक स्थान पर प्रदर्शन, बातचीत ,भाषण के सम्प्रेषण, भ्रमण से प्राप्त जानकारी जैसे अनेक कई सारे माध्यम हो सकते है जिनसे बाह्य तौर सीखने की क्रिया सम्पन्न होती है।

2.6 सारांश

सीखना एक सर्वकालिक और सर्वव्यापक तौर पर संपन होने वाली प्रक्रिया है, जो न सिर्फ मनोवैज्ञानिक बल्कि सामाजिक रूप में होती है। सीखना स्थान, समय,परिस्थिति और जरूरतों के अनुसार बदलता रहता है। सीखना स्कूल के बाहर हो चाहे स्कूल के अन्दर इन दोनों में जो सामान्य है वह है सीखना है। जो स्कूल के अंदर और बाहर दोनों जगह होता है लेकिन इन दोनों जगहों पर सीखने का अंतर उसकी संरचना में है। स्कूल में सीखने के कुछ निश्चित कायदे कानून, पद्धति और जरूरतें होती जो किसी निर्धारित उद्देश्यों और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर रहती है। एक प्रकार से स्कूलों में सीखना एक संस्थाबद्ध प्रक्रिया है ,जबकि स्कूल के बाहर सीखने की प्रक्रिया की कोई संरचना नही होती है। यह अबाध्य गति किसी भी स्थान, समय, परिस्थिति में होती है। जिसका न कोई निश्चित उद्देश्य होता है न ही नियम होता है।

2.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा,(2005). राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्. नई दिल्ली
2. सलूजा, चाँद किरण.(2000). शिक्षा : एक विवेचन,हिंदी माध्यम निदेशालय .दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली
3. डीवी,जॉन.(2008). शिक्षा और लोकतंत्र, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली.
4. चटर्जी, अर्धेन्दु शेखर (2016), कक्षा के बाहर काम और सोच विचार के माध्यम से सीखना,उत्पादक काम और शिक्षणशास्त्र.लर्निंग कर्व. अजीम प्रेमजी फाउन्डेशन, बंगलौर.
5. ठाकुर ,एमहर्स्ट,आर.एन . एल.के.(1997). शिक्षाशास्त्र, रवीन्द्रनाथ का शिक्षा दर्शन, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन , दिल्ली
6. क्रेन,विलियम.(1992).वेड्युरा का सामाजिक शिक्षण सिद्धांत, आरआरसीइइ, दिल्ली विश्वविद्यालय , दिल्ली
7. सिंह,अरुण (2011). शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिकेशन.पटना
8. कुमार,कृष्ण (2012). शिक्षा और बाल साहित्य ,एकलव्य, होशंगाबाद

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची / सहायक उपयोगी सामग्री

1. मनोविज्ञान बुक ,(200९).कक्षा ११ और 12 की एनसीआरटी बुक्स. दिल्ली
2. डीवी, जॉन.(2014). शिक्षा और समाज.आकार बुक पब्लिकेशन ,दिल्ली
3. एस,पद्मा (2003). कंस्ट्रक्शन ऑफ़ नॉलेज.सेज पब्लिकेशन

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. सीखने के अर्थ एवं परिभाषा की व्याख्या करते हुए स्कूल के अंदर सीखना और स्कूल के बाहर सीखना में अंतर स्पष्ट कीजिए ?
2. स्कूल के बाहर सीखने के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक संरचना की व्याख्या कीजिए ?
3. सीखना से आप क्या समझते है ?उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ?
4. "सीखना जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है" स्पष्ट करे ?
5. स्कूल में सीखने के स्वरूप का वर्णन कीजिए ?
6. स्कूल के बाहर सीखने की अवधारणा की व्याख्या कीजिए ?

इकाई-3 विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने की अवधारणा में सम्बंध

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने में सम्बंध
  3.3.1 सैद्धांतिक आधार पर विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने में सम्बंध
  3.3.2 गाँधी के अनुसार शिक्षा
  3.3.3 जॉन ड्युई के अनुसार शिक्षा
3.4 विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने की आलोचनात्मक समझ
3.5 उपसंहार
3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.7 उपयोगी/सहयोगी सामग्री
3.8 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

"शिक्षा व्यवस्था उस समाज से अलग थलग होकर काम नही करती जिसका वह भाग है। जातिगत, आर्थिक तथा स्त्री पुरुष सम्बन्धों का पदानुक्रम ,सांस्कृतिक विविधता और असमान विकास से ,जो भारतीय समाज की विशेषताएँ है,शिक्षा की प्राप्ति और स्कूलों में बच्चें की सहभागिता प्रभावित होती है"(एनसीएफ:2005)

प्राय: सीखना को लेकर हम सोचने लगते है कि सीखना तभी तरह हो सकता है जब हम कोई अन्य काम न कर रहे हो और उसी स्थान पर होता है जहाँ कोई अन्य काम न हो रहा हो। स्कूल में पढ़ा हर व्यक्ति मानने लगता है कि

1. यदि मुझे कोई महत्वपूर्ण बात सीखनी हो तो मुझे स्कूल नामक स्थान पर जाना पड़ेगा और शिक्षक नामक कोई व्यक्ति ढूढना पड़ेगा जो मुझे यह बात सीखाएगा.
2. यह प्रक्रिया उबाऊ और कष्टदायी होगी

3. मैं शायद सीख नही पाउँगा । सीखना एक सहज और स्वभाविक प्रक्रिया है जिसका स्वरूप उद्देश्य और सीखने सीखाने का तरीका समय एवं परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है । (होल्ट.2007)

स्कूली सीखना का उद्देश्य ही यही होता है कि वह बच्चों में ऐसे दृष्टिकोण और कौशल सीखने की सुविधा देना है जो उन्हें सफलतापुर्वक अपने परिवेश के साथ काम करने में सहायक हो ,लेकिन ऐसा शायद तभी हो सकता है जब उनको अपने स्थानीय वातावरण के साथ जोड़कर सीखाया जाए जैसे आदिवासी व्यक्ति का जीवन पूरी तरह उसके पर्यावरण से जुड़ा हुआ रहता है इसलिए उसको ऐसी पद्धति की जरूरत होगी जो उनकी सांस्कृतिक जरूरतों के प्रति संवेदनशील बनाते हुए परम्पराओं और सीखने की शैलियों के प्रति जागरूक बनाए ।सामान्यतया माना जाता है कि सीखना सिर्फ स्कूल जैसी जगह पर ही संभव है । जबकि सीखने का अधिकांश भाग स्कूल के बाहर ही सम्पन्न होता है ।स्कूल में सीखना काफी संरचनात्मक तरीके से होता है।जिसके अपने विषयवस्तु ,उद्देश्य,विधियाँ निश्चित होती है । स्कूल में सीखने के लिए कुछ सुनिश्चित संसाधनों की भी आवश्कयता होती है जो स्कूलों में को सहज एवं सरल बनाते है । स्कूल के बाहर सीखने के लिए किसी संरचना की आवश्कयता नही होती है ,यह स्वतंत्र रूप से होती है । इस इकाई में स्कूल में सीखना और स्कूल के बाहर सीखना के संबंधों का चर्चा की जाएगी । जिसमें स्कूल के अंदर और बाहर सीखने के सम्बन्धों में विभिन्न विचारकों के विचार के आधार पर समझाने का प्रयास किया गया है ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत, अधिगमकर्त्ता

1. स्कूल के अंदर सीखना और स्कूल के बाहर सीखने के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को समझ पाएँगे ।
2. स्कूल के अंदर सीखना और स्कूल के बाहर सीखने के अन्तर्सम्बन्धों की प्रकृति और संरचना को समझ पाएँगे ।
3. स्कूल के अंदर सीखना और स्कूल के बाहर सीखना के सम्बन्धों के महत्व को समझ पाएँगे ।
4. स्कूल के अंदर सीखना और स्कूल के बाहर सीखना कैसे एक दूसरेको प्रभावित करते है ,इसको समझ पाएँगे ।

3.3 विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने में सम्बन्ध

स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने में घनिष्ट सम्बन्ध है । स्कूलों में सीखना समाज की जरूरतों ,उद्देश्यों और परिस्थितियों के अनुसार ही होता है ,यानि स्कूल में सीखने सिखाने की प्रक्रिया स्कूल के बाहरी समाज की सामाजिक ,आर्थिक ,राजनितिक संदर्भों के अनुसार ही सम्पन्न होती है । मानव व्यवहार में

किस तरह का परिवर्तन करना है ,यह समाज विशेष के जीवन दर्शन ,उसकी संरचना ,सभ्यता ,संस्कृति तथा धार्मिक ,राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों पर निर्भर करता है । यह परिवर्तन का काम स्कूल में सीखने के दौरान कराया जाता है । स्कूल के भीतर और बाहर सीखने की प्रक्रिया चलती रहती है । इन दोनों जगहों में यदि सीखने का सम्बन्ध रहता है तो सीखने की प्रक्रिया सहज एवं सरल तरीके से पुष्ट हो जाती है । कला और कार्य ,समग्र सीखने के अवसर प्रदान करते है ऐसे अनुभव भाषायी रूप से ज्ञात चीजों को सीखने के लिए महत्वपूर्ण होते है विशेषकर नैतिक मुद्दों में ताकि प्रत्यक्ष अनुभवों से सीखा जा सके और जीवन में समाहित किया जा सके । उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि हमारा देश विविधताओं का देश है । जिसमें भिन्न भिन्न जाति, धर्म ,सम्प्रदाय ,समुदाय के लोग रहते है तो हमें स्कूल में बच्चों को विविधताओं का सम्मान करने के लिए सीखाया जाना चाहिए ताकि वह समाज में सभी प्रकार की विविधताओं को समान दृष्टिकोण से देख सके और किसी के साथ कोई भेदभाव न करे ।

स्कूल में सीखने सीखाने के लिए उपयोग होने वाले सभी प्रकार के संसाधनों की निर्मिति उसी समाज के आधार पर होती है जिस समाज से बच्चा सीखने के लिए आता है । स्कूल में सीखने के लिए उपयोग किए जाने वाले पाठ्यक्रम ,पाठ्यचर्या ,विषयवस्तु ,शिक्षण विधियाँ बच्चें के समाज को ध्यान में रखते हुए ही निर्मित की जाती है। जिसके माध्यम से कुछ लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है जो सभी वर्ग के लोगों की सामूहिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते है ,लोकतंत्र में जो सभी के लिए अच्छा हो ,ऐसे अपेक्षित सामाजिक जीवन की संकल्पना करने और उसे पाने की तरफ बढ़ने की क्षमताओं का विकास में मदद करते है । जिसके द्वारा बच्चा न सिर्फ स्कूल पूर्व के सीखना को स्कूल में सीखना से जोड़ते हुए अपने समाज में समायोजन की क्षमता हासिल करता है बल्कि सामाजिक ,आर्थिक ,सांस्कृतिक और जीविकोपार्जन की उत्पादकता को भी हासिल करता है ।

बच्चों को हमेशा बाहर की जाने वाली गतिविधियों से सीखने में , अपने चारों ओर की चीजों का निरीक्षण करने में और जमीन पर नक्शा बनाने में आनंद आता है । उन्हें गाँव के इतिहास के बारे में सीखने, उसकी घास, जंगल,फसलों जमीन और पानी के बारे में जानना अच्छा लगता है । उन्हें जल स्रोतों की माप करने में भी मजा आता है । किताबों में उन्होंने जो कुछ भी पढ़ा है उसका संबंध अपने आसपास की चीजों से जोड़ना ,उसके बारे में सवाल पूछना और फिर दूसरे बच्चों के साथ उनके उत्तर खोजने में भी उनको अच्छा लगता है (दीवान: 2016)।

विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने के सम्बन्धों को दो तरीके से समझ जा सकता है पहला सैद्धांतिक आधार पर दूसरा व्यवहारिक आधार पर ,जिसके अंतर्गत विभिन्न लोगों द्वारा की गयी बहस को भी शामिल किया जा सकता है ।

3.3.1 सैद्धांतिक आधार पर विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने में सबंध

सैद्धांतिक आधार पर विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने के संबंध को हम विभिन्न दस्तावेजों का आधार पर देखेंगे कि प्राय : दस्तावेज विद्यालय और विद्यालय के बाहर सीखने के संबंधो के बारे में क्या कहते है?

स्कूल में सीखने का आरम्भ भी बच्चें के उस समाज से होना चाहिए जिस समाज से बच्चा आता है ताकि उसका सीखना आसान होने के साथ जायज भी हो । जिसकी बात एनसीएफ (2005) भी करता है कि बच्चें का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है जिसमें ज्ञान अपना महत्व अर्जित करता है । परिवेश के साथ अंतक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है ।इसलिए इस दस्तावेज में हम शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के महत्व पर जोर दे रहे है ; सीखने को बच्चें के परिवेश में स्थित करने पर और स्कूल एवं बच्चें के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा रेखा को सरंध्र बनाने पर जोर दे रहे है । ऐसा केवल इसलिए नही कि अपने परिवेश में बच्चों का अपना अनुभव ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है बल्कि इसलिए भी कि ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है । यह केवल साधन नही है ,बल्कि साधन और साध्य दोनों है । इसके लिए हमें ज्ञान को व्यावहारिक बनाने की जरूरत नही होती न तात्कालिक रूप से प्रासंगिक बनाने की ,बल्कि इसके द्वारा संसार से जुड़ते हुए इसकी गत्यात्मकता को पहचानने की ।

"शिक्षा बिना बोझ के"(1993) अनुसार भी स्कूलों में सीखने का कार्य बच्चों के आस पास के वातावरण से जोड़कर करना चाहिए । जिससे बच्चा स्कूल ज्ञान को अपने आसपास के वातावरण या अपनी विरासत से करते हुए समझ सके ,उन्होंने किस परिवार,समुदाय में जन्म लिया है। स्कूल औपचारिक शिक्षा की जिन प्रक्रियाओं को संभव बनाते है वे विद्यार्थियों के जीवन में समझ व दुनिया से जुड़ने की नई संभावनाएं खोल सकती है । स्कूलों में सीखना बाल केन्द्रित होने चाहिए । बाल केन्द्रित शिक्षाशास्त्र के अनुसार बच्चों के अनुभव ,उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना । इस प्रकार के शिक्षाशास्त्र में बच्चों के मनोविज्ञानिक विकास व अभिरुचियों के मद्देनजर शिक्षा को नियोजित करने की आवश्कयता होती है । इस लिए शिक्षा की योजना ऐसी हो कि वह विशेषताओं व जरूरतों की विशाल विविधताओं के तहत भौतिक ,सांस्कृतिक व सामाजिक प्राथमिकताओं को संबोधित करे । इस प्रकार अपने आपमें सक्रिय सामाजिक गतिविधि है । जिसको स्कूल के बाहरी समाज से जोड़े जाने की जरूरत है ।

स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने के बीच के संबंधों को हम कुछ विचारकों के उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार आधार पर समझ सकते है –

3.3.2 गाँधी के अनुसार शिक्षा

गाँधी (1937) के अनुसार स्कूली शिक्षा या स्कूलों में सीखने सिखाने की प्रक्रिया सामाजिक ,राजनैतिक ,आर्थिक जरूरतों के अनुसार होनी चाहिए ताकि सीखने वाले के द्वारा उसका उपयोग अपने जीवन में

सार्थक तरीके के साथ कर सके। समाज में व्याप्त असमानता ,गरीबी ,अचेतना जैसी समस्याओं के ध्यान में रखते हुए गाँधी ने बुनियादी शिक्षा को लाया ।बुनियादी शिक्षा पर बात करते समय हमें इसकी पृष्ठभूमि को भी समझने की आवश्कयता है। तत्कालीन औपनिवेशिक काल में गाँधी ने शिक्षा को एक ऐसा साधन के रूप में चुना जो न केवल लोगों में केवल राष्ट्रवाद की भावना को उतन्न करते हुए राजनैतिक एकता की भावना पैदा कर सके बल्कि बेरोजगारी, लोगों में व्याप्त असमानता ,छुआछुत ,जातिगत भेदभाव जैसी सामाजिक बुराइयों का भी समाधान कर सके। इसलिए गाँधी ने इन सारी समस्याओं का समाधान करने के लिए शिक्षा को चुना जिसको बुनियादी शिक्षा का नाम दिया गया ,जिसकी एक बड़ी विशेषता उसका कार्य उत्पादक श्रम पर आधारित होना है । जिसकी कुछ शर्ते इस प्रकार है –

- पूरी शिक्षा व्यवस्था स्वालम्बी होनी चाहिए यानि आखिर में पूँजी को छोडकर सारा खर्च उसे खुद देना चाहिए।
- इसमें आखिरी दर्जे तक हाथ का पूरा पूरा उपयोग किया जाए। विद्यार्थी अपने हाथों से कोई न कोई उद्योग धंधा आखिरी दर्जे तक करे।
- सारी तालीम विद्यार्थियों को प्रांतीय भाषा द्वारा दी जाए।
- इसमें साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा के लिए जगह नही होनी चाहिए लेकिन बुनियादी नैतिक तालीम के लिए काफी गुंजाइश होगी।
- यह तालीम फिर बच्चें ले या बड़े ले,औरत ले या मर्द विद्यार्थियो के घरों में पहुचेगी।
- इस तालीम को पाने वाले विद्यार्थी अपने आपको सारे हिदुस्तान का नागरिक समझेंगे।

गाँधी का मानना था कि जिस देश में लाखों लोग भूखे मर रहे हो वहां बौद्धिकपूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची शिक्षा है, अक्षर ज्ञान हाथ की शिक्षा के बाद आना चाहिए। गाँधी जी उत्पादक आधारित शिक्षा देना चाहते थे ताकि बच्चा अपने समाज के लिए कुछ कर सके। गाँधी शिक्षा द्वारा ऐसी सीख लोगों में विकसित करना चाहते थे, जिससे समाज में व्याप्त गरीबी ,अस्पृश्यता ,राजनैतिक असमानता जैसे मुद्दों के प्रति लोगों में न सिर्फ लोगों में संवेदनशीलता उत्पन्न हो बल्कि इसका समाधान भी किया जा सके ,जो सामाजिक जरूरत के आधार पर तय किया गया था ।जिसकी झलक हम बुनियादी शिक्षा के निर्धारित पाठ्यक्रम में देख सकते है।

जिसमें उत्पादक आधारित सीखना पर खासतौर से बल दिया गया है । उत्पादक आधारित सीखने के अंतर्गत स्कूलों में कताई बुनाई ,चमड़े का काम जैसे अन्य कामों को पर बल दिया गया ,ताकि समाज में काम आधारित सामाजिक भेदभाव या जाति भेदभाव समाप्त किया जा सके ,साथ ही इसके महत्व को भी लोग समझते हुए इसके पीछे के आर्थिक पहलू को पहचान सके और हस्त निर्मित वस्तुओं का विक्रय करके व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकता है।

बुनियादी तालीम पर विचार करते हुए कृष्ण कुमार (1998) ने इसके तीन मुख्य बाते बताई है –

- पहला –स्कूलों में हाथों से काम करना सीखाया जाना चाहिए।
- दूसरा – स्कूल की शिक्षा बच्चें के परिवेश से जुड़ी होनी चाहिए।
- तीसरा – स्कूल में जो कुछ भी सीखाया जाय , जो भी कौशल सिखाए जाय ,बच्चों को ज्ञान के जिन पहलूओं से परिचित कराया जाए वे एक दुसरे से पृथक नही होने चाहिए ,बल्कि एकीकृत /समग्र होना चाहिए। वे आपस में जुड़े होना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा के विचार मूलरूप से जीवन के काम से सम्बन्धित है अर्थात ऐसे कामों से जो जीवन जीने में सहायता करते है। उन सभी कामों को नियमित रूप से और कुशलतापूर्वक किए बगैर जीवन को नही जिया जा सकता। ऐसे कामों को करने में जिनमे जिम्मेदारी निहित होती है , शुरू से ही बच्चों को शामिल करना ही बुनियादी शिक्षा का मूल विचार है । चाहे वह स्कूल की सफाई करना हो ,शौचालय का रखरखाव करना हो। हस्तकौशल का उद्देश्य स्कूलों में दिए जाने वाले ज्ञान के पुरे समाजशास्त्रीय ढाचें को निचे से बदलना था। इस हस्तकौशल में शामिल कटाई बुनाई ,रंगाई ,चमड़े के काम को समाज के निचलें तबके तक सिमित न रखकर सभी तक पहुंचकर ,काम के आधार पर बने जाति के ढांचे को तोड़ना इस शिक्षा का बुनियादी काम था (कुमार कृष्ण)।

सुजीत सिन्हा (2016) के अनुसार बुनियादी शिक्षा में विद्यार्थियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की विक्री के माध्यम से स्कूलों के वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर होने की बात की थी। इस रूप में कहा जा सकता है कि स्कूल सिर्फ ऐसे स्थान नही होते है जहाँ विद्यार्थी शिक्षित होते है और आगे की पढाई तथा प्रशिक्षण के लिए तैयार किए जाते है बल्कि जहाँ उन्हें अपने पाठ्यक्रम के हिस्से के रूप में ,विभिन्न तरीकों से उन्हें स्थानीय समाज में योगदान भी देना चाहिए और एक अर्थ में जितना उन्हें समाज से मिलता है उतना ही लौटना भी होता है।

बुनियादी तालीम सिर्फ शिक्षा पद्धति माना जाता है जो उत्पादक कार्य पर आधारित है ।पर स्पष्ट होना चाहिए कि जहाँ उत्पादक कार्य इसका आधार है वही काम के द्वारा सीखना भी इसकी अनोखी विशेषता है।

3.3.3 जॉन ड्युई के अनुसार शिक्षा

"सच्ची शिक्षा सामाजिक परिस्थितियों की जिनमें कि बच्चा अपने आपको पाता है ,मांगों से उसकी शक्तियों के उद्दीपन द्वारा प्राप्त होती है । इन मांगों के द्वारा उसे एक इकाई के सदस्य के रूप में काम करने अपनी क्रिया और अनुभूति की मूल संकीर्णता से उपर उठने और समूह के कल्याण की दृष्टि से अपने बारे में सोचने का उद्दीपन मिलता है उसके अपने क्रिया कलापों के प्रति दूसरों की जो अनुक्रियाएँ होती है उनसे वह जान पाता है कि सामाजिक तौर पर उन क्रिया कलापों का क्या अर्थ है"।।

जॉन ड्युई (2008) के अनुसार शिक्षा सामाजिक तानाबाना है। स्कूलों में सीखने सिखाने की प्रक्रिया न सिर्फ जीवन की आवश्कयता के लिए बल्कि सामाजिक कार्यों को ध्यान में रखते हुए समाज की बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुरूप होने चाहिए ये आने वाले नए समाज की जरूरतों को पूरा करने की कोशिश होती है। ड्युई के अनुसार स्कूलों की शिक्षा द्वारा बच्चों में ऐसी क्षमता विकसित करनी चाहिए जिससे वह अपने आसपास के वातावरण की ऊर्जा का न सिर्फ उपयोग कर सके बल्कि उनका पुनः नवीनीकरण कर सके। यहाँ पुन नवीनीकरण से तात्पर्य हस्तांतरण से है। किसी सामाजिक समूह के नवीनीकरण के द्वारा अनुभव की निरंतरता कायम रहती है। शिक्षा अपने व्यापक अर्थ में जीवन की इस सामाजिक निरंतरता का माध्यम होती है। ड्युई के अनुसार सीखने के द्वारा ही परिपक्व पीढ़ी से अपरिपक्व पीढ़ी में सामाजिक आस्थाओं ,मूल्यों ,सुखों दुखों और प्रथाओं का भी पुनः सृजन होता है।

स्कूल सामुदायिक जीवन का वह रूप मात्र है जिसमें उन सारी एजेंसीओं को संकेंद्रित कर दिया जाता है जो सभ्यता के विरसे में मिले संसाधनों में बच्चें की साझेदारी की संभावना को सबसे प्रभावी ढंग से साकार कर सकती है और उसकी शक्तियों को सामाजिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग कर सकती है। स्कूलों में सीखने के अंतर्गत बच्चें के यथार्थ और जीवन पहलूओं को बताया जाना चाहिए ऐसा जीवन जिस बच्चें अपने घर ,मोहल्लें और खेल के मैदान में जीते है।

जॉन ड्युई मानना है कि स्कूलों के पाठ्यक्रम निर्माण में बच्चें का सामाजिक जीवन के विभिन्न आयामों को ध्यान में रखना चाहिए। बच्चें के सामाजिक जीवन उसके सारे प्रशिक्षण या विकास के संकेंद्रण या सहसम्बन्ध का आधार होना चाहिए। बच्चें का सामाजिक जीवन उसकी सारी उपलब्धियों और चेष्टाओं की पृष्ठभूमि तय करता है। इनके अनुसार शिक्षा जीवन जीने की तैयारी की जगह जीवन जीना है ।सीखने का उद्देश्य निश्चित नही होना चाहिए। यह समय और परिस्थितियों का अनुसार बदलता रहता है। शिक्षा के माध्यम से ड्युई बच्चों में एक ऐसी क्षमता विकसित करना चाहते है जिसके माध्यम से ये बदलते हुए परिस्थितियों में अपने आपको को समायोजित कर सके।

गाँधी और जॉन ड्युई के अलावा रवीन्द्रनाथ टैगोर ,जिद्दु कृष्णमूर्ति ने सीखने को खोज एवं रचनात्मक प्रक्रिया बताते हुए इसको इसको प्रकृति के साथ अंतक्रिया कृते हुए दिया जाना चाहिए। जिसमें टैगोर का मानना है कि "शिक्षा के विषय में विद्यार्थी के मन में इस प्रकार का संस्कार कभी कदापि नही बैठना चाहिए कि पुस्तकें पढ़ना ही सीखना कहलाता है ,यह बात उन्हें पग पग पर बताने की आवश्कयता है कि पुस्तकों में जो विद्या का एकत्र कोष विद्यमान है ,वह प्रकृति के कभी समाप्त न होने वाले कोष से ही लिया गया है ।अर्थात मनुष्य को प्रकृति के साथ मिलने से जो कुछ प्राप्त होता है वही पुस्तकों में लिखा जाता है। आजकल पुस्तके पढ़ने का रोग बहुत बढ़ता चला जा रहा है। इसलिए बच्चों को इसके दोष भली प्रकार समझा देने चाहिए"।

टैगोर(1968) बच्चें के स्वभाव और उसकी क्षमताओं में अतुलनीय विश्वास करते हुए उसके मस्तिष्क को तुलना वृक्ष से करते हुए कहते है कि "बच्चों का एक सक्रिय अवचेतन मष्तिष्क होता है जो पेड़ की तरह अपने आसपास के वातावरण से अपने लिए खुराक ग्रहण करता है। उनके लिए वातावरण नियमों और

पद्धतियों ,इमारतों ,कक्षा की शिक्षाओं और पाठ्य द्वारा निर्धारित पुस्तकों से बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है। वातावरण ही उसके जीवन की उत्प्रेरक शक्ति है। वातावरण जैसे उनके लिए निरंतर शिक्षा परिवृत है। मनुष्य भी समाज में अपने लिए संस्कृति का वातावरण चारों ओर फैला हुआ पाता है। संस्कृति मानव मास्तिष्क को उसकी नस्ली विरासत, परम्परा से प्राप्त प्रभावों के प्रवाह के प्रति संवेदनशील बनाए रखती है ,उसके लिए जमानों से चली आ रही संगठित सूझ को अनायास प्राप्त करना सहज बना देती है ।लेकिन शैक्षिक संगठनों में हम खान खोदने वालों की तरह यंत्र के जरिए कठोर श्रम कर धरती से कुछ मूल्यवान प्राप्त करने के लिए जमीन खोदते रहते है : जमीन जोतने वाले की तरह आचरण नही करते ,जिसके श्रम का प्रकृति के साथ वातावरण से सहानुभूति के सम्बन्ध जैसा पूर्ण सहयोग परक रिश्ता होता है।

उपरोक्त विचारकों के विचार के आधार पर कहा जा सकता है स्कूलों में सीखना कोई पृथक या समाज से अलग नही प्रक्रिया हो सकती। स्कूलों में सीखने को लेकर गाँधी ने जहाँ इसको उत्पादक आधारित बताया वही ड्युई ने स्कूली सीखना को सम्प्रेष्ण और हस्तांतरण का आधार मानते हुए इसको ऐसा साधन माना है जिसके माध्यम से बच्चों में ऐसी क्षमता विकसित करना चाहते है जिससे बच्चें अपने वातावरण की उर्जा का सिर्फ उपयोग करते हुए उसमें न सिर्फ समायोजन कर सके बल्की उसका पुनरुत्पादन भी कर सके। गाँधी स्कूलों में उत्पादक आधरित सीखाने के अंतर्गत स्कूलों में सिलाई ,बुनाई ,चमड़े के काम, कृषि जैसे कामों को सीखने की बात कहते है जिससे न सिर्फ लोगों की स्थिति में सुधार हो बल्कि व्यक्तित्व का समावेशी तरीके से विकास भी हो। टैगोर ने प्रचलित स्कूली शिक्षा व्यवस्था को सिरे से ख़ारिज करते हुए मानते है कि अप्राकृतिक संसाधनों के बढ़ते दौर में पाठ्यपुस्तकें लोगों की सृजनात्मक क्षमता को सिमित कर रही ,बाजारवादी वस्तुओं के अनुसार लोगों अपने को सीमाओं में बढ़ लिया है । टैगोर खुले प्राकृतिक वातावरण में सीखने की बात करते है जहाँ पर बच्चों में खोजी, सृजनात्मक क्षमता के साथ विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास हो सके।

3.4 स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने सीखने की आलोचनात्मक समझ

अभी तक हमने स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने के सम्बन्धों में यह देखने का प्रयास किया कि , इनके बीच क्या सम्बन्ध है, विभिन्न दस्तावेजों के अनुसार स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने में क्या सम्बन्ध होने चाहिए ? ,विभिन्न विचारकों के अनुसार स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने में क्या सम्बन्ध है ; को देखने का प्रयास किया।

स्कूलों में सीखने सीखाने की विषयवस्तु , पाठ्यक्रम स्कूल के बाहरी समाज को ध्यान में रखते हुए ही शामिल किए जाते है जिसकी चर्चा उपर की गयी है । लेकिन फिर भी स्कूल के किसी स्तर पर क्या सिखाया जाय ? कैसे सीखाया जाय ?क्यों सीखाया जाय ?; ये आज भी सीखने के लिए समस्यात्मक बने हुए है। जिसको लेकर न सिर्फ कुछ शिक्षाविदों ने बल्कि दस्तावेजों ने भी एतराज जताया है ।आज भी स्कूलों में सीखने सीखाने की प्रक्रिया बच्चें के आसपास के वातावरण को ध्यान में रखते हुए नही होती

उनके अनुभव को स्कूलों के अनुभव के साथ जोड़कर नही बताया जाता है। शिक्षा की समिति बिना बोझ(1993) के अनुसार स्कूलों में शिक्षा /पढ़ाई तब तक एक आनन्दपूर्ण अनुभव नही हो सकती है जब तक बच्चों के सम्बन्ध में हम अपनी इस समझ को न बदल ले कि बच्चें ज्ञान के ग्रहणकर्त्ता मात्र है और पाठ्यपुस्तकें ही परीक्षा का आधार है ,साथ ही इस समिति ने पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में की रूपरेखा का विशेष सुधर लाने की कि समाज को इस मानसिकता में बदलाव आना चाहिए जो बच्चों पर उग्र रूप से प्रतिस्पर्धी बनने व असामान्य योग्यता दर्शाने के लिए दबाव डालती है ...स्कूली पाठ्यचर्या और परीक्षा व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन किए जाए ...स्कूली जानकारी बच्चें को प्रतिदिन के अनुभव से अलग कर देती है।

एनसीएफ (2005) ने सीखने के पहलुओं को लेकर असंतोष जताते हुए कहा है कि

- स्कूल व्यवस्था में एक विशेष प्रकार की कठोरता है जो बदलाव के मार्ग पर एक बाधा की तरह खड़ी हो जाती है।
- सीखना एक प्रकार से अलग थलग गतिविधि हो गयी है जो बच्चों को अपने ज्ञान को जैविक व जीवंत तरीके से जीवन से जोड़ने को प्रोत्साहित नही करती है।
- स्कूल इस तरह की विचार पद्धति को प्रचारित करते है जो रचनात्मक चिंतन व अंतर्दृष्टि को हतोत्साहित करे।
- स्कूलों में सीखने सीखाने के नाम पर जो कुछ भी दिया जाता है वह नयी जानकारी व ज्ञान रचने की मानवीय सामर्थ्य के महत्वपूर्ण आयाम को अनदेखा कर देता है।
- बच्चें का भविष्य अब इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि बच्चों के वर्तमान को अनदेखा किया जा रहा है जो बच्चें समाज और राष्ट्र के लिए अहितकर है।

स्कूलों में सीखने के अंतर्गत दस से चार बजे तक जो कुछ भी हम कंठस्थ करते है जो कुछ पढ़ते है उसके जीवन के साथ और मनुष्य के साथ तथा घर के साथ कोई सम्बन्ध नही दिखाई देता है। घरों में माता पिता सम्बन्धी ,मित्र आदि जो कुछ बातचीत करते है और जिन विषयों पर वार्ता होती है ,हमारी पाठशालाओं की शिक्षा के साथ उनका मेल नही होता है बल्कि कई बार उनमें बहुत मतभेद पाया जाता है। ऐसी स्थिति में हमारी पाठशाला एक प्रकार के इंजन है। वह भिन्न वस्तुओं को आपस में जोड़ अवश्य सकते है परन्तु उनमें जीवन नही डाल सकते। हमें उनसे निर्जीव शिक्षा मिलती है (टैगोर1997)।

सीखने की समस्या तब खड़ी होती है जब बच्चों का पर्यावरण और सांस्कृतिक परिवेश वह नही होता है ।आमतौर पर सभी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में एक जैसी सामग्री होती है जिसका उपयोग उसमें बिना कोई परिवर्तन किए शहरी तथा ग्रामीण दोनों ही परिवेशों में किया जाता है। शिक्षण पद्धति को सिर्फ वैज्ञानिक उपकरण की तरह नही बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें विभिन्न सीखने को एक सांस्कृतिक जाल की तरह बुना जाता है ।उसमें विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों तथा कक्षा में और कक्षा के बाहर सीखने सीखाने के व्यवहारों को भी समाहित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने के बीच के सम्बन्ध एक लक्ष्य है जिसको प्राप्त करने के लिए समिति ,नीतियों ,विचारकों द्वारा सुझावित और निर्देशित किए जा रहे है।

3.5 सारांश

स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने के बीच के सम्बन्धों के बारे में कहा जा सकता है कि स्कूल के बाहर सीखना, स्कूल में सीखने के बगैर हो सकता है लेकिन स्कूल में सीखना ,स्कूल के बाहर सीखने के बगैर नही हो सकता अर्थात स्कूल में सीखना ,स्कूल के बाहर सीखने पर आधारित होना चाहिए। स्कूलों में सीखने सीखाने की विषयवस्तु से लेकर प्रक्रिया तक बाहरी समाज पर आधारित होता है। सामाजिक जरूरतों ,उद्देश्यों के अनुसार स्कूली शिक्षा में सीखना तय होता है। इस तरह के सीखना से न सिर्फ सीखना होता है बल्कि हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक जैसी अन्य परम्पराओं का संवहन भी होता है और अपने जरूरत की चीजों को इजाद करने की क्षमता का भी विकास होता है क्योंकि स्कूली सीखने के अंतर्गत जब बाहरी हस्तकला जैसी अन्य गतिविधियों के बारे में बताया जाता है तो उससे विद्यर्थी में मौजूद कौशल का और विकास होता है। इस प्रकार से स्कूल में सीखना स्कूल के बाहर की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने के बीच सम्बन्ध पर टिप्पणी लिखिए ?
2. " स्कूलों में सीखायी जाने वाली विषयवस्तु और सीखने की प्रक्रिया आसपास के वातावरण के अनुभव के आधार पर होनी चाहिए" आप अपने स्कूली अनुभव के आधार पर बताईये कि इन मुद्दों को कितना महत्व दिया गया था ?
3. दस्तावेजों के अनुसार स्कूल और स्कूल के बाहर सीखने में कैसा सम्बन्ध होने चाहिए ?

3.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा,(2005).राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् ,नई दिल्ली
2. कुमार,कृष्ण.(1998).शिक्षा और ज्ञान,ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन.दिल्ली
3. ड्युई,जॉन.(2008).शिक्षा और लोकतंत्र.ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन.दिल्ली
4. सिन्हा,सुजीत.(2016).नई तालीम,आज कुछ समस्याएं और सम्भावनाए,उत्पादक काम और शिक्षणशास्त्र.लर्निंग कर्व.अजीम प्रेमजी फाउंडेशन ,बंगलौर

5. अनु.कृष्ण.(2016).काम और शिक्षा ;थुलीर के अनुभव.उत्पादक काम और शिक्षणशास्त्र,लर्निंग कर्व.अजीम प्रेमजी फाउंडेशन .बंगलौर
6. टैगोर,आर.(1962).शिक्षा.सन्मार्ग प्रकाशन. दिल्ली
7. होल्ट,जॉन.(2007).शिक्षा के बजाय .एकलव्य प्रकाशन .होशंगाबाद
8. टैगोर,रवीन्द्रनाथ.(1997). कवि का स्कूल,रवीन्द्रनाथ का शिक्षा दर्शन.ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन .दिल्ली
9. शिक्षा बिना बोझ के.(1993).मानव संसाधन विकास मंत्रालय.दिल्ली
10. दीवान ,एच .कान्त.(2016).बुनियादी शिक्षा का मूलतत्व,उत्पादक काम और शिक्षाशास्त्र.लर्निंग कर्व.अजीम प्रेमजी फाउंडेशन. बंगलौर
11. गाँधी ,(2011).मेरे सपनों का भारत,नवजीवन प्रकाशन मंदिर,अहमदाबाद

3.7 सहयोग/सहायक सामग्री

1. ड्युई,जॉन.(2008).शिक्षा और समाज .आकर पब्लिकेशन .दिल्ली
2. पी,सारंगपानी.(2003).कंस्ट्रक्शन ऑफ़ नॉलेज .सेज पब्लिकेशन .दिल्ली
3. पोजीशन पेपर ,(2005).काम और उत्पादकता .एनसीएफ,राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद ,दिल्ली

3.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्कूल औए स्कूल के बाहर सीखने के सम्बन्धों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ?
2. विभिन्न विद्वानों के अनुसार स्कूल शिक्षा/सीखना के बारे व्यक्त विचारों की व्याख्या कीजिए ?

खण्ड 4

Block 4

इकाई 1 - शिक्षण: एक जटिल गतिविधि

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 शिक्षण
1.4 भारतीय सन्दर्भ में शिक्षण
1.5 शिक्षण एक जटिल गतिविधि के रूप में
1.6 शिक्षक द्वारा निभाई जाने वाली विभिन्न भूमिकाएं
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 सन्दर्भ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अब तक आप इससे पहले के खण्डों में अधिगम के विषय में एक गहरी समझ बना चुके होंगे। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के अन्तर्गत सीखना और सिखाना दोनों ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दोनों प्रक्रियाएं एक दूसरे से परस्पर सम्बंधित हैं।

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप शिक्षण के बारे में अपनी समझ विकसित करेंगे। आप जानेंगे कि शिक्षण एक गतिविधि व व्यवसाय के रूप में क्या भूमिका निभाता है? साथ ही आप यह भी जानेंगे कि शिक्षण एक औपचारिक व्यवस्था में किस प्रकार संभव होता है। भारतीय सन्दर्भ में शिक्षण के प्रति रवैये को भी आप समझ सकेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप एक शिक्षक या शिक्षिका के रूप में अपनी भूमिका को बेहतर तरीके से समझ पायेंगे। इसके साथ साथ आप शिक्षण को औपचारिक स्थिति में समझकर स्वयं को इस व्यवसाय के लिए तैयार भी कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. शिक्षण को एक जटिल गतिविधि के रूप में समझ सकेंगे।
2. जानेंगे कि शिक्षण एक व्यवसाय के रूप में क्या भूमिका निभाता है

3. भारतीय सन्दर्भ में शिक्षण व्यवसाय का विश्लेषण कर पाने में समर्थ होंगे
4. एक औपचारिक संस्था में शिक्षक या शिक्षिका द्वारा निभाए जाने वाली विभिन्न भूमिकाओं को समझेंगे
5. शिक्षण में चिंतन (रिफ्लेक्शन) की भूमिका को समझेंगे।

1.3 शिक्षण

अपने जीवन में आप शिक्षण प्रक्रिया से किसी न किसी रूप में अवश्य ही रूबरू हुए होंगे। यह संभव है कि आपने स्वयं एक शिक्षक या शिक्षिका की भांति शिक्षण का अनुभव न किया हो लेकिन आपने कभी न कभी अपने छोटे भाई बहन या पड़ोस के बच्चे को कोई न कोई अवधारणा या प्रत्यय ज़रूर पढ़ाया होगा यह अन्तर्सम्बन्ध किसी कहानी को सुनाने के दौरान भी संभव है । यदि फिर भी आपने ऐसा अनुभव न किया हो तो एक शिक्षार्थी के रूप में आप अवश्य ही शिक्षण की प्रक्रिया का अवलोकन कर पाए होंगे। फिर चाहे वह स्कूल में गणित, हिंदी, या विज्ञानं के शिक्षक या शिक्षिका से पढ़कर अनुभव किया हो या घर में माता- पिता से। यह भी हो सकता है कि आपने ट्यूशन लेते समय इस प्रक्रिया को समझा हो। उपरोक्त प्रत्येक स्थिति में शिक्षण प्रक्रिया को देखा जा सकता है। परंतु हमारी चर्चा का केंद्र इस इकाई में औपचारिक शिक्षा क्षेत्र जैसे स्कूल ही होगा।अन्य अनौपचारिक शिक्षण जैसे होम स्कूलिंग आदि को हम इस इकाई के अन्तर्गत शामिल नहीं करेंगे।

आपने शिक्षण व्यवसाय का चुनाव क्यों किया? इस पर चिंतन कीजिये और उसके पाँच कारण आप नीचे दिए गए स्थान पर लिखिए। यह चिंतन आपको शिक्षण व्यवसाय को समझने में मदद करेगा।

मेरे शिक्षण व्यवसाय चुनने के पाँच कारण :-

1. ……
2. ……
3. ……
4. ……
5. ……

आपके द्वारा वर्णित कारण संभवतः ही आपके किसी दोस्त द्वारा दिए गए कारणों से भिन्न हो सकते हैं। परंतु यहाँ हम उन सामान्य कारणों की चर्चा करेंगे जिसके लिए कोई व्यक्ति शिक्षण व्यवसाय का चुनाव करता है। इसमें शिक्षण के प्रति रूचि व लगाव ऐसा कारण है जो अधिकतर लोगों को शिक्षण व्यवसाय चुनने के लिए प्रेरित करता है। कई लोगों को पढ़ाने में बहुत आनंद मिलता है। उन्हें शिक्षण प्रक्रिया के दौरान शिक्षार्थियों से होने वाली चर्चा व अन्तर्सम्बन्ध से लगाव होता है। यही वजह है कि बहुत से लोग वाणिज्य और प्रबंध संबंधी व्यावसायिक कोर्स करने के पश्चात भी शिक्षण व्यवसाय का चुनाव करते हैं ताकि वे व्यवसाय के चुनाव से संतुष्ट हो सकें। किसी विषय के प्रति रूचि और लगाव भी आपको शिक्षण

को व्यवसाय के रूप में चुनने में मदद कर सकता है। बहुत से लोग जो शिक्षण में रूचि रखते हैं उसका कारण उनके द्वारा चुने गए विषय के प्रति लगाव होता है। आपने देखा होगा कि कुछ शिक्षक स्वयं को शिक्षक न कहके अंग्रेजी शिक्षक, हिंदी शिक्षक या गणित शिक्षक कहकर संबोधित करते हैं इससे प्रतीत होता है कि वह अपने विषय से बहुत गहरे रूप से जुड़े हुए हैं।ऐसे व्यक्ति उस विषय के बारे में जानने के लिए सदैव उत्सुक होते हैं और उस विषय का ज्ञान शिक्षार्थियों के साथ बाँटने से भी उन्हें प्रशंसा मिलती है इसलिए वे शिक्षण व्यवसाय का चुनाव करते हैं ताकि उन्हें यह अवसर सदैव मिलता रहे। आप भी अपने किसी शिक्षक या शिक्षिका को याद कर सकते हैं जो अपने विषय के प्रति काफी उत्सुक रहते थे। शिक्षार्थियों के प्रति लगाव भी शिक्षण व्यवसाय को चुनने का मुख्य कारण बन सकता है। ऐसा बिल्कुल हो सकता है कि आप शिक्षण प्रक्रिया व किसी विषय शिक्षण में रूचि रखने की बजाय शिक्षार्थियों के प्रति लगाव रखें। कई शिक्षक शिक्षण व्यवसाय की स्थिति व तनख्वा से संतुष्ट न होने के बावजूद भी केवल विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए व्यवसाय में बने रहते हैं ताकि विद्यार्थियों का भविष्य बन सके। इसके अतिरिक्त कई लोग शैक्षिक जीवन जीने के लिए इस व्यवसाय का चुनाव करते हैं। वे लोग अपना सम्पूर्ण जीवन केवल शिक्षा को पाने और बाँटने में बिताना चाहते हैं। वे एक शिक्षक के रूप में सदैव नया ज्ञान निर्मित करना चाहते हैं और अपने पूर्व ज्ञान में इज़ाफ़ा करना चाहते हैं और अपनी समझ के आधार पर ज्ञान क्षेत्र में सदैव भागीदार बनना चाहते हैं। इनमें अधिकतर वे लोग शामिल होते हैं जिन्होंने अपना स्कूली जीवन बहुत आनंदपूर्वक गुज़ारा है और सदैव इस तरह के जीवन को जीना चाहते हैं इसलिए वे व्यवसाय के रूप में शिक्षण को चुनते हैं। शिक्षण व्यवसाय को चुनने का कारण इस पेशे में मिलने वाले लाभ भी हो सकते हैं। शिक्षण व्यवसाय की समयावधि अन्य व्यवसाय से कम होने की वजह से भी लोग इस व्यवसाय का चुनाव करते हैं। अक्सर यह कहा जाता है कि शिक्षण में सिर्फ आधे दिन कि नौकरी है । उसी प्रकार शिक्षण व्यवसाय में मिलने वाली छुटियाँ भी कई लोगों के लिए इस व्यवसाय को चुनने का कारण बनती हैं। वर्णित सभी कारण किसी व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय चुनने में और उसमें बने रहने के लिए अभिप्रेरित करती है।

1.4 भारतीय सन्दर्भ में शिक्षण

शिक्षण व्यवसाय व शैक्षिक प्रक्रिया के बारे में एक गहन विश्लेषण करने के लिए यह आवश्यक है कि आप इसको भारतीय सन्दर्भ में समझें। शिक्षण व्यवसाय के बारे में भारतीय समाज में क्या रवैया है व किस प्रकार की विचारधारा है इसको समझने के लिए हमें शैक्षिक प्रक्रिया को पूर्ण रूप में जानना होगा। भारतीय समाज में शिक्षण व्यवसाय के प्रति लोगों की मानसिकता से पता लगता है कि यह व्यवसाय कोई भी व्यक्ति कर सकता है। इस व्यवसाय को करने के लिए किसी खास योग्यता की ज़रूरत नहीं होती। अक्सर यह माना जाता है कि औसत योग्यता वाला व्यक्ति इस व्यवसाय को सरलता से कर सकता है। इस मानसिकता का कारण संभवतः यह हो सकता है कि लोग अनौपचारिक शिक्षा जैसे ट्यूशन पढ़ाना या घर में बच्चों को पढ़ाने और औपचारिक संस्था जैसे स्कूल में शिक्षण के बीच का अन्तर अनुभव कर पाने में असमर्थ होते हैं। इसके साथ ही लोगों को लगता है कि बहुत कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी शिक्षण व्यवसाय

को चुन सकता है क्योंकि यह व्यवसाय चुनौतीपूर्ण प्रतीत नहीं होता है। शैक्षिक योग्यता दृष्टिकोण से भी आप पाएंगे कि स्कूल में शिक्षक बनने के लिए बारहवी कक्षा के पश्चात केवल दो वर्ष शिक्षण क्षेत्र में डिप्लोमा के पश्चात आप आवेदन भर सकते हैं जबकि अन्य क्षेत्रों जैसे वकालत, डॉक्टरी व प्रबंधन आदि के लिए कोर्सअवधि शिक्षण व्यवसाय कि तुलना में कहीं अधिक है। रोजगार के सम्बन्ध में हमें शिक्षण व्यवसाय के प्रति यह देखने को मिलता है कि इस व्यवसाय के लिए बहुत बड़ी मात्रा में आवेदन पत्र प्राप्त किए जाते हैं क्योंकि शिक्षण व्यवसाय में आप किसी भी स्ट्रीम में अथवा विषय में स्नातक करके दो वर्ष का बी.एड. प्रोग्राम करके पद के लिए नियुक्त किए जा सकते हैं।

शिक्षण व्यवसाय के सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर एक नज़र डालने पर हमें वर्तमान में इसके स्वरुप को समझने में मदद मिलेगी। पूर्व ब्रिटिश काल की बात की जाए तो भारत में शिक्षण व्यवसाय को बहुत ऊँचा दर्ज़ा दिया गया था। यह शिक्षण प्रक्रिया मुख्य रूप से आश्रम में गुरु शिष्य के बीच होती थी। लोग अपने बच्चों को ज्ञान प्राप्त करने हेतु गुरु के पास भेजते थे। गुरु का स्थान शिष्यों व अभिभावकों दोनों की नज़रों में काफी ऊँचा था। इस ज्ञान के बदले शिष्य गुरु को जीवनयापन हेतु आवश्यक सामग्री गुरु दक्षिणा के रूप में देते थे। गुरु अपने शिक्षण व्यवसाय से काफी संतुष्ट प्रतीत होते थे। गुरु स्वयं ही शिष्यों को पढाये जाने वाले पाठ्यक्रम का चुनाव करते थे और उस ज्ञान को किस तरीके से संचारित करना है इसका निर्णय भी वे स्वयं ही लेते थे। इसके बाद ब्रिटिश काल में शिक्षण व्यवसाय में काफी बदलाव आया। औपनिवेशिक काल में शिक्षण व्यवसाय को सरकार ने अपने अधीन कर लिया। अब शिक्षकों को एक निर्धारित तनख्वा पर नौकरी पर रखा जाने लगा। शिक्षकों को पहले से ही सरकार द्वारा तैयार पाठ्यक्रम दिया जाने लगा जो उन्हें निर्धारित समयावधि में ही पूरा करना होता था। शिक्षकों के पास अब यह अधिकार नहीं रह गया था कि वे अपने शिष्यों को पढ़ायी जाने वाली विषयवस्तु व विधियों का चुनाव कर सकें। सरकार द्वारा मिलने वाली तनख्वा के कारण अब शिक्षकों को विद्यार्थियों की ओर से मिलने वाली सामग्री जिससे वे अपना जीवनयापन करते थे वह पूरी तरह समाप्त हो गई। शिक्षकों को अब शिक्षण के अतिरिक्त विद्यार्थियों के दाखिलों का रिकॉर्ड, परीक्षा संबंधी रिकॉर्ड आदि का ब्यौरा व्यवस्थित करना होता था जिसके लिए उन्हें अलग से किसी प्रकार की सुविधा नहीं मिलती थी।प्रशासनिक कार्य प्रतिदिन शिक्षण के साथ साथ बढ़ते रहे। इसके अलावा भी शिक्षकों को कई जिम्मेदारियां दिए जाने लगीं जिनका शिक्षण से कोई सम्बन्ध नहीं था। इसमें बच्चों को पोलियो की दवा पिलाना, जनगणना कार्य व मतदान आदि के लिए ड्यूटी करना शामिल था। वर्णित सभी कारणों की वजह से शिक्षण व्यवसाय को निचले स्तर के व्यवसाय के रूप में देखा जाने लगा। इतिहास में आये इस व्यवसाय के स्वरुप में बदलाव को हम आज भी स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। वर्तमान में भी एक शिक्षक या शिक्षिका के ऊपर इतने अधिक कार्य व ड्यूटी डाल दी गई है जिसकी वजह से शिक्षण व्यवसाय ने अपनी महत्ता को भारतीय सन्दर्भ में कहीं खो दिया है। यह बात भी उतनी ही सत्य है कि इस समाज में स्कूली शिक्षण व विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण के दृष्टिकोण में काफी अंतर हैं। विशिष्ट रूप से प्रारंभिक शिक्षकों या प्राथमिक शिक्षकों को सबसे निचले स्तर पर रखा जाता है फिर चाहे वह तनख्वा के नजरिये से हो या स्थिति के नजरिए से। आज के समय शिक्षण व्यवसाय को भारतीय समाज में महिलाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह मानसिकता

भी देखने को मिलती है कि महिलाए शिक्षण की आधे दिन की नौकरी के साथ साथ अपना घर भली भांति संभाल सकती हैं इसलिए रूचि न होते हुए भी उनपर शिक्षण व्यवसाय चुनने के लिए दबाव डाला जाता है। उपरोक्त चर्चा के बाद आप यह समझ पाने में समर्थ होंगे कि भारतीय समाज में शिक्षण व्यवसाय को एक सरल व्यवसाय के रूप में देखा जाता है। अगले भाग में हम शिक्षण को एक जटिल गतिविधि के रूप में जानेंगे।

1.5 शिक्षण एक जटिल गतिविधि के रूप में

जैसा कि हम पहले भी पढ़ चुकें हैं कि अधिकतर लोग शिक्षण व्यवसाय को सरल समझकर उसके विषय में अपनी धारणा बनातें हैं परंतु जब हम शिक्षण की बात एक औपचारिक संस्था जैसे स्कूल या कॉलेज में करते हैं तो हम पाते हैं कि शिक्षण एक चुनौतीपूर्ण व्यवसाय है। औपचारिक संसथान में इस व्यवसाय को समझने पर हम पातें हैं कि यह एक जटिल गतिविधि है। हम निम्न वास्तविकताओं को समझने के बाद ही इसकी जटिलताओं को भली भांति समझ सकेंगे।

i. **विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं का अनुमान न लगा पाना-** शैक्षिक प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षकों के सम्मुख यह सबसे बात बड़ी चुनौती के रूप में उभर कर आती है कि वे पहले से यह अनुमान नहीं लगा सकते कि किसी प्रत्यय अथवा अवधारणा को लेकर विद्यार्थियों की अनुक्रिया क्या होगी। शिक्षण के परिणामों का न तो अनुमान लगाया जा सकता है और न ही ये परिणाम संगत होते हैं। शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया का पूर्ण रूप से सफल होना कभी भी केवल एक ओर से नहीं होता। इसके बहुत से कारक जैसे विषयवस्तु के प्रति रूचि, शिक्षिका की विषय पर पकड़, कक्षा का वातावरण, शिक्षण पद्धति के लिए चुनी गई विधि, शिक्षण- अधिगम सामग्री की प्रासंगिकता, अन्तर्सम्बन्ध के लिए उपयुक्त व पर्याप्त समय इत्यादि ऐसी कारक हैं जो एक साथ मिलकर किसी शिक्षण को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सभी तत्वों के सुचारू रूप से काम करने पर भी विद्यार्थियों की अनुक्रियाओं का शत प्रतिशत अनुमान लगाना असंभव साबित होता है। एक शिक्षक या शिक्षिका चाहे कितनी भी बेहतर पाठ योजना का निर्माण करें परन्तु शिक्षण के दौरान बच्चों का कक्षा में शांत रहना या बीच में बोरियत को अनुभव करना, या विषय के बारे में उलझन महसूस करना आदि के आधार पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि बच्चों ने प्रत्यय को कितना समझा है।

ii. **बच्चे पाठ्यक्रम का अनुभव कैसे कर रहें हैं यह पता लगाना कठिन कार्य है -** बच्चों ने शिक्षण से कितना सीखा या समझा है इसका पता लगाना वाकई शिक्षकों के लिए एक मुश्किल कार्य है। शिक्षण का श्रेष्ठम उद्देश्य यह है कि बच्चों की संसार के तत्वों के बारे में एक गहरी समझ बने, परंतु विद्यार्थियों ने समझा है या नहीं और जिस प्रकार से समझाने का उद्देश्य था उसी प्रकार से समझा या नहीं, इसकी पुष्टि कर पाना बेहद मुश्किल साबित होता है। पाठ्यक्रम के साथ साथ बड़े स्तर पर यह बात पाठ्यचर्या के लिए भी उतनी ही सही साबित होती है। पाठ्यचर्या से

अभिप्राय एक विद्यार्थी द्वारा स्कूल की चारदीवारी में प्राप्त होने वाला प्रत्येक अनुभब है। उदाहरण के रूप में यदि कोई शिक्षक बच्चों को विभिन्न प्रकार के पेड़ों के बारे में बताने के लिए उन्हें स्कूल का एक चक्कर लगाने को कहता है और अलग अलग तरह के पेड़ों का अवलोकन करने को कहता है। चक्कर लगाने के बाद कक्षा में हुए चर्चा के दौरान कई विद्यार्थी अपने अवलोकन को बताते हैं जो उन्होंने पेड़ों के बारे में की थी परंतु कुछ बच्चे चर्चा में भाग नहीं लेते जबकि उन्होंने भी अवलोकन के दौरान जानकारी एकत्र की है हालांकि वह जानकारी पेड़ों पर आधारित न होकर उसी मैदान में मिले पत्थरों के बारे में थी। पाठ योजना के उद्देश्य के अनुसार चर्चा केवल पेड़ों पर आधारित थी इसलिए उन बच्चों के पत्थरों से सम्बंधित अवलोकनों को कक्षा में स्थान नहीं मिल सका। ऐसी परिस्थिति में जब बच्चे किसी भी प्रकार के अधिगम के लिए बिल्कुल आज़ाद होते हैं तो शिक्षिका के लिए यह बहुत मुश्किल हो जाता है कि बच्चे पाठ्यक्रम को कैसे समझ रहें हैं।

iii. **विद्यार्थी साझेदारी की आवश्यकता शिक्षक -** एक शिक्षण- अधिगम प्रक्रिया का सफल होना इस बात पर भी निर्भर करता है कि शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच आपसी तालमेल किस प्रकार का है। शिक्षण प्रक्रिया की जटिलता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि यह प्रक्रिया न तो केवल शिक्षक पर आधारित है और न ही शिक्षार्थी पर। दोनों जब एक सामान्य वातावरण में अंतःक्रिया करते हैं तो ही ये प्रक्रिया संभव होती है। यह समझना आवश्यक है कि शिक्षिका विद्यार्थियों के व्यव्हार में पूर्णतः बदलाव नहीं कर सकती क्योंकि विद्यार्थी एक कोरी स्लेट की भांति नहीं हैं। सामान्यतः बच्चों द्वारा किए जाने वाली अनुक्रिया का अनुमान लगाना भी संभव नहीं है। बच्चे को हम फैक्ट्री में तैयार किए जाने वाले किसी उत्पाद के रूप में नही देख सकते जो जैसा इनपुट दिया जाये उसके अनुसार ही आउटपुट दे। हालाँकि शिक्षा क्षेत्र में कई शिक्षाशास्त्रियों ने बच्चों को निष्क्रिय बताया है परंतु वर्तमान दृष्टिकोण के अनुसार हम जानते हैं कि एक विद्यार्थी की अपनी इच्छाएं व योग्यताएं हैं जिनके अनुसार वह कार्य करता है और शिक्षिका को इन्ही योग्यताओं व रुचियों को समझकर अपने शिक्षण के साथ उसमें सामंजस्य बैठाना होता है। यह तभी संभव है जब शिक्षक व विद्यार्थी दोनों एक साथ मिलकर ज्ञान की प्राप्ति की ओर बढ़ें। शायद इसीलिए शिक्षण प्रक्रिया के समय शिक्षक के सामने विद्यार्थियों के साथ घनिष्ठता का निर्माण (rapport formation) करना एक आवश्यक शर्त होती है जो उससे बच्चों के साथ अंतः क्रिया में मदद करती है और वह अपने विचारों को बच्चों तक भली भांति पहुंचा पाता है।

iv. **प्रत्येक विद्यार्थी का एक दूसरे से अलग होना -** आप पिछले खण्डों में अधिगम के विषय में पढ़ते हुए यह अवश्य जान गए होंगे कि कोई भी दो विद्यार्थी अथवा व्यक्ति एक सामान नहीं हो सकते। विभिन्न मनोवैज्ञानिक व शिक्षाशास्त्रियों ने व्यक्तिगत अंतरों के बारे में बहुत विश्वासपूर्ण व शोध के आधार पर बात करते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2005 के अनुसार भी शिक्षण प्रक्रिया के दौरान बच्चों में व्यक्तिगत अंतर का ध्यान रखने पर खास ज़ोर दिया गया है। यदि किसी एक बच्चे की रूचि पढाई में है, तो दूसरे बच्चे की खेल में हो सकती है, और तीसरे बच्चे

की संगीत में हो सकती है। इसी तरह यह बिल्कुल संभव है कि एक बच्ची किसी अवधारणा को जल्दी समझ लेती है जबकि उसी अवधारणा को कोई दूसरा बच्चा समझने में तुलनात्मक रूप से अधिक समय लेता है। प्रत्येक बच्चे की रूचि, योग्यताएं, क्षमताओं व समझने के तरीके में अंतर होता है और उसी वजह से प्रत्येक बच्चा एक दूसरे से अलग और अपने आप में खास होता है। शिक्षकों के लिए इस स्थिति में शिक्षण प्रक्रिया काफी बड़ी चुनौती पेश करती है क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकताओं व विशिष्टताओं का ध्यान में रखते हुए पाठ योजना बनाना, शिक्षण प्रक्रिया के दौरान होने वाला अन्तर्सम्बन्ध व मूल्यांकन की प्रक्रिया सभी में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

v. **भारतीय कक्षाओं का आकार-** यह बिंदु मुख्य रूप से भारतीय कक्षाओं के सम्बन्ध में हैं जो भारतीय शिक्षकों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती खड़ा करता है। अन्य देशों में जहाँ शिक्षण की गुणवत्ता बनाये रखने के विद्यार्थी शिक्षक अनुपात का खास ख्याल रखा जाता है और उसे कम से कम रखने का भी प्रयास किया जाता है ।वहीँ भारतीय कक्षाओं में आप जानते हैं कि एक एक कक्षा खचाखच बच्चों से भरी होती है। एक कक्षा में औसत पचास बच्चे होते हैं जो एक शिक्षक अथवा शिक्षिका की जिम्मेदारी होती हैं। वही शिक्षिका उस कक्षा के सभी बच्चों के शिक्षण, पाठ्यक्रम सम्पूर्ण करने, बच्चों की जानकारी जमा करने संबंधी रिकॉर्ड कार्य व स्कालरशिप संबंधी कार्यों के लिए जिम्मेदार होती हैं। कई बार तो शिक्षकों की कमी के चलते दो सेक्शन एक साथ मिला दिए जाते हैं जिनकी जिम्मेदारी किसी एक शिक्षक या शिक्षिका को ही उठानी होती है।

vi. शिक्षण व्यवसाय का वर्णन करने में होने वाली कठिनाई - प्रगतिशील ज्ञान के इस दौर में जहाँ हर पल ज्ञान के क्षेत्र में इज़ाफ़ा हो रहा है लोग नयी नयी वस्तुओं की खोज कर रहे हैं, तकनीक का विकास हो रहा है। ऐसे भी एक शिक्षक का ज्ञान कभी भी सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि एक शिक्षक सदैव सीखता रहता है इसलिए वह कभी विद्यार्थी या अधिगमकर्ता की भूमिका से अलग नहीं होता। शिक्षण प्रक्रिया को हम शिक्षक व विद्यार्थी के बीच कहीं स्थित कर सकते हैं हालाँकि यह वास्तव में क्या है इसको बता पाना काफी मुश्किल प्रतीत होता है जिसका अनुभव एक शिक्षक भली भांति करता है। यह मध्य का रास्ता ऐसा है जिसका अनुभव तो एक व्यक्ति कर सकता है परंतु उसके लिए उस अनुभव को शब्दों में बता पाना काफी मुश्किल होता है। शिक्षक बनने की इस यात्रा के दौरान आप भी स्वयं में कई क्षमताओं का विकास करेंगे जैसे आपने विद्यार्थियों को सब्र के साथ सुन पाना और किसी मुद्दे से सबंधित ज्ञान को उनमे विकसित करना आदि परंतु इन सभी के बावजूद यह संभव है कि आप शिक्षण को स्पष्ट भाषा अथवा शब्दों में न बता सकें या उसके लिए कोई निश्चित सूत्र बता सकें। इन सभी कारणों से आप समझ गए होंगे कि शिक्षण एक जटिल गतिविधि के रूप में कैसे काम करता है ? अगले भाग में आप शिक्षक द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं को जानेंगे।

vii. **शिक्षक द्वारा निभाई जाने वाली विभिन्न भूमिकाएं -** इससे पिछले भाग में आपने शिक्षण को एक जटिल गतिविधि के रूप में पढ़ा और यह जाना कि यह व्यवसाय कितना चुनौतीपूर्ण है। आपने शैक्षिक प्रक्रिया के दौरान शिक्षक के सम्मुख आने वाली समस्याओं को जाना जो इस व्यवसाय में होना लाज़मी है। इस भाग के अंतर्गत हम शिक्षण प्रक्रिया का ही गहन अध्ययन करेंगे और इसके लिए हम एक शिक्षक द्वारा निभाई जाने वाली विभिन्न भूमिकाओं को समझेंगे। जैसा कि हम इस इकाई की शुरुआत में पढ़ चुकें हैं कि कई लोगों की शिक्षण व्यवसाय के बारे में जो धारणाएं हैं उसके अनुसार इस व्यवसाय को बेहद सरल माना गया है। शिक्षक द्वारा किए जाने वाले कार्यों का ब्यौरा हमने कुछ हद तक दिया है परंतु एक शिक्षक शिक्षण के दौरान व उसके अलावा कई भूमिकाएं निभाता है जिन्हें हम विस्तार से निम्न भाग में जान सकते हैं :-

- **लाइव प्रदर्शक -** हालाँकि शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षण और अधिगम साथ साथ होता है परंतु यह प्रक्रिया शिक्षक के लिए चुनौतीपूर्ण है क्योंकि उसे सभी विद्यार्थियों के सामने अवधारणाओं को समझाना होता है। शिक्षक इस दौरान एक प्रकार का प्रदर्शक होता है जो लाइव रूप से यह प्रदर्शन करता है। तैयारी के नाम पर शिक्षक पाठ योजना का एक खाका अवश्य बनाता है लेकिन विद्यार्थियों की अनुक्रिया का अनुमान न लगा पाने की वजह से उसे शिक्षण की प्रक्रिया के दौरान भी अपने प्रदर्शन को लगातार सुधारने की कोशिश करनी होती है। इस भूमिका के अंतर्गत शिक्षक से अवधारणा से सम्बंधित व अलग कोई भी प्रश्न पूछा जा सकता है जिसके लिए उसे सदैव तैयार रहने की उम्मीद की जाती है। इसके साथ ही एक शिक्षक को लाइव प्रदर्शन में आने वाली आकस्मिक समस्याओं का भी ध्यान रखना होता है और उनका सामना करने के किए तुरंत ही उपाय भी सोचने होते हैं। उदाहरण के लिए एक शिक्षिका बच्चों को सामाजिक विज्ञानं की कोई विषयवस्तु समझाती है, धीरे धीरे शिक्षिका को यह एहसास होता है की बच्चों की रूचि सम्बंधित विषयवस्तु में खत्म हो रही है या यूँ कहें कि बच्चे बोरियत महसूस कर रहे हैं तो इस स्थिति से निकलने के लिए शिक्षिका को कक्षा में कोई रुचिकर मुद्दा या हंसी मज़ाक का प्रयोग करना पड़ता है ताकि बच्चे बोरियत से निकलकर अवधारणा को पढ़ने के लिए तैयार हो सके। इस तरह की परिस्थितियों की तैयारी पहले से कर पाना मुश्किल है। शिक्षकों को उसी समय किसी न किसी उपाय को सोचना होता है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो इससे शिक्षक विद्यार्थी साझेदारी काफी प्रभावित होती है।
- **समूह नेता -** शिक्षक को स्कूल में एक समूह नेता की भूमिका भी निभानी होती है। उसे अपनी कक्षा को प्रत्येक कार्य व स्थिति के लिए तैयार करना होता है। वह कक्षा में एक मार्गदर्शक की भांति कार्य करता है जिसमें बच्चे स्वयं ही सभी कार्य करते हैं परंतु उन कार्यों को किस तरह किया जाना है इसका समय समय पर मार्गदर्शन शिक्षक को ही करना होता है। उदाहरणार्थ यदि किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए कोई नाटक तैयार करना हो तो उसकी जिम्मेदारी एक शिक्षक पर ही आती है जिसमें उसे बच्चों के समूह को तैयार करना होता है। उसके लिए शिक्षक को प्रत्येक बच्चे की क्षमताओं व विचारों का आदर करते हुए उनकी ऊर्जा को एक सही दिशा में

प्रयोग करना होता है। इस तरह के कार्यों के लिए एक टीम की भांति काम करने की आवश्यकता पड़ती है और उस टीम का नेतृत्व एक शिक्षक को ही करना होता है।

- **कक्षा शिक्षक-** ऐसा नहीं है कि स्कूल के अंतर्गत शिक्षकों को केवल बच्चों को पढ़ाना होता है। शिक्षकों को एक कक्षा की जिम्मेदारी भी पूर्ण रूप से लेनी होती है जिसमें वे एक निश्चित कक्षा के शिक्षक बनाये जाते हैं । उस कक्षा को पढ़ाने के साथ साथ उन्हें उस कक्षा के सभी बच्चों का रिकॉर्ड रखना होता है। इसमें प्रत्येक बच्चे की मूलभूत जानकारी, उसके परिवार की जानकारी, सामाजिक-आर्थिक स्थिति की जानकारी और उनको समय समय पर दिए जाने वाली स्कालरशिप की जानकारी रखनी होती है। प्रत्येक बच्चे के बैंक खाते खुलवाने व उन्हें पैसा बांटने की जिम्मेदारी भी कक्षा- शिक्षक की होती है। शिक्षण के सम्बन्ध में बात करें तो शिक्षक को पहले शिक्षण नियोजन पर कार्य करना होता है जिसमे उसे प्रत्येक बच्चे की आवश्यकताओं व क्षमताओं के अनुसार पाठ योजना का निर्माण करना होता है और फिर प्रत्येक बच्चे के साथ अंतःक्रिया करते समय भी उनके बारे में प्राप्त जानकारी को ध्यान में रखना होता है। इस स्थिति में स्कूल के भीतर एक शिक्षक की पहचान उस कक्षा के प्रदर्शन द्वारा भी की जाती है।
- **काउंसलर -** यह हम सभी जानते हैं कि शैक्षिक प्रक्रिया में हमारा उत्पाद विद्यार्थी होते हैं जिनकी अपनी आवश्यकताएं, रूचि व क्षमताएं होती हैं। प्रत्येक विद्यार्थी एक दूसरे से अलग होता है क्योंकि उनकी सामाजिक- आर्थिक पृष्टभूमि में अंतर होता है यहाँ तक कि मानसिक रूप से भी उनमें विभिन्नताएं होती हैं। ऐसे में एक शिक्षक या शिक्षिका को बच्चों द्वारा अनुभव की जा रही समस्याओं से भी निकलना होता है। एक शिक्षिका को बच्चों से कई मर्तबा उनके करियर व निजी ज़िन्दगी संबंधी समस्याओं को सुनकर उन्हें उससे निकलने के लिए उपाय सुझाना होता है। ऐसी स्थिति के अंतर्गत एक शिक्षक की भूमिका एक परामर्शदाता की बन जाती है।
- **प्रशासक -** शिक्षक को स्कूल के अंतर्गत एक प्रशासक की भूमिका भी निभानी होती है जिसमें उन्हें विभिन्न प्रशासनिक कार्य जैसे स्कूल में दाखिला इंचार्ज, मिड डे मील इंचार्ज, स्कालरशिप इंचार्ज या परीक्षा इंचार्ज बनाया जाता है। उन्हें इन कार्यों के अंतर्गत सभी प्रकार की कागज़ी व तालमेल संबंधी जिम्मेदारी दी जाती है। उदाहरणार्थ यदि एक शिक्षक परीक्षा इंचार्ज है तो उसे पूरे स्कूल की परीक्षाओं को भली भांति करवाने का कार्य करना होता है। उसे सभी कक्षाओं व बच्चों के प्रत्येक विषय का ब्यौरा जमा करना होता है और इससे सम्बंधित नियोजन करके उसे सुचारू रूप से करवाना भी होता है।
- **मूल्यांकनकर्ता -** यह आप जानते हैं कि एक शिक्षक के सम्मुख सभी बच्चों का मूल्यांकन करने की जिम्मेदारी होती है। इसके अंतर्गत उसे बच्चों का पूरे शिक्षण के दौरान व अंत में बहुत ध्यानपूर्वक विश्लेषण करके, उनके प्रदर्शन का अवलोकन करके उनका मूल्यांकन करना होता है। सतत व व्यापक मूल्यांकन के पश्चात यह भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है चूँकि इसमें शिक्षक से यह उम्मीद की जाती है कि वह बच्चों को विषय ज्ञान के साथ साथ उनके द्वारा चुने गए खेल,

संगीत आदि व समूह कार्य के अंतर्गत और विभिन्न मूल्यों के आधार पर उनका मूल्यांकन करके उनका रिपोर्ट बनाये। यह मूल्यांकन शिक्षक स्वयं के शिक्षण को सुधारने के लिए भी करता है।

- उपरोक्त सभी भूमिकाएं एक शिक्षक स्कूल के अंतर्गत शिक्षण के दौरान व उसके साथ साथ निभाता है।

1.7 सारांश

इकाई के अंतर्गत आपने शिक्षण व्यवसाय को समझा और यह जाना कि शिक्षण एक जटिल व्यवसाय के रूप में कैसे काम करता है। भारतीय सन्दर्भ में इस व्यवसाय के प्रति जो धारणाएं हैं वे एक औपचारिक संस्था जैसे स्कूल में शिक्षण की प्रक्रिया को समझने में असमर्थ प्रतीत होती है। शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत विद्यार्थियों की अनुक्रियाएं, उनकी आवश्यकताएं व उनकी रुचियाँ शिक्षक के लिए एक चुनौती पेश करती हैं। भारतीय स्कूलों में यह चुनौती कक्षा के आकार, प्रशासनिक कार्यों व स्कूल के बाहर दिए जाने वाले कार्यों से और अधिक बढ़ जाती है। शिक्षक द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाएं जैसे कक्षा शिक्षक, काउंसलर व मूल्यांकनकर्ता आदि से भी इस व्यवसाय की जटिलता का आभास होता है। आपने यह भी जाना होगा कि चिंतन शिक्षण व्यवसाय में एक मुख्य क्रिया के रूप में काम आता है। शैक्षिक प्रक्रिया के दौरान किए जाने वाले मूल्यांकन व उससे पहले के नियोजन आदि की प्रक्रिया में चिंतन शिक्षक या शिक्षिका को मदद करता है। यह प्रक्रिया अपने आप में ही इस व्यवसाय की जटिलता का विश्लेषण करने योग्य है। प्रगतिशील ज्ञान के इस दौर में स्पष्ट रूप से यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि शिक्षण व्यवसाय की जटिलता में कोई बदलाव संभव है या नहीं।

1.8 शब्दावली

1. **चिंतन(Reflection) -** यह एक महत्वपूर्ण मानव क्रिया है जिसमें लोग अपने अनुभवो को पुनः याद करके, उसके बारे में सोचकर, उस पर विचार करके और उसका मूल्यांकन करके अपने भविष्य की क्रियाओं में सुधार करते हैं।
2. **काउंसलर (Counselor) -** ऐसा व्यक्ति जो दूसरों को सलाह मशवरा देने और उनकी निजी व मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने का कार्य करता है।
3. **प्रशासक (Administrator) -** ऐसा व्यक्ति जो किसी व्यवसाय या संगठन में प्रशासनिक कार्यों जैसे रिकॉर्ड रखना व अन्य कागज़ी कार्यों को संभालता है।

1.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Parkey, Forrest W & Hardcastle, Beverly. 1990. Becoming a teacher: accepting the challenge of a profession. United State of America
2. Colwell, Jennifer & Pollard, Andrew. 2015. Reading for reflective teaching in early education. Blloomsbury, Britain 2015
3. Kumar, Krishna. 1991. Political Agenda of Education. SAGE
4. National Curriculum Framework, 2005
5. https://reflectivepractice-cpd.wikispaces.com/Definitions

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. 1.भारतीय सन्दर्भ में शिक्षण प्रक्रिया पर विवेचन कीजिए।
2. शिक्षण एक जटिल गतिविधि के रूप में कैसे काम करता है?
3. उदाहरण देकर शिक्षक द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं का वर्णन करो।

इकाई 2 - शिक्षण का मूल्यों पर प्रभाव, शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच निजी सम्बन्ध

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा
  2.3.1 शिक्षण का अर्थ एवं परिभाषा
  2.3.2 मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा
  2.3.3 मूल्य की परिभाषायें
  2.3.4 मूल्यों की प्रकृति
  2.3.5 मूल्यों का वर्गीकरण
2.4 शिक्षण का मूल्यों पर प्रभाव
2.5 शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच निजी सम्बन्ध
  2.5.1 छात्र और शिक्षक के बीच बढ़ती दूरियाँ
  2.5.2 कक्षा संप्रेषण का प्रभाव
  2.5.3 कक्षीय समस्याएं
2.6 सारांश
2.7 शब्दाबली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा, समाज की एक पीढ़ी द्वारा अपने से निचली पीढ़ी को अपने ज्ञान के हस्तांतरण का प्रयास है। इस विचार से शिक्षा एक संस्था के रूप में काम करती है, जो व्यक्ति विशेष को समाज से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है तथा समाज की संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है। बच्चा शिक्षा द्वारा समाज के आधारभूत नियमों, व्यवस्थाओं, समाज के प्रतिमानों एवं मूल्यों को सीखता है। बच्चा समाज से तभी जुड़ पाता है जब वह उस समाज विशेष के इतिहास से रूबरू होता है। जब हम शिक्षा शब्द के प्रयोग को देखते

हैं तो मोटे तौर पर यह दो रूपों में प्रयोग में लाया जाता है, व्यापक रूप में तथा संकुचित रूप में। व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। मनुष्य क्षण-प्रतिक्षण नए-नए अनुभव प्राप्त करता है व करवाता है जिससे उसका दिन-प्रतिदन का व्यवहार प्रभावित होता है। उसका यह सीखना-सिखाना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन आदि से अनौपचारिक रूप से होता है। यही सीखना-सिखाना शिक्षा के व्यापक तथा विस्तृत रूप में आते हैं। संकुचित अर्थ में शिक्षा किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालय, महाविद्यालय) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली एक सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्र निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना सीखता है।भारत ऐसी प्रौद्योगिकियों को विकसित कर रहा है जिस में टेलीफोन और इन्टरनेट लीनों की आवश्यकता नही रहेगी इसके बजाय, भारत ने एडुसैट (EDUSAT) नामक, एक शिक्षा उपग्रह का शुभारंभ किया जिस की पहुँच बहुत कम कीमत पर देश के अधिकतं भाग में होगी MIT के एक समूह ने कई प्रमुख निगमों की मदद द्वारा १०० डॉलर का लैपटॉप ($।00 laptop) विकसित करने का बेडा उठाया है यह लैपटॉप २००६ के अंत या २००७ तक उपलब्ध हो जाने चाहिए कीमत पर बेचे जाने वाले लैपटॉप विकासशील देशों में बच्चों को एक डिजिटल शिक्षा का अवसर प्रदान करेगा और दुनिया में डिजीटल विभाजन को रोक देगा। मूल्यों का अस्तित्व, उनमें श्रेष्ठता का भेद ओर सर्वश्रेष्ठ मूल्य का अस्तित्व आदर्शवाद की मौलिक धारणा है। इससे संबद्ध कुछ अन्य धारणाएँ भी आदर्शवादियों के लिए मान्य हैं। कांट के विचार में मानव प्रकृति में प्रमुख अंश 'नैतिक भावना' का है, वह अनुभव करता है कि कर्त्तव्यपालन की मांग शेष सभी मांगों से अधिक अधिकार रखती है, नैतिक आदेश 'निरपेक्ष आदेश' है। इस स्वीकृति के साथ नैतिक स्वाधीनता की स्वीकृति भी अनिवार्य हो जाती है। 'तुम्हें करना चाहिए, इसलिए तुम कर सकते हो।' योग्यता के अभाव में उत्तरदायित्व का प्रश्न उठ ही नहीं सकता। यूनानी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार शिक्षा का चरम लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति है। अत: पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को सम्मिलित करने पर बल देना चाहिए जिसके माध्यम से उक्त लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम सत्यं, शिवं तथा सुन्दरं इन तीनों तत्वों को प्राप्त करना आवश्यक है। ये तीनों आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य की क्रमश: बौद्धिक, नैतिक एवं कलात्मक क्रियाओं के द्वारा प्राप्त होते हैं। अत: प्लेटो पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं के समावेश पर बल देते हैं जो मानव को उपर्युक्त क्रियाओं में दक्षता प्रदान करे। उन्होंने बौद्धिक क्रियाओं के लिए भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित तथा शारीरिक विज्ञान को महत्वपूर्ण बताया है। नैतिक क्रियाओं के लिए धर्म, नीतिशास्त्र, तथा अध्यात्मशास्त्र का और कलात्मक क्रियाओं के लिए विभिन्न कलाओं तथा संगीत का समावेश किया था।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

1. शिक्षा, शिक्षण तथा मूल्य का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
2. शिक्षण का मूल्यों पर प्रभाव क्या है,इसकी व्याख्या करने में सक्षम होंगे ।
3. शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच निजी सम्बन्ध की व्याख्या करने में सक्षम होंगे ।

2.3 शिक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षा में ज्ञान, उचित आचरण और तकनीकी दक्षता, शिक्षण और विद्या प्राप्ति आदि समाविष्ट हैं। इस प्रकार यह कौशलों (skills), व्यापारों या व्यवसायों एवं मानसिक, नैतिक और सौन्दर्यविषयक के उत्कर्ष पर केंद्रित है।

शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्त्व का विकसित करने वाली प्रक्रिया है। यही प्रक्रिया उसे समाज में एक वयस्क की भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है तथा समाज के सदस्य एवं एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए व्यक्ति को आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष्' धातु में 'अ' प्रत्यय लगाने से बना है। 'शिक्ष्' का अर्थ है सीखना और सिखाना। 'शिक्षा' शब्द का अर्थ हुआ सीखने-सिखाने की क्रिया।

विभिन्न दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों व नीतियों ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार दिए हैं। शिक्षा के अर्थ को समझने में ये विचार भी हमारी सहायता करते हैं। कुछ शिक्षा सम्बन्धी मुख्य विचार यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं -

- शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। (महात्मा गांधी)
- मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। (स्वामी विवेकानन्द)
- शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्त्वों का निर्वाह कर सके। (जॉन ड्यूवी)
- शिक्षा व्यक्ति के समन्वित विकास की प्रक्रिया है। (जिद्दू कृष्णमूर्ति)
- शिक्षा का अर्थ अन्तःशक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है। (हर्बट स्पैन्सर)
- शिक्षा मानव की सम्पूर्ण शक्तियों का प्राकृतिक, प्रगतिशील और सामंजस्यपूर्ण विकास है। (पेस्तालॉजी)
- शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है, शिक्षा राष्ट्रीय सम्पन्नता एवं राष्ट्र कल्याण की कुंजी है। (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, ।964-66)

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षा व्यक्ति के_____विकास की प्रक्रिया है।
2. शिक्षा मानव की सम्पूर्ण शक्तियों का प्राकृतिक, प्रगतिशील और _____विकास है।

2.3.1 शिक्षण का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षार्थी को कक्षीय स्थिति में अनुदेशन देना शिक्षण कहलाता है ।(Teaching is the act of imparting instructions to the learners in the classroom situations.) यह पारम्परिक अवधारणा है । इस अवधारणा के अनुसार अध्यापक विधार्थियों को सूचनाएँ देता है । आधुनिक शिक्षार्थियों को शिक्षण की यह पारम्परिक अवधारणा स्वीकार नही है । आजकल शिक्षण को केवल ज्ञान प्रदान करना नही समझा जाता है और न ही यह केवल विधार्थियों को केवल सूचना देने तक सीमित है । ज्ञान प्रदान करते समय अध्यापक को विषय –वस्तु के विधिवत प्रस्तुतिकरण के साथ –साथ बच्चे की ओर भी ध्यान देना होता है । शिक्षण विधार्थी के लिए वांछित ज्ञान एवं कौशल प्राप्त करने तथा समाज में रहने की वांछित विधियां सीखने के कारण पैदा करना है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिस में विधार्थी ,अध्यापक ,पाठ्यक्रम तथा अन्य विभिन्न वस्तुओं को पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विधिवत एवं मनोवैज्ञानिक रूप से गठित किय जाता है।

शिक्षण एवं अध्ययन, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बहुत से कारक शामिल होते हैं। सीखने वाला जिस तरीके से अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ते हुए नया ज्ञान, आचार और कौशल को समाहित करता है ताकि उसके सीख्नने के अनुभवों में विस्तार हो सके, वैसे ही ये सारे कारक आपस में संवाद की स्थिति में आते रहते हैं। पिछली सदी के दौरान शिक्षण पर विभिन्न किस्म के दृष्टिकोण उभरे हैं। इनमें एक है ज्ञानात्मक शिक्षण, जो शिक्षण को मस्तिष्क की एक क्रिया के रूप में देखता है। दूसरा है, रचनात्मक शिक्षण जो ज्ञान को सीखने की प्रक्रिया में की गई रचना के रूप में देखता है। इन सिद्धांतों को अलग-अलग देखने के बजाय इन्हें संभावनाओं की एक ऐसी श्रृंखला के रूप में देखा जाना चाहिए जिन्हें शिक्षण के अनुभवों में पिरोया जा सके। एकीकरण की इस प्रक्रिया में अन्य कारकों को भी संज्ञान में लेना जरूरी हो जाता है- ज्ञानात्मक शैली, शिक्षण की शैली, हमारी मेधा का एकाधिक स्वरूप और ऐसा शिक्षण जो उन लोगों के काम आ सके जिन्हें इसकी विशेष जरूरत है और जो विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं। शिक्षकों के पास विषयों को भली भाँती समझने की क्षमता होनी चाहिए ताकि वेह एक नई पीढ़ी कों उस का सार संप्रेषित कर सकें लक्ष्य है की एक सुदृढ़ ज्ञान का आधार स्थापित किया जाए जिस की आधारशिला पर छात्र अपने जीवन के अलग अलग अनुभवों का निर्माण कर सकें पीढी दर् पीड़ी ज्ञान बांटना छात्रों के विकास में कारगर साबित होता है और उन्हें समाज के उपयोगी सदस्यों में विकसित होने में मदद करता है अच्छे शिक्षक अच्छा निर्णय, अनुभव और ज्ञान कों प्रासंगिक ज्ञान में अनुवादित कर सकते हैं जो छात्र समझ सकें, याद रख सकें और औरों कों बाँट सकें एक पेशे के रूप में, शिक्षण कार्य के बहुत कार्य संबंधित तनाव (WRS) है-जो ब्रिटेन जैसे कुछ देशों में किसी भी पेशे, के सर्वोच्च में सूचीबद्ध हैं।

शिक्षण की परिभाषायें

- रायबर्न का विचार (**Ryburn's view**)-' शिक्षण ऐसा सम्बन्ध है जो बच्चे को अपनी सभी शक्तियों के विकास की ओर अग्रसर करता है ।'("Teaching is a relationship which keeps the child to develop all his powers.")
- स्मिथ का विचार (**Smith's view**)-'शिक्षण अधिगम की उत्पत्ति के लिए किए गये कार्यों की व्याख्या है' । (Teaching is a system of actions intended to produce learning.)

अभ्यास प्रश्न

3. शिक्षण ऐसा सम्बन्ध है जो बच्चे को अपनी सभी शक्तियों के विकास की ओर _____करता है।

2.3.2 मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा

मूल्य क्या है ? मूल्य वह है जो मानव इच्छा को पूरा करता है। मानव की इच्छाओं को पूरा क्यों करना चाहिए ? इसका उत्तर होगा कि जीवित रहने के लिया इच्छाएं पूरी करनी पढ़ती हैं । परन्तु हम जीवित क्यों रहना चाहते हैं ?इसके उत्तर में हम अपने जीवन के कुछ लक्ष्य या उद्देश्य बताएंगे जिनके लिए हम जीते हैं । एक व्यक्ति कहता है कि कला की साधना के लिए , दूसरा कहता है कि सत्य की खोज के लिए और तीसरा कहता है कि वह ईश्वर प्राप्ति के लिए जिन्दा रहना चाहता है । एक कलाकार कला की रचना क्यों करना चाहता है क्योंकि उसके अनुसार कला तो कला के लिया है । इसी तरह सत्य तो सत्य के लिए ,भलाई –भलाई के लिए, कर्तव्य-कर्तव्य के लिए तथा ईश्वर –ईश्वर के लिए है । इस तरह हम ऐसे मूल्यों की अवधारणा पर पहुँच जाते हैं कि जो अंतिम मूल्य हैं ,जिनको अपने आप में मूल्य मानना चाहिए, वे परम मूल्य हैं । दर्शन में इन्ही स्वत: मूल्यों(intric values) को मौलिक माना जाता है क्योंकि ये मनुष्य के उद्देश्य हैं । ये उन उद्धेश्यों को प्राप्त करने के साधन हैं ,जो परत: मूल्य(instrumental values) हैं । परत: मूल्य का मूल्य उद्देश्य के मूल्य पर निर्भर है।यदि उद्देश्य मूल्यवान है तो उसको प्राप्त करने का साधन भी मूलवान होगा, जैसे चश्मे का देखने के लिए प्रयोग होता है, यही उसका मूल्य है।वास्तव मैं परत: मूल्य अपने आप में मूल्य नही है। स्वत: मूल्य ही मूल्य है।

2.3.4 मूल्य की परिभाषायें

- सी० वी० गुड (**C.V.Good**)- मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक ,सामाजिक और सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण मणि जाती है।लगभग सभी विचार मूल्यों के अभीष्ट – चरित्र को स्वीकार करते हैं।
- आलपोर्ट (**Allport**)-मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है।

- आर० बी० पर्सी(**R.B.Persi**)- मूल्य किसी व्यक्ति के लोए रुचि का ऐसा विषय है जिसकी उत्पति विषय तथा रुचि के बीच विशिष्ट संवंधों से होती है।

2.3.5 मूल्यों की प्रकृति

मूल्यों की प्रकृति के वारे में तीन मत प्रचलित हैं -

1. **आत्मनिष्ठ मत (Subjective View)-** इस मत के अनुसार मूल्य इच्छा ,रुचि,पसंद, मेहनत करने , संकल्प-शक्ति कार्य तथा सन्तोष जैसे कारकों पर निर्भर होते हैं ।इन सभी कारकों के परिणामस्वरूप व्यक्ति के निजी जीवन में मूल्य विकसित होते हैं तथा वे व्यक्ति के अनुभवों से अत्यधिक जुड़े रहते हैं।
2. **वस्तुनिष्ठ मत(Objective View)-** इस मत के अनुसार मूल्य व्यक्ति से स्वतंत्र होते हैं तथा वे व्यक्ति में निहित नही होते, उनमें वस्तुनिष्ठा होती है।
3. **आपेक्षिकीय मत (Relationistic View)-** इस मत के पोषक मूल्यों को मूल्य प्रदान करने वाले मानव तथा उसके वातावरण के मध्य एक सम्बन्ध मानते हैं । वे मूल्य को अंशत: भावना तथा अंशत: तर्क समझते हैं । मूल्य नियामक तथा संरचनात्मक नियमों के मिलन स्थल हैं।

2.3.6 मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्य दो प्रकार के होते हैं(।) आंतरिक अथवा स्वत:प्रेरित (Intrisic); बाह्य तथा परत:प्रेरित(Extrinsic)

1. **आंतरिक मूल्य (Intrisic Values):** आंतरिक मूल्यों के लक्षणों के वारे में मूल्य शास्त्र में कई परिकल्पनाएं हैं; और उन्ही के आधार पर, इन मूल्यों के प्रकार –भेद भी कई हैं। ज्ञान शास्त्र के आधार पर ,कुछ दार्शनिक आन्तरिक मूल्यों को मानसिक मानते हैं ।उनका कथन है कि आंतरिक मूल्य का अस्तित्व मूल्य ज्ञाता के ऊपर अवलंबित है।अध्यात्मवादी तो उन्हें मानसिक मानते ही हैं , कुछ भौतिकवादी भी ऐसे हैं , जो इन मूल्यों को मानसिक मानते हैं । उनका कथन है कि मूल्य एक प्रकार का अनुभव है ,वह कोई वस्तु अथवा पदार्थ नही है । इच्छा की मूल्यों का आधार है;जब तक इच्छा की पूर्ती का प्रयत्न अथवा उसकी चेष्ठा नहीं होती है, तब तक कोई मूल्य भी नही होता है।
2. **बाह्य मूल्य(Extrinsic Value):** यथार्थवादी दार्शनिक मूल्यों को मानसिक नहीं मानते हैं । उनका कथन है कि वस्तु तभी अच्छी लगेगी जब वह मूल्यवान होगी; अत: मूल्य ज्ञान अथवा दृष्टा(subject)में नही होते हैं ;वरना वस्तु (object)में होते हैं । कुछ अध्यात्मवादियों का भी यही मत है ।

अभ्यास प्रश्न

4. मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य _____ प्रदान करते हुए कार्य करता है।

2.4 शिक्षण का मूल्यों पर प्रभाव

आज का युग भौतिकता का युग है। इस भौतिक चकाचौंध ने मनुष्य को पूर्ण रूप से भौतिकता के रंग में रंग दिया है। मनुष्य के रहन –सहन का स्तर तो दिन प्रतिदिन पहले से बेहतर हो रहा है। वह स्वार्थ के वशीभूत होकर गलत रास्ते पर चल रहा है अर्थात भौतिक सुखों को सच्चा सुख मानकर इस संसार में भटक रहा है। उन के मन में शांति नही है और इसके परिणामस्वरूप हमारे समाज का ढांचा भी चरमरा रहा है ।आज सामाजिक ,नैतिक ,सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का पतन हो रहा है।मूल्य युग परिवर्तन के साथ बदलते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक एवं प्रौध्योगिकी प्रधान युग में शिक्षा के प्रसार के बावजूद जीवन मूल्यों में ह्रास दिखाई दे रहा है ।मूल्य आधारित जीवन शैली को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि विद्यालयों में मूल्यों के विकास हेतु विशिष्ट एवं संगठित प्रयत्न किये जायें।समय तथा काल की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए दार्शनिकों व अन्य विद्वानों ने विविध प्रकार के मूल्यों को निश्चित किया है तथा उन्हें वर्गीकृत करने का प्रयत्न किया है। अत: वच्चों के पूर्ण विकास के लिए प्रभावी शिक्षण की जरूरत है ।अच्छे शिक्षण से मूल्य किस तरह प्रभावित होते हैं ,निम्नलिखित तथ्यों से आप समझ सकते हैं-

i. **अनुभवात्मक शिक्षण-** अनुभवात्मक शिक्षण सिद्धांत (ईएलटी), शिक्षण प्रक्रिया का एक समग्र प्रारूप है और विकास का बहुरैखिक प्रारूप भी, जिसमें दोनों ही इस बात से संबंध रखते हैं कि हम इंसान को सीखने, बड़ा होने और विकास करने के बारे में कितना जानते हैं। इस सिद्धांत को अनुभवात्मक शिक्षण इसलिए कहते हैं ताकि सीखने की प्रक्रिया में अनुभव की केंद्रीय भूमिका पर जोर दिया जा सके। यही वह जोर है जो अनुभवात्मक शिक्षण सिद्धांत को अन्य शिक्षण सिद्धांतों से अलग करता है। 'अनुभवात्मक' का इस्तेमाल अनुभवात्मक शिक्षण सिद्धांत को ज्ञानात्मक शिक्षण सिद्धांत और व्यावहारात्मक सिद्धांत दोनों से ही अलग दिखाने के लिए किया जाता है।

ii. **ज्ञानात्मक शिक्षण -** मनुष्य प्रेक्षण, निर्देश ग्रहण करने और दूसरों के आचार की नकल करने से कहीं ज्यादा प्रभावी तरीके से सीखता है। "ज्ञानात्मक शिक्षण सुनने, देखने, स्पर्श करने या अनुभव करने का परिणाम है।"

ज्ञानात्मक शिक्षण एक प्रभावी प्रणाली है जो ज्ञान के साधन उपलब्ध करवाती है और सिर्फ दूसरों की नकल करने तक सीमित नहीं रहती। आप हमारी वेबसाइट पढ़ कर क्या सीख रहे हैं, उसे आपका पोषण नहीं तय कर सकता। यही सीखना ज्ञानात्मक शिक्षण के महत्व को रेखांकित करता है।ज्ञानात्मक शिक्षण ज्ञान और कौशल का मानसिक या ज्ञानात्मक प्रक्रिया द्वारा अधिग्रहण है, जो प्रक्रिया हमारे मस्तिष्क के भीतर सूचनाओं के प्रसंस्करण के लिए बनी होती है।

ज्ञानात्मक प्रक्रिया के तहत भौतिक वस्तुओं और घटनाओं के मानसिक प्रतिबिंब रचे जाते हैं और सूचना प्रसंस्करण के अन्य रूप इसमें शामिल होते हैं। ज्ञानात्मक शिक्षण हमें एक जटिल संरचना पैदा करने और उसका प्रसार करने की अनुमति देता है जिसमें प्रतीक, बिंब, मूल्य, मान्यताएं और नियम होते हैं।

iii. **सहकारी शिक्षण-** सभी अध्यापन रणनीतियों में सहकारी शिक्षण की रणनीति पर सबसे ज्यादा काम किया गया है। नतीजे बताते हैं कि जिन छात्रों को साथ मिल कर काम करने का मौका मिला है, उन्होंने ज्यादा सक्षम तरीके से और तेजी से ज्ञान प्राप्त किया है, ज्ञान को लंबे समय तक अपने पास रखा है और वे अपने सीखने के अनुभवों को लेकर कहीं ज्यादा सकारात्मक महसूस करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि छात्रों को एक समूह में बांध कर एक प्रोजेक्ट देने भर से काम हो जाता है। समूह कार्य की सफलता को सुनिश्चित करने के कुछ विशिष्ट तरीके होते हैं, और यह जरूरी है कि अध्यापक और छात्र दोनों ही इस बारे में जागरूक हों। इस प्रक्रिया के दुरुपयोग के कारण हाल ही में इसकी काफी आलोचना भी की गई है। इतना साफ होना चाहिए कि यह कोई ऐसा तरीका नहीं है जिसे अपनाकर अध्यापक अपने काम से पल्ला झाड़ लें, कि बच्चे तो समूह में काम करते रहें और शिक्षक पर्चा जांचने में ही लगे रहें। यह कोई ऐसा भी तरीका नहीं जिसके रास्ते शिक्षक समूहों का नेतृत्व 'गिफ्टेड' यानी होनहार बच्चों के हाथों में देकर उन्हीं का पोषण करते रहें। यह एक ऐसा तरीका है जिससे छात्र अनिवार्य अंतरव्यक्तिक जीवन-कौशल को सीखते हैं और साथ मिल कर काम करने की क्षमता विकसित कर पाते हैं- यह एक ऐसा कौशल है जिसकी मांग आज कार्यालयों में सबसे ज्यादा है। यह एक ऐसा तरीका है जिससे छात्र अलग-अलग भूमिकाएं अपना सकते हैं- मध्यस्थ, रिपोर्टर, रिकॉर्डर इत्यादि। एक सहकारी समूह में हर छात्र के पास विशिष्ट काम होता है, हरेक को सीखने में संलग्न होना होता है और कोई भी काम से बच नहीं सकता। इस समूह की कामयाबी प्रत्येक सदस्य के सफल कार्य पर निर्भर करती है।

iv. **शिक्षण और नैतिक मूल्य-** नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षण भावी नागरिकों को चारित्रिक और नैतिक विकास करने में पूर्ण रूप से सहायक है । ये शिक्षा छात्र –छात्राओं में सहनशीलता , संतोष ,सहयोग ,विनम्रता ,प्रेम ,समाज –सेवा ,सहानुभूति जैसे मानवीय गुणों का विकास करती और चरित्र का निर्माण करती है।

v. **शिक्षण और सांस्कृतिक विकास -** सांस्कृतिक विकास को ध्यान में रखकर दिया जाने वाला शिक्षण संस्कृति के विकास में पूर्ण रूप से सहायक है । यह संस्कृति का विकास और उसको सुदृढ़ वनाने में पूर्ण रूप से भूमिका निभाती है । सांस्कृतिक मूल्य आधारित शिक्षण संस्कृति को गतिशील बनाते हैं और इसलिए सांस्कृतिक विकास हेतु पाठ्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए।

vi. **उदार दृष्टिकोण का विकास -** एक प्रभावी शिक्षण छात्र –छात्राओं के दृष्टिकोण को विकसित करता है। उनकी सोच को नई दिशा मिलती है। इस प्रकार की शिक्षा से उनमें चेतनता और

जागरूकता आती है। वे समाज कल्याण के लिए अपने हितों के त्याग की बात सोचते हैं। स्वार्थ की भावना को त्याग कर परमार्थ कार्यों में रुचि लेते हैं। वे सदा जीवन उच्च विचार के पथ पर चलने का प्रयास करते हैं।

vii. **प्रजातांत्रिक गुणों का विकास -** प्रजातांत्रिक मूल्यों पर आधारित शिक्षण से विधार्थियों में प्रजातांत्रिक गुणों का विकास होता है। प्रजातांत्रिक गुण प्रजातंत्र की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है। इससे विधार्थियों में स्वतंत्रता, समानता, न्याय ,सहयोग जैसे गुणों का विकास होता है।

viii. **विवादों को सुलझाने की क्षमता-** आज के इस युग में सभी की एक जैसी विचारधारा नही है। आज परम्परागत विचारों और आधुनिक विचारों में वहुत टकराव है। समाज की प्रगति के लिए टकराव को समाप्त करना बहुत आवश्यक है। मूल्यों की शिक्षा व्यक्ति को दूसरों की भावना का आदर करना सिखाती है। व्यक्ति में अगर संतोष और सहनशीलता होगी तो वह अवश्य ही दूसरों के विचारों का आदर करेगा। स्वाभाविक बात है कि इससे मतभेद और विवाद की समस्या का समाधान होगा।

ix. **शिक्षण और मूल प्रवृतियों का परिष्कार-** शिक्षण से मनुष्य को मूल प्रवृतियों तथा संवेगों का परिष्कार करने में पूर्ण रूप से सहायता मिलती है। मनुष्य में सशक्त काम वासना होती है और मूल्य आधारित शिक्षण से काम शक्ति को नई तथा सही दिशा प्रदान की जा सकती है, जिससे मनुष्य किसी प्रकार का नकारात्मक कार्य करने की अपेक्षा उस शक्ति का प्रयोग समाज कल्याण कार्यों में करता है जिससे व्यक्ति और समाज दोनों का ही विकास होता है।

x. **सहयोगपूर्ण जीवन की प्रेरणा-** इस प्रकार के शिक्षण द्वारा समाज के सभी प्राणी एक-दूसरे का सहयोग करके शांति का जीवन व्यतीत करते हैं। सहयोग पूर्ण जीवन इस बात की प्रेरणा देता है कि एक सबके लिए जिये और सब एक के लिए जियें।

xi. **कक्षा -कक्ष शिक्षण से मानवता की शिक्षा-** शिक्षात्मक मूल्यों की शिक्षा पूर्ण रूप से मानवीय शिक्षा है। इस शिक्षा का आधार मानवतावाद है। शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित सभी गतिविधियां मानव कल्याण के लिए होनी चाहिए। इससे हम सम्पूर्ण मानवता की हित की बात करते हैं। इसमें सभी बुराइयों को जड़ से उखाड़ने की बात आती है।यह शिक्षा विश्व शांति और विश्व बंधुत्व की भावना का संकेत देती है। यह शिक्षा समता भावना का विकास करती है और संसार के सभी मनुष्यों को प्रेरित करती है कि स्वयं जियो और जीने दो की नीति का पालन करो। इस नीति का पालन करते हुए मनुष्य अपना कल्याण करने के साथ –साथ दूसरों के कल्याण में भागीदार हो सकता है।

xii. **भविष्य के लिए तैयारी -** वर्तमान युवा पीढ़ी भावी समस्याओं का विश्वसनीय पूर्वानुमान नही लगा सकती। समाज में परिवर्तन की गति अनुमान से तेज भी हो सकती है।हमें संस्कृति – विहीनता ,अमानवीयता ,ब अलगाव से बचना है व विधार्थियों को ऐसी शिक्षा देनी है जो बालकों व बालिकाओं को भविष्य के लिए तैयार करें। मूल्यपरक शिक्षा व्यक्ति को

सामाजिक परिवर्तन के विविध रूपों को व उनके निहितार्थों को समझने में सक्षम बना सकती है तथा उनकी नैतिक निर्णय क्षमता व मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता विकसित कर सकती है। हमें शिक्षण तथा शिक्षा को इस प्रकार मूल्यपरक बनाना चाहिए कि विधार्थी भविष्य के लिए सुरक्षित तैयारी कर सके।

xiii. **रोजगारपरक शिक्षा:मूल्य विहीनता का कलंक-** चरित्र व्यक्ति की सबसे बड़ी आवश्यकता है व यही उसका रक्षक है। जब तक आर्थिक जीवन का प्रवेश- द्वार माना जाने वाला शिक्षण तथा उस पर आधारित शिक्षा को मूल्यों का सम्वल नही मिलेगा तब तक सम्पूर्ण औपचारिक शिक्षा प्रक्रिया , विशेष रूप से रोजगारपरक शिक्षा ,ढोंग वरावर ही रहेगी। हमें यह शंका नहीं करनी चाहिए कि रोजगारपरक शिक्षा पाने के बाद व्यक्ति तिकडमों का जाल वुन कर बैयक्तिक हितों का पोषण करने के बजाये अपनी विकसित क्षमताओं के सहारे रोजगार के नए –नए आयाम खोजें तथा शुद्ध प्रतिस्पर्धा में संलग्न रहें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मूल्यविहीन रोजगारपरक शक्षा एक कलंक के सिवा कुछ नही हो सकती है। औध्योगिक क्षेत्र में शुद्ध प्रतिस्पर्धा का अभाव अहितकर होगा। इस कारण मूल्यों में आस्था रखने वाले कुशल कर्मकारों को तैयार करने के लिए मूल्यपरक रोजगारोन्मुख शिक्षा अति आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

5. शिक्षण से मनुष्य को मूल प्रवृतियों तथा संवेगों का _____करने में पूर्ण रूप से सहायता मिलती है।
6. समाज की प्रगति के लिए_____को समाप्त करना बहुत आवश्यक है

2.5 शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच निजी सम्बन्ध

गुरु शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है. गु और रु.. इन दो शब्दों से मिल कर बनता है गुरु शब्द. "गु" शब्द का अर्थ है अन्धकार या अज्ञान और "रु" शब्द का अर्थ है ज्ञान या प्रकाश। अज्ञान रुपी अन्धकार को मिटाने वाला जो ज्ञान रूपी प्रकाश है, वही गुरु है। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर माना गया है.

"गुरुर ब्रह्मा गुरुर विष्णु गुरुर देवो महेश्वर:
गुरुर साक्षात् परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम:

कबीर दास जी भी कहा है-

"गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पांय
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय"

प्राचीन काल में गुरु और शिष्य के संबंधों का आधार था, गुरु का ज्ञान, मौलिकता और नैतिक बल, उनका शिष्यों के प्रति स्नेह भाव, तथा ज्ञान बांटने का निःस्वार्थ भाव.

शिष्य में होती थी, गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा, गुरु की क्षमता में पूर्ण विश्वास तथा गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण एवं आज्ञाकारिता. अनुशासन शिष्य का सबसे महत्वपूर्ण गुण माना गया है.

कक्षा में शिक्षण के दौरान शिक्षक और विधार्थी आमने –सामने होते हैं तथा परस्पर अंतर्क्रिया के परिणामस्वरूप विधार्थियों की अधिगम कठिनाइयाँ शीघ्र दूर हो सकती हैं। हमारे विकासशील भारत में अनेक वच्चे शिक्षा के दायरे से वाहर हैं तथा उनकी शिक्षा के लिए खुले विद्यालय तथा खुले विश्वविध्यालय स्थापित किये जा रहे हैं व अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का जल विछाया जा रहा है । यहाँ शिक्षा देने के लिए रेडियो ,दूरदर्शन ,टेप ,वीडिओ कैसेट ,तथा मुद्रित विषय -सामग्री का उपयोग किया जाता है । वच्चों व वयस्कों के मनोरंजन के लिए निर्मित अनेक कार्यक्रमों में कुछ ऐसे स्थल होते हैं जिनमें मूल्य संकट प्रतिविम्बित होते हैं तथा मूल्य उभरते हैं । आधुनिक युग में शिक्षकों वृतिक विकास एक अहम विषय बन गया है । इसे कई प्रकार से अभिव्यक्त किया जा रहा है ,जैसे शिक्षण का वृतीकरण कीया जाना चाहिए अथवा शिक्षकों में वृतिवाद होना चाहिए । यह विचारधारा शिक्षकों के हर स्तर पर लागू है।

शिक्षक एवं छात्रों के लिए कोई उम्र बंधन नहीं है। मनुष्य सारी ज़िंदगी एक छात्र के रूप में कुछ न कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सीखता ही रहता है। मनुष्य एक निश्चित समयावधि के पश्चात किसी संस्था या विद्यालय में रहकर शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता। उसे गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना पड़ता है या किसी अन्य कर्य में उलझ जाना पड़ता है। उस अवस्था में भी वह शिक्षा प्राप्त करता ही है; किंतु उस समय उसे किसी शिक्षक की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती जितनी कि बच्चे को विद्यालयीन जीवन में होती है। विद्यालयीन जीवन में शिक्षक और छात्रों के बीच मधुर संबंध ही उसकी शिक्षा का मूल आधार होता है। बच्चा जब पहली बार विद्यालय आता है तो वहाँ भी वह अपने घर जैसा माहौल ढूँढता है। अपने माता-पिता की तरह प्यार करने वाले शिक्षक उसकी नज़रें होती हैं। यदि उसे वह माहौल न मिल पाया तो वह विक्षिप्त मस्तिष्क का हो जाता है। उसके मन में विद्यालय तथा शिक्षकों के प्रति अविश्वास, नफ़रत तथा डर पैदा हो जाता है। इस स्थिति में उसे सँभालना ही शिक्षकों और छात्रों के बीच अच्छे संबंध को दर्शाता है। किशोरावस्था में पहुँचने तक वह इतना परिपक्व हो चुका होता है कि वह विद्यालय तथा शिक्षकों के बारे में स्वतंत्र विचार अपने मन में ला सकता है। विद्यालय का माहौल, शिक्षकों का व्यवहार उसके मन में अपना आधिपत्य जमा चुके होते हैं। विद्या प्राप्त करने के उद्देश्य से आया विद्यार्थी अगर शिक्षक के मार से, व्यवहार से या शिक्षा प्रदान करने के ढंग से डर जाय तो वह कभी सफल नहीं हो सकता। वह चाहकर भी कुछ करने में स्वयं को असमर्थ और अकेला पाता है। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह अपने छात्र के साथ ऐसा व्यवहार करे कि छात्र उसे अपना शुभचिंतक मानने लगे और शिक्षकों से डरने के बजाय उनका सानिध्य प्राप्त करने की कोशिश करे, उन पर विश्वास कर सके। उसके साथ शिक्षक का बर्ताव एक पिता रूपी क्षिक्षक का, एक बड़े भाई रूपी शिक्षक का, एक दिल से प्यार करने वाले मित्र रूपी शिक्षक का होना चाहिए। किंतु इस बीच यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कहीं बच्चा शिक्षक की

इस छूट का ग़लत उपयोग तो नहीं कर रहा है। इसके लिए शिक्षकों में बच्चों के मनोभावों को पढ़ने की क्षमता होनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर दंड का भी भय दिखलाना चाहिए ताकि ग़लत दिशा की ओर उसके बढ़ते कदम रुक जाएँ अर्थात् उसके गिरने से पहले ही उसे सँभालने की कोशिश करनी चाहिए।

आजकल के अधिकांश छात्र अपने शिक्षकों को हँसी का पात्र समझकर उनकी शिक्षा का ग़लत उपयोग करते हैं। निम्नस्तर की फ़िल्में देखकर, बुरी आदतों के शिकार बच्चों से दोस्ती करके, घटिया स्तर की फूहड़ पुस्तकों का अध्ययन करके शिक्षक के विरुद्ध खड़े होकर अपनी बेवकूफ़ी का प्रदर्शन यह समझकर करते हैं कि यह उनकी शक्ति समझदारी है। वे शिक्षकों को बेइज्ज़त करने से भी पीछे नहीं हटते। विद्यालय के अनुशासन को तोड़ते हैं। हमेशा दूसरों को नीचा दिखाने की फ़िराक में रहते हैं। अपने साथ दूसरे बच्चों को भी बुरी आदतों का शिकार बनाने की कोशिश करते हैं। ऐसी स्थिति में एक शिक्षक ही उन्हें सही रास्ते पर ला सकता है। उनके क्रोध को प्यार में बदल जा सकता है या उनकी नफ़रत का प्रतिकार मुस्कराते हुए किया जा सकता है क्यों कि उनकी यह अवस्था ज़ल्दी ही भटकने की होती है। इस समय उनका यह व्यवहार स्वाभाविक ही है। अत: शिक्षकों को चाहिए कि वे उन कारणों का विरोध करें जो उन्हें ऐसा करने पर विवश करते हैं। हो सकता है, वे अपने घर हालातों से मज़बूर हों, हो सकता है वे किसी शिक्षक या सहपाठी से नारज़ हों। शिक्षकों को सभी ओर ध्यान देना चाहिए। उनसे एकाएक ही या एक ही बार में सही रास्ते की आ जाने की अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। उनके सारे बुरे क्रियाकलापों का परिणाम उनके समक्ष इस तरह प्रस्तुत करना चाहिए कि उन्हें वह सब सच लगे। ये सोचकर कि वे हमारे बच्चे नहीं हैं, वे जैसा करते हैं, करने दो, हमें उनसे क्या – हमें उनकी तरफ़ से ध्यान नहीं हटाना चाहिए क्योंकि उसका परिणाम यह होगा कि वे हाथों से निकल जाएँगे और असामाजिक बुरे तत्त्वों से मिलकर इस समाज के लिए तथा स्वयं केलिए भी ख़तरनाक हथियार बन जाएँगे। उन्हें विद्यालय में इस तरह के प्रलोभन देने होंगे तथा इस तरह का आनंद देना होगा कि वे इनमें इस तरह उलझ जाएँ कि उन्हें इनके अलावा और कुछ सोचने का अवसर ही न मिले। इसके लिए यदि शिक्षक को उसके घर भी जाना पड़े, काफ़ी परेशानियों का सामना करना पड़े तो भी अपना कर्त्तव्य समझकर लगन से करना चाहिए क्योंकि यह सब करके शिक्षक उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा ही दे रहा होता है। केवल किताबी ज्ञान देना ही शिक्षा नहीं है। उनके नैतिक और बौद्धिक शक्ति का विकास करना भी शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस बीच छात्रों के कर्त्तव्यों को भी नज़रांदाज़ नहीं किया जा सकता। छात्रों को यह विश्वास करना चाहिए कि शिक्षक जो भी करते हैं उनकी भलाई के लिए ही करते हैं। छात्रों को चाहिए कि वे अपने माता-पिता के उन उद्देश्यों को पूरा करने में शिक्षकों की मदद करें जिनके लिए उनके माता-पिता ने उन्हें विद्यालय भेजा है।

शिक्षक और छात्रों के बीच मधुर संबंध से ही कोई अच्छा परिणाम सामने आ सकता है जिससे वे अपना तथा विद्यालय का, इस देश का गौरव बढ़ा सकते हैं। इसके छात्रों को विद्यालयीन अनुशासन में रहना चाहिए, गुरुओं का आदर करना चाहिए, उनके अमूल्य परामर्शों पर अमल करना चाहिए, उनके बताए राह पर चलना चाहिए। ऐसी स्थिति में, गुरुओं के भी कुछ कर्त्तव्य होते हैं कि वे छात्रों को अच्छे स्तर तथा अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करें, उनकी हर परेशानी को समझने और हल करने का प्रयत्न करें, उनके साथ मधुर व्यवहार बनाएँ रखें।

अध्ययन, चिंतन और मनन द्वारा विद्या अर्जित करना विद्यार्थी का दायित्व है। इस दायित्व को पूरा करने में शिक्षक का बहुत बड़ा हाथ होता है। एक बच्चे को शिक्षा देकर उसका मार्गदर्शन करना शिक्षक का कार्य होता है। शिक्षक ही छात्र को सही दिशा दिखाता है। ये दोनों शिक्षा रूपी धागे से आपस में जुड़े होते हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थी के गुणों को समाज के सामने रखता है। अर्थात साधारण से छात्र को भी परिश्रमी, बुद्धिमान व योग्य बना देता है। उसी तरह एक छात्र का कर्त्तव्य होता है कि वह अपने शिक्षक की बातों को ध्यान से सुने, उनकी आज्ञा का पालन करे, विद्यालय के अनुशासन को बनाए रखे, कक्षा में पढ़ाए पाठ को दुबारा पढ़े साथ ही ज्ञान को बढ़ाने वाली अन्य पुस्तकों का भी अध्यनन करे। शिक्षक का मान-सम्मान करे। शिक्षक के लिए आवश्यक है कि छात्र के साथ सहयोग बनाए रखे। पाठ को रुचिकर बनाए ताकि छात्र पूरी तरह उसमें रुचि ले सकें। उनसे मित्रता कायम करे। उनको अपना भरपूर सहयोग दे। हर कदम पर उन्हें संभाले। विद्यार्थियों से स्नेह करें। उनकी समस्याओं और कठिनाईयों को हल करने में उनकी सहायता करे।

आजकल शिक्षकों ने शिक्षा को व्यवसाय बना लिया है। कक्षा में ज्यादातर उपस्थित नहीं रहते हैं। ज़्यादा पैसे लेकर ट्यूशन पढ़ाते हैं और छात्रों को ऐसा करने के लिए मजबूर करते हैं। अत: आज की आवश्यकता यही है कि छात्रों में अराजकता व अनुशासनहीनता रोकने के लिए छात्र और शिक्षक दोनों ही अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन ठीक से करें ताकि उनके संबंध अच्छे बने रहें। छात्र जो आजकल शिक्षकों का आदर करना भूल गए हैं, वे उन्हें पूरा मान-सम्मान दें। इसके लिए शिक्षक को चाहिए कि वे वाणी से मधुर बोलें तथा व्यवहार में शिष्टता बनाए रखें। शिक्षक, विद्यार्थियों की 'आत्मशक्ति' को पहचाने में सक्षम होना चाहिए। अत: यह सब तभी संभव है, जब विद्यालय में गुरुकुल जैसा शांत वातावरण हो, स्वाभिमानी, तेजस्वी व तपस्वी शिक्षक हो और राजनीति से शिक्षा दूर हो।

2.5.1 छात्र और शिक्षक के बीच बढ़ती दूरियाँ

आजकल परम्परा बदली है । एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ ने समाज के दोनों पैरों को दो दिशाओं में अग्रसर कर दिया है आज के आधुनिक युग में जब शिक्षण मात्र एक व्यवसाय बन कर रह गया है । ऐसे में समय के साथ छात्रों और शिक्षकों के आपसी संबंध भी बदले हैं। आज शिक्षा में शिक्षक की भूमिका को अस्वीकार कर इ-लर्निंग जैसी बात हो रही है और आधुनिक ज्ञान विज्ञान के अविष्कारो ने इसे कुछ हद तक संभव भी बनाया है लेकिन आमने सामने के शिक्षण में जो आपसी विचारों का आदान- प्रदान है वह दूर शिक्षा में संभव नहीं हो पाता । उसमें विचारों का एक तरफा बहाव है जो छात्रों का सम्पूर्ण विकास नहीं कर पाता । लेकिन साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि आमने सामने कि शिक्षा का माहौल भी कटु हो गया है । स्वार्थ की ऐसी अंधी चली है कि एक ओर कम आमदनी का मार्ग समझ कोई शिक्षक बनना ही नहीं चाहता । वहीं दूसरी ओर जो आते हैं वे पैसे की ओर ही भागते हैं ।छात्रों का भी यही हाल है । जिससे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में छात्र और शिक्षकों के बीच चापलूसी और खुशामदी बढ़ी है । शिक्षक दिवस का भी बाजारीकरण हो गया है । महंगे गिफ्ट, झूठी बड़ाई अपनी प्रशंसा इसी की भूख है । साथ ही छात्रों का भी शिक्षकों के प्रति विश्वास घटा है और व्यवहार बदला है ।यानि छात्र और शिक्षक दोनों ही एक

दूसरे को संदेह की दृष्टी से देखने लगे हैं। इसके पीछे दोनों के व्यवहार में आये परिवर्तन ही दोषी हैं। जिससे छात्रों और शिक्षकों के बीच मतभेद बढाता जा रहा है।अब उनमें पहले सा आत्मीय स्नेह नहीं रह गया है। एक तरफ छात्र शिक्षकों के पीठ पीछे उनका मजाक उड़ाने से नहीं चुकते। वहीं दूसरी तरफ शिक्षक भी मात्र पाठ्यक्रम भर से नाता रखते हैं। आज जब इलेक्ट्रोनिक मीडिया, समाचार पत्रों में कहीं शिक्षकों के नैतिक पतन की, व्यभिचार की, तो कहीं छात्रों द्वारा शिक्षकों की हत्या तक की ख़बरें देखने और पढ़ाने मिल रही है तो स्थिति और वीभत्स हो गई है। ऐसे में गुरु –शिष्य की आत्मीय परम्परा को फिर से एक बार याद कर बनाये रखने की जरुरत है। हो सकता है कि आज हमारे विचारों में काफी मतभेद हो।परन्तु फिर भी हम एक दूसरे के विचारों का सम्मान तो कर ही सकते हैं।एक पीढ़ी का दूसरी पीढ़ी से हमेशा विचारों में मतभेद रहा है।

2.5.2 कक्षा संप्रेषण का प्रभाव

संप्रेषण का प्रभाव शिक्षक और शिक्षार्थी के संबंधों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। एक अध्यापक को विधार्थी को नये भाव ,दृष्टीकोण ,सूचना,व्यवहार,कौशल,आदि संप्रेषित करने वाला माना जाता है। अध्यापक का सम्प्रेषण तभी फलदायक होगा जब विधार्थी इसे ग्रहण करके समझेंगे और इससे कुछ सीखेंगे। यहाँ अध्यापक सम्प्रेषण का प्रेषक होता है जबकि विधार्थी सम्प्रेषण के प्राप्तकर्ता होते हैं। सम्प्रेषण को समझने के बाद ही विधार्थी इसके प्रति उपयुक्त ढंग से अपनी अनुक्रिया व्यक्त कर सकेंगे। यह अनुक्रिया अध्यापक द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर के वारे में भी हो सकती है। यह अनुक्रिया किसी अन्य रूप में भी हो सकती है, जैसे दृष्टी कोण में परिवर्तन या व्यवहार में परिवर्तन आदि। अधिगम को प्रभावी बनाना है तो फिर इस बात को सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि संप्रेषण प्रक्रिया किसी तरह के बाधक तत्वों के बगैर निर्धारित माध्यमों द्वारा चल रही है। इसके लिए अध्यापक को जान लेना चाहिए कि कक्षा सम्प्रेषण में पैदा होने वाले बाधक तत्व कौन –कौन से हैं। समूची सम्प्रेषण प्रक्रिया का लक्ष्य सम्प्रेषण की सामग्री को विधार्थियों के लिए बोधगम्य बनाना है।

2.5.3 कक्षीय समस्याएं

कक्षा में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया प्रभावपूर्ण एवं सफलतापूर्वक चलनी चाहिए।ऐसा तभी हो सकता है जब अध्यापक कक्षा में पैदा होने वाली समस्याओं का सफलापूर्वक हल कर सके। ये समस्याएं कई प्रकार की होती हैं। अध्यापक को कक्षीय समस्याओं की सामान्य प्रकृति का पहले से ही ज्ञान होना चाहिए। जरूरी नही कि एक कक्षा की समस्याएं दूसरी कक्षा की समस्याओंके अनुरूप हों ,या सभी अध्यापकों को एक जैसी कक्षीय समस्यायों का सामना करना पड़े या एक संस्था की कक्षीय समस्याएं दूसरी संस्था के अनुरूप हों। एक अध्यापक अपने विधार्थियों की समस्याओं को समझकर उन्हें पढ़ाई में अग्रसर करके अपना उत्तरदायित्व निभा सकता है। इससे संबंधों में मिठास रहेगी।

अभ्यास प्रश्न

7. गुरु शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न _____ रहा है।
8. शिक्षक और छात्रों के बीच मधुर संबंध से ही कोई अच्छा परिणाम सामने आ सकता है जिससे वे अपना तथा विद्यालय का, इस देश का _____बढ़ा सकते हैं।

2.6 सारांश

सत्य और अहिंसा जैसे सर्वोच्च मानवीय मूल्यों के सफल प्रयोक्ता गाँधी के इस देश में मूल्यों की जैसी अवमानना हो रही है , वह सभी के लिए चिंता का विषय है। मूल्य केन्द्रित राजनीति के नाम पर जिस तरह मूल्य हीनता पनप रही है ,मान्यताओं की रक्षा के नाम पर उन्हें जिस प्रकार ध्वस्त किया जा रहा है ,इससे देश में मूल्यों का अस्तित्व कहीं न कहीं खतरे में है। यदि हम भारत माता को बचाना चाहते हैं ,भारतीय समाज को एकजुट रखना चाहते हैं तो हमें अपनी विनास यात्रा के मध्य क्षण भर रूककर सोचना पड़ेगा कि हम कहाँ जा रहे हैं। यह सोच ,यह चिंतन मूल्यों का चिन्तन है। कुछ विकासशील देशों में, समस्याओं की संख्या और गंभीरता स्वाभाविक रूप से अधिक हैं।अधिक सुदूर या कृषि क्षेत्रों में लोग कभी कभी शिक्षा के महत्व से अनजान रह जाते हैंकई देशों में एक सक्रिय शिक्षा मंत्रालय और विदेशी भाषा सीखने जैसे कई विषयों, में, शिक्षा की डिग्री वास्तव में औद्योगीकृत देशों से तुलनात्मक अधिक उच् है; उदाहरण के लिए, बहुत से विकासशील देशों में छात्रों के लिए यह असामान्य नहीं है कि वेह यथोचित कई विदेशी भाषाओं में निपुण हो, जबकि विकसित देशों में यह एक दुर्लभ वस्तु है जहाँ अधिकतं जनसँख्या एक ही भाषा का उचारण करने में सक्षम हैं। शिक्षक और छात्रों के बीच मधुर संबंध से ही कोई अच्छा परिणाम सामने आ सकता है जिससे वे अपना तथा विद्यालय का, इस देश का गौरव बढ़ा सकते हैं। इसके छात्रों को विद्यालयीन अनुशासन में रहना चाहिए, गुरुओं का आदर करना चाहिए, उनके अमूल्य परामर्शों पर अमल करना चाहिए, उनके बताए राह पर चलना चाहिए। ऐसी स्थिति में, गुरुओं के भी कुछ कर्त्तव्य होते हैं कि वे छात्रों को अच्छे स्तर तथा अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करें, उनकी हर परेशानी को समझने और हल करने का प्रयत्न करें, उनके साथ मधुर व्यवहार बनाएँ रखें।

2.7 शब्दाबली

1. **एकजुट-** एकत्रित
2. **असामान्य-** जो सामान्य नही हो
3. **जन्मजात शक्तियां -** बो शक्तियां जो जन्म से ही वच्चे में विद्यमान हों
4. **सुनिश्चित-** निश्चित किया हुआ
5. **सम्प्रेषण-** दो या दो से अधिक व्यक्तियों में संबाद
6. **अमूल्य-** जिसका कोई मूल्य न हो
7. **मूल्यविहीन-** मूल्यों के विना

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समन्वित
2. सामंजस्यपूर्ण
3. अग्रसर
4. वरीयता
5. परिष्कार
6. टकराव
7. : अंग
8. गौरव

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समाज कल्याण/मई ।999
2. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया
3. रामशक्ल पाण्डेय,करुणाशंकर मिश्र –विनोद पुष्तक मंदिर आगरा
4. रेनु चौधरी -मूल्य एवं नैतिक शिक्षण –अपोलो प्रकाशन जयपुर
5. पायल भोला जैन -मूल्य ,पर्यावरण तथा मानवाधिकारों की शिक्षा
6. डॉ० महावीरमल लोढा -नैतिक शिक्षा :विविध आयाम-अगरवाल पब्लिकेशन्स आगरा
7. प्रो० (डॉ०)मुल्क राज चिलाना-मानवीय मूल्यों का शिक्षण
8. Morill, R.L. Teaching Values in Colleges. SanFrancisco: Josse-Bass Publishers, ।980
9. Directorate, Primary and Secondary Education Rajasthan, Bikaner, Education on Human values

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक अच्छे कक्षा संप्रेषण का विधार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में लिखें।
2. आज के युग में छात्र और शिक्षक के बीच दूरियाँ बढ़ रहीं हैं। अपने विचार दीजिए।
3. शिक्षण का क्या अर्थ है ? परिभाषा दीजिए।
4. शिक्षण का मूल्यों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? व्याख्या किजिये।
5. शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच निजी संबंधों की व्याख्या किजिये।

इकाई 3 - शिक्षार्थियों के आपस में सम्बन्ध,स्वायत्तता,आत्मसम्मान,स्वतंत्रता: शिक्षार्थियों द्वारा स्वयं अनुभव

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शिक्षार्थियों के आपस में सम्बन्ध
3.4 स्वायत्तता
3.5 आत्म – सम्मान/ आत्मविश्वास
3.6 स्वतंत्रता: शिक्षार्थियों द्वारा स्वयं अनुभव
3.7 सारांश
3.8 शब्दाबली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अंतर्गत राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा 2005 को प्रभावी बनाने के बावजूद, स्कूली पाठ्यचर्चा में पढ़ना-लिखना काफी हद तक पाठ्य पुस्तकों तक सीमित रहा है| अधिकांश शिक्षकों का यह मानना है कि उनका मुख्य प्रयोजन निर्धारित पाठ्यक्रम सामग्री को पूरा करना| अत: स्कूल पाठ्यक्रम में समझ के साथ पढ़ना-लिखना निष्क्रिय हो गया है कक्षा में समझ के साथ पढ़ना, जानकारी और विचारों को व्यक्त करने जैसी गतिविधियों की उपेक्षा के कारण बच्चे निपुण पाठक बनने से चूक जाते हैं| यशपाल समिति ने अपनी रिपोर्ट "शिक्षा बिना बोझ के" (1993) में भारत के स्कूलों में निरर्थक और नीरस शिक्षा और कक्षा में बच्चों की समझ या बोध के अभाव को मजबूती से उजागर किया है| विद्यार्थी ही किसी देश का भविष्य होते हैं। एक राष्ट्र की प्रगति का आधार उसके विद्यार्थी ही हैं। अगर विद्यार्थी आदर्शवादी होंगे तो देश का भविष्य उज्जवल होगा। आदर्श विद्यार्थी युवा पीढ़ी का पथ प्रशस्त करते हैं। आदर्श विद्यार्थी वह नहीं है जो कक्षा में बहुत अच्छे अंक लाता है, या नये नये प्रतिमान स्थापित करता है, बल्कि वहीं विद्यार्थी आदर्श कहला सकने का अधिकारी है जो न केवल पढ़ाई में अच्छा है,

मगर अच्छा इंसान भी है। जो कर्त्तव्यनिष्ठ और ईमानदार है, सत्यवादी और न्यायप्रिय है। जो सदैव सभी की सहायता के लिये तत्पर रहता है। पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी गंभीर है। जो खेलकूद में भी रूचि रखता हो, वाद विवाद की भी योग्यता रखता हो। आदर्श विद्यार्थी में पुरस्कार जीतने के साथ साथ हदय जीतने की क्षमता होना भी जरूरी है।शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के दौरान एक संकुल के शिक्षकों के साथ बहुभाषिता के सिद्धान्त पर चर्चा हो रही थी। बहुभाषिता के महत्व व सिद्धान्त को बेहतर समझने के उद्देश्य से प्रतिभागियों के साथ एक गतिविधि के साथ शुरुआत की गई। सभागार में बैठे शिक्षक साथियों से पूछा गया कि इस कक्ष में कितनी भाषाएँ जानने वाले लोग हैं? कौन-कौन साथी किन-किन भाषाओं को बोलना, लिखना-पढ़ना और समझना जानते हैं उनके बारे में बताएँ। शिक्षक साथियों ने बोलना शुरू किया, प्रतिक्रियाएँ जो अपेक्षित थीं कुछ हद तक उसी अनुरूप प्राप्त हुईं। लगभग छह से सात सामान्य भाषाओं जैसे हिन्दी,अँग्रेजी, छत्तीसगढ़ी, पंजाबी, उर्दू , मराठी आदि भाषाओं की सूची ब्लैक बोर्ड पर तैयार थी। परन्तु मेरे अपने अनुभव न जाने क्यूँ उकसा रहे थे कि नहीं इस कक्षा में कुछ और भाषाओं को जानने व समझने वाले साथी मौजूद हैं। मैंने तीन-चार बार यह कहा कि क्या हम इस सूची को अन्तिम सूची मान लें? क्या हमारे बीच इन भाषाओं के अतिरिक्त कोई और भाषा जानने वाले साथी मौजूद नहीं हैं? प्रतिभागियों की ओर से एक स्वर में प्रतिक्रिया आई कि हाँ, सर हम लोग बस इतनी भाषाओं को ही जानते हैं। यदि आप अपने सीखने की चर्चा किसी अन्य विद्यालय नेता के साथ कर सकें तो आप और भी अधिक सीखेंगे। यह आपका कोई सहकर्मी, जिसके साथ आप पहले से सहयोग करते आए हैं, या कोई व्यक्ति हो सकता है जिसके साथ आप नए संबंध का निर्माण कर सकते हैं। इसे नियोजित ढंग से या अधिक अनौपचारिक आधार पर किया जा सकता है। आपकी सीखने की डायरी में बनाए गए आपके नोट्स इस प्रकार की बैठकों के लिए उपयोगी होंगे, और साथ ही आपकी दीर्घावधि की शिक्षण-प्रक्रिया और विकास का प्रतिचित्रण भी करेंगे। समावेशी प्रथाओं को विकसित करने में समय और बहुत सारी मेहनत लगती है। यदि आपको सफलता मिलती है, तो उन्हें वृत्त अध्ययनों के रूप में लिखना या अपने काम को अन्य लोगों जैसे विद्यालय में या अन्य विद्यालयों के साथ साझा करने के अवसरों का आयोजन करना अत्यंत मूल्यवान होता है। बदले में, आपको पता लग सकता है कि अन्य लोगों ने भी आपके अपने प्राथमिकता क्षेत्रों जैसे मुद्दों को संबोधित किया है और उनके पास उन्हें संबोधित करने के कुछ आजमाए हुए तरीके हैं जिन्हें आप उनसे सीख सकते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. शिक्षार्थियों के आपसी सम्बन्धों के वारे में जान सकेंगे ।
2. स्वायत्तता क्या है तथा विधालय में शिक्षार्थी की स्वायत्तता का क्या महत्व है ।
3. आत्म – सम्मान/ आत्मविश्वास क्या है तथा विधार्थी में इसका विकास कैसे होता है।

4. शिक्षार्थियों द्वारा स्वतंत्रत रहकर स्वयं अनुभव कैसे ग्रहण किया जाता है।

3.3 Relationship Amomg the Learners themselves(शिक्षार्थियों के आपस में सम्बन्ध)

आज कोई भी शिक्षक छात्रों द्वारा अपने साथ विद्यालयों में लाई जा रही असंख्य माँगों और अपेक्षाओं की समझ या उनके प्रति संवेदी हुए बिना व्यावसायिक रूप से सफल नहीं हो सकता है। उन्हें, वर्ग, जाति, धर्म, लिंग और निःशक्तता पर ध्यान दिए बिना सभी छात्रों को संलग्न करने और सीखने के सार्थक अवसर प्रदान करने में सक्षम होना चाहिए। शिक्षा का अधिकार कानून 2009 लिंग और सामाजिक श्रेणी पर ध्यान दिए बिना सभी छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के इस निर्णय को अधिक मजबूत और सुदृढ़ करता है, जिसके लिए उसमें शारीरिक और सीखने के पर्यावरणों, पाठ्यचर्या, और अध्यापन प्रथाओं से संबंधित विस्तृत स्वीकार योग्य नियम निर्धारित किए गए हैं। शिक्षकों के कौशल, रवैये और प्रोत्साहन सुविधाहीन और अधिकारहीन समुदायों के बच्चों की संलिप्तता, प्रतिभागिता और उपलब्धि उल्लेखनीय ढंग से बढ़ा सकते हैं। समावेशी विद्यालय कक्षा में शिक्षकों द्वारा न्यायोचित शिक्षा प्रदान करने में विद्यालय नेता की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। सबसे पहले, यह आवश्यक है कि विद्यालय नेता:

- को विश्वास हो कि नतीजे न्यायोचित हो सकते हैं, उनके छात्रों के व्यक्तिगत प्रारंभिक बिंदु चाहे कुछ भी हों
- स्टाफ और छात्रों को सभी छात्रों की उपलब्धि को ऊपर उठाने के लिए प्रोत्साहित करता है
- छात्रों की सफलता को उनकी शैक्षणिक उपलब्धि से अधिक आधार पर मापता है।

एक विद्यालय नेता के रूप में, आपको बच्चे के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर (1989) से अवगत होना चाहिए जो हर एक सदस्य देश को अपने सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करने का आदेश देकर विविधता को अपनाने की उल्लेखनीय प्रेरणा देता है। विद्यालय नेता के रूप में अपने विद्यालय के समुदाय में समावेशी रवैयों और बर्तावों का नेतृत्व करना, उन्हें प्रोत्साहित करना और विकसित करना आपकी जिम्मेदारी है। विद्यालय की विविधता कई कारकों से संबंधित हो सकती है जैसे भाषा, नस्ल, लिंग, जाति, वर्ग, आय स्तर, शारीरिक क्षमताएं, आवास, उम्र या पहले की गई पढ़ाई। कक्षा में भर्ती होते समय किन्हीं भी दो छात्रों के प्रारंभ बिंदु एक समान नहीं होते हैं, और न ही सीखने के तरीके या पाठ्यचर्या के साथ संबंध समान होते हैं। वह शिक्षक जो अलग अलग पृष्ठभूमियों, संस्कृति और अनुभवों को समझता और मान देता है, उसके छात्रों को सीखने की ऐसी प्रक्रिया में संलिप्त करने की अधिक संभावना है जो उनमें से प्रत्येक के लिए सार्थक है। समावेशी पर्यावरण का निर्माण उस अध्यापन के साथ जुड़ा है जो कक्षा की विशिष्ट जरूरतों के लिए सक्रिय, वैयक्तिक रूप से संरचित और उपयुक्त शिक्षा को प्रोत्साहित करता है। यह बात नितांत असंभव है कि, कोई पाठ्यक्रम जिसकी रचना एक पाठ्यपुस्तक के माध्यम से एक अंतिम

लिखित इम्तिहान के लिए काम करने वाले सभी छात्रों के इर्दगिर्द की गई है, वह ऐसा समावेशी पर्यावरण बनाएगा जहाँ सभी छात्र अपनी क्षमता को हासिल करेंगे। आदर्श विद्यार्थी का अर्थ है- ऐसा विद्यार्थी जिसका आचरण एवं व्यवहार अन्य विद्यार्थियों के लिये उदाहरण बने। जिसका सोचने का दायरा, जिसकी सोच अपने तक सीमित न हो, जो देश विदेश के बारे में भी ज्ञान रखता हो। और जो एक अच्छा नागरिक और देश प्रेमी हो। अच्छा विद्यार्थी ही अच्छे नागरिक का पर्याप्त हो सकता है। अच्छा विद्यार्थी आदर्श बालक बालिका वही है जो बड़ों का सम्मान करे और छोटों से स्नेह रखे। जो सभी धर्मों का सम्मान करे और समभाव रखे। अपने देश के कानून और समाज का आदर करे और आत्म उन्नति एवं राष्ट्र उन्नति में सहायक हो। शिक्षकों तथा माता-पिता की यह जिम्मेदारी है कि वच्चों को ऐसा वातावरण प्रदान किया जाये जिससे विधार्थी कक्षा में तथा विधालय में अन्य विधार्थियों के साथ अच्छे सम्बन्ध कायम करने में सक्षम हो सकें।

विधार्थयों में महान होने के कितने ही गुण बचपन में ही नज़र आते हैं। जिससे बच्चे को आदर्श बालक कहा जा सकता है। ये गुण निम्नलिखित हैं-

1. **वह शांत स्वभाव होता है:** जब सारी बातें उसके प्रतिकूल हो जाती हैं या सभी निर्णय उसके विपक्ष में हो जाते हैं, तब भी वह क्रोधित नहीं होता।
2. **वह उत्साही होता है:** जो कुछ वह करता है, उसे अपनी योग्यता के अनुसार उत्तम से उत्तम रूप में करता है। असफलता का भय उसे नहीं सताता।
3. **वह सत्यनिष्ठ होता है:** सत्य बोलने में वह कभी भय नहीं करता। उदारतावश कटु व अप्रिय सत्य भी नहीं कहता।
4. **वह धैर्यशील होता है:** वह अपने सतकर्म में दृढ़ रहता है। अपने सतकर्मों का फल देखने के लिए भले उसे लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़े, फिर भी वह धैर्य नहीं छोड़ता, निरूत्साहित नहीं होता है। अपने कर्म में डटा रहता है।
5. **वह सहनशील होता है:** सहन करे वह संत इस कहावत के अनुसार वह सभी दुःखों को सहन करता है। परंतु कभी इस विषय में शिकायत नहीं करता है।
6. **वह अध्यवसायी होता है:** वह अपने कार्य में कभी लापरवाही नहीं करता। इस कारण उसको वह कार्य भले ही लम्बे समय तक जारी रखना पड़े तो भी वह पीछे नहीं हटता।
7. **वह समचित्त होता है:** वह सफलता और विफलता दोनों अवस्थाओं में समता बनाये रखता है।
8. **वह साहसी होता है:** सन्मार्ग पर चलने में, लोक-कल्याण के कार्य करने में, धर्म का अनुसरण व पालन करने में, माता-पिता व गुरूजनों की सेवा करने व आज्ञा मानने में कितनी भी विघ्न-बाधाएँ क्यों न आयें, वह जरा-सा भी हताश नहीं होता, वरन् दृढ़ता व साहस से आगे बढ़ता है।
9. **वह आनन्दी होता है:** वह अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रसन्न रहता है।

10. **वह विनयी होता है:** वह अपनी शारीरिक-मानसिक श्रेष्ठता एवं किसी प्रकार की उत्कृष्ट सफलता पर कभी गर्व नहीं करता और न दूसरों को अपने से हीन या तुच्छ समझता है।**विद्या ददाति विनयम्।**
11. **वह स्वाध्यायी होता है:** वह संयम, सेवा, सदाचार व ज्ञान प्रदान करने वाले उत्कृष्ट सदग्रन्थों तथा अपनी कक्षा के पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन करने में ही रूचि रखता है और उसी में अपना उचित समय लगाता है, न कि व्यर्थ की पुस्तकों में जो कि उसे इन सदगुणों से हीन करने वाले हों।
12. **वह उदार होता है:** वह दूसरों के गुणों की प्रशंसा करता है, दूसरों को सफलता प्राप्त करने में यथाशक्ति सहायता देने के लिए बराबर तत्पर रहता है तथा उनकी सफलता में खुशियाँ मनाता है। वह दूसरों की कमियों को नज़रंदाज करता है।
13. **वह गुणग्राही होता है:** वह मधुमक्खी की तरह मधुसंचय की वृत्तिवाला होता है। जैसे मधुमक्खी विभिन्न प्रकार के फूलों के रस को लेकर अमृततुल्य शहद का निर्माण करती है, वैसे ही आदर्श बालक श्रेष्ठ पुरुषों, श्रेष्ठ ग्रन्थों व अच्छे मित्रों से उनके अच्छे गुणों को चुरा लेता है और उनके दोषों को छोड़ देता है।
14. **वह ईमानदार और आज्ञाकारी होता है:** वह जानता है कि ईमानदारी ही सर्वोत्तम नीति है। माता-पिता और गुरू के स्व-परकल्याणकारी उपदेशों को वह मानता है। वह जानता है कि बड़ों के आज्ञापालन से आशीर्वाद मिलता है और आशीर्वाद से जीवन में बल मिलता है। **ध्यान रहे:** दूसरों के आशीर्वाद व शुभकामनाएँ सदैव हमारे साथ रहते हैं।
15. **वह एक सच्चा मित्र होता है:** वह विश्वसनीय, स्वार्थरहित प्रेम देनेवाला, अपने मित्रों को सही रास्ता दिखाने वाला तथा मुश्किलों में मित्रों का पूरा साथ देने वाला मित्र होता है।

विधार्थिओं में एक अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए समावेशी शिक्षा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। शिक्षा का समावेशीकरण यह बताता है कि विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र और एक दिव्यागछात्र को समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलने चाहिए। इसमें एक सामान्य छात्र एक दिव्याग छात्र के साथ विद्यालय में अधिकतर समय बिताता है। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिए की गई थी लेकिन आधुनिक काल में हर शिक्षक को इस सिद्धांत को विस्तृत दृष्टिकोण में अपनी कक्षा में व्यवहार में लाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. अगर विद्यार्थी आदर्शवादी होंगे तो देश का भविष्य _____होगा।
2. शिक्षा का अधिकार कानून 2009 लिंग और सामाजिक श्रेणी पर ध्यान दिए बिना सभी छात्रों के लिए _____उपलब्ध कराने के इस निर्णय को अधिक मजबूत और सुदृढ़ करता है,

3.4 स्वायत्तता

स्वायत्तता अपने आप में कार्य करने की क्षमता होने का मतलब है। यह भी स्वतंत्रता या स्वतंत्रता होने का मतलब कर सकते हैं। स्वायत्तता भी एक संगठन या समूह स्वशासन होने का मतलब कर सकते हैं। आप अधिक जानकारी यहाँ पा सकते हैं।

उस बुनियादी सिद्धान्त को समझना ज़रूरी है, जो सरकारी ख़जाने से चलने वाले विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता

(Autonomy) देने का पैरोकार है। ये सिद्धान्त कई प्रश्नों के उत्तर से बना है। जैसे, स्वायत्तता का मतलब क्या है? इसकी ज़रूरत क्यों है? इसका दायरा क्या है? इसकी उपयोगिता क्या है? विश्वविद्यालय ज्ञान के ऐसे केन्द्र हैं जिसे मौजूदा दौर में 'उच्च शिक्षा संस्थान' कहा जाता है। यहाँ ज्ञान के विविध पहलुओं पर चिन्तन और चर्चा होती है। इसी से तरह-तरह के शोध और आविष्कार का बीजारोपण होता है। इसीलिए विश्वविद्यालय के कोर्स, पाठ्यक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया को यथासम्भव सरकारी या प्रशासनिक दख़लंदाज़ी से दूर रखा जाता है। यही उसकी स्वायत्तता है। विश्वविद्यालय की 'एकैडेमिक काउन्सिल' इस स्वायत्तता की संरक्षक होती है।

अधिगमकर्ता की स्वायत्तता के ऊपर सबसे पहले हेनरी होलिल ने १९८१ में अपने विचार प्रस्तुत किए थे। इसे व्यक्तिगत मानवीय विशेषता, राजनीतिक उपाय तथा एक शैक्षिक कदम के तौर पर महत्व दिया गया है। अधिगामकर्ता की स्वायत्तता के कुछ डिग्री और स्तर हैं। वास्तव में, निर्भरता और स्वायत्तता स्पष्ट अलग नहीं हैं । बल्कि, वे एक सातत्य पर मौजूद हैं। अधिगमकर्ता की स्वायत्तता को हम आठ चरणों में व्यक्त कर सकते हैं ।

i. अनुदेशन उद्देश्यों को अधिगमकर्ता के लिया स्पष्ट करना ।
ii. अधिगमकर्ता को अपने स्वयं के उद्देश्य स्थापित करने की अनुमति देना।
iii. कक्षा–कक्ष के वाहर अधिगमकर्ता को अतिरिक्त भाषा का प्रयोग करने के लिया प्रोत्साहित करना।
iv. अधिगम प्रक्रियाओं की जागरूकता को बढ़ावा देना।
v. अधिगमकर्ता की पहचान, वरीय शैलियों और रणनीतियाँ में सहायता करना।
vi. अधिगमकर्ता के द्वारा किया गये चुनाव को प्रोत्साहित करना।
vii. अधिगमकर्ता को अध्यापक बनने के लिए प्रोत्साहित करना।
viii. अधिगमकर्ता को अनुसंधानकर्ता बनने के लिए प्रोत्साहित करना।

अभ्यास प्रश्न

3. _____अपने आप में कार्य करने की क्षमता होने का मतलब है।

3.5 आत्म – सम्मान/ आत्मविश्वास

प्राचीन युग में सभी भारतीयों में आत्म-सम्मान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। पर कुछ काल तक पराधीन अवस्था के कारण वह प्राय: लुप्त सी हो गयी थी। आज हम स्वतंत्र हैं। हमें इस भावना को और अधिक प्रबल करना है। यही मनुष्यता की सीढ़ी है। इसको न पाकर हम पशु के समान ही रह जाते हैं।
आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए आत्म-विश्वास को आगे रखना पड़ता है। इसी के बल पर आत्म-सम्मान का प्रसाद खड़ा हो जाता है। हमारे मन की आकांक्षाओं पर जब तक हमें पूर्ण करने में असमर्थ रहेंगे। इसी कमी की पूर्ति आत्म – विश्वास के द्वारा हो जाती है। इसके लिए हम अहंकार और स्वार्थ के लिए झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं और धोखा आदि देते हैं।
इतना ही नहीं समय पड़ने पर वह अपनी आत्मा और सम्मान को कौड़ियों के बदले दे डालता है। ऐसे व्यक्ति से आत्म-सम्मान कोसों दूर भाग जाता है। अत: उन्हें चाहिए कि वे ऐसे जीवन से दूर रहकर अपनी आत्मा को निष्कलंक और पवित्र बनायें। तभी उनका राष्ट्र में सम्मान हो सकेगा।

सभी का सम्मान उनके आचरण पर निर्भर करता है। इसलिए सभी को अपना सम्मान पाने और बनाए रखने के लिए इस ओर ध्यान देना चाहिए। यदि आत्मसम्मान नहीं है तो समझिए कुछ भी नहीं। आत्म सम्मान के लिए आवश्यक है कि हम खुद अपनी गरिमा और सीमा को समझें व उसी के अनुरूप अपना कार्य व्यवहार करें। उचित कार्य व व्यवहार तभी संभव है, जब हम अपने दिन भर के कार्य का अवलोकन स्वयं करें। हमें देखना चाहिए कि हमने कौन से ऐसे कार्य किए जिन्हें हमें नहीं करना चाहिए था, और किए गये अच्छे कार्यों को और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है। हमें सदैव दूसरों के प्रति अच्छी भावना रखनी चाहिए। ''हमें अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए अपने आत्मसम्मान का सौदा कदापि नहीं करना चाहिए।'' हमारे व्यक्तित्व में सबसे महत्वपूर्ण चीज कुछ है तो वह है हमारा आत्मसम्मान अतः किसी भी प्रकार से इसकी सुरक्षा करना हमारा दायित्व है। कभी-कभी फायदे के लिए हम अपना ज़मीर दांव पर लगाने से नहीं चूकते। यह आत्मसम्मान के लिए खतरा है क्योंकि ''लालची व्यक्ति का आत्मसम्मान कभी बरकरार नहीं रह सकता। इसलिए लालच से खुद को दूर रखने के लिए आत्मसंयम बरतना चाहिए। जब आपकी समझ पर काफी कुछ निर्भर करता है। यदि हमें यह मालूम हो जाए कि क्या सही है और क्या गलत? तो गलत काम करने से पहले एक बारगी कदम जरूर रुकते हैं। लेकिन फिर भी हम गलत काम दोबारा दोहराते हैं तो स्वयं ही आत्मसम्मान नष्ट कर लेते हैं। आत्मसम्मान पाने में हमें जितनी मेहनत करनी पड़ती है और इसे खोने में जो क्षणिक मूर्खता करनी पड़ता है, उसमें धरा और आकाश सा अन्तर है। इसे पाने के लिए ऐसे उच्च कार्य करने पड़ते हैं, जिनका कोई मोल नहीं है। कुछ ऐसे कार्य हमें आत्मसम्मान

खोने पर मजबूर कर देते हैं। अतः हमें उन गलत कार्यों को त्यागकर अच्छे कार्यों पर जोर देनरा चाहिए। हां एक बात और कह दें आत्मसम्मान को झझकोर कर रख देने में हमारी जुबान(वाणी) की अत्यन्त तीखी एवं तीव्र भागीदारी रहती है। जुबान चाहे तो हमें आत्मसम्मान दिला सकती है ओर चाहे तो हमें गालियां दिला सकती है। अतः सदैव बात-चीत के ढ़ंग को शालीनता से सुदृढ़ता पूर्वक लहजे से प्रस्तुत करना चाहिए। दोस्तों एक आत्म विश्वास से परिपूर्ण व्यक्ति ही सुख, समर्धि, शांति, को हासिल करने में सफलता प्राप्त कर सकता है, और कामयाब व्यक्तियों में आपको एक अलग ही confidence देखने को मिलता है। आप किसी भी फिल्म स्टार, success businessman, स्पोर्ट्स पर्सन को देख लीजिये जिनमे अलग ही तरह की आत्मविश्वास होता है। आज हम आपको 7 ऐसी बाते बताने जा रहे है जिन्हें अपना कर आप अपना आत्मविश्वास बड़ा सकते है :

i. **Dressing Sense Improve करे (Improve dressing sense)** – कपड़े आदमी को नहीं बनाते हैं, लेकिन जब आप अच्छे कपडे पहनते हो अर्थात आपका ड्रेसिंग सेंस अच्छा है तो आप अच्छा फील करते हो और आपकी physical appearance भी बेहतर होती है। जब आप कही बाहर, party, function आदि में अच्छे dressing sense के साथ जाते हो तो आप अपने में विश्वास तो महसूस तो करते ही हो साथ ही साथ बाकी लोग भी आपको नोटिस करते है।

ii. **तेज चलना (Walking fast)** – अगर आप धीरे चलते हो तो लोग क्या कहते है – थका हुआ, धीमा, दर्द हो रहा है क्या इत्यादि। कौन व्यक्ति कैसा है यह कोई भी उसकी चाल से आसानी से बता सकता है इसीलिए यह हमारी personality की एक महत्वपूर्ण कारक है। आत्मविश्वासी व्यक्ति जल्दी चलते हैं। वह कही भी जाते है एक तेज चाल के साथ जाते है, स्फूर्ति के साथ लोगो से मिलते है। अगर आपको जल्दी चलने की आदत नहीं है तो आप सिर्फ 25% तेज गति से चलना शुरू करे और अपने में बदलाव देखे।

iii. **अच्छी मुद्रा (Good posture)** – इसी तरह, कोई व्यक्ति किस हाव-भाव के साथ लोगो से मिलता है यह भी बहुत मायने रखता है। झुके हुए कंधे, नीची नजरे, ढीला ढाला सा व्यक्तित्व आपको एकदम looser घोषित कर देता है। इसीलिए अपने चलने, बैठने, बोलने, देखने आदि की मुद्राओ में सुधार लाते रहिये। सीधी कमर, उचें कंधे, सीधी नजर आपके व्यक्तित्व को एकदम आकर्षक बना देती है।

iv. **महसूस करना/आभार (Feel/ Gratitude)** – जब भी आप किसी भी चीज को पाने के लिए मेहनत करना शुरू करते हो तो आपका दिमाग आपको वह कारण बताने शुरू कर देता है की आप क्यों यह चीज हासिल नहीं कर सकते। और यही चीज आपमें हीनता महसूस करती है। इन हालातो को दूर करने का सबसे अच्छा तरीका यही है की आप रोज की शांत वातावरण में बैठे और भूतकाल में पायी हुई सफलता, प्रेम, unique skills, सकारात्मक पलो के बारे में सोचे और पुनः उनका आवाहन करे। इसके बादके रिजल्ट देखकर आप एकदम हैरान रह जायेंगे की

आप कितने positive और confidence महसूस करने लगे है है और सफलता की ओर है कि अगला कदम उठाने के लिए प्रेरित किया है कितना चकित हो जाएगा।

v. **अन्य लोगो की तारीफ करे (Appreciate)** – जब भी हम अपने बारे में negative सोचते है हम दुसरे लोगो में भी बुराइया देखना शुरू कर देते है और बातचीत के क्रम में दुसरो की असफलताओ, हार में आनंद लेने लग जाते है। इस पुरे चक्र को तोड़ने का सिर्फ एक ही तरीका है की आप दुसरे लोगो की अच्छाइयों की तारीफे करे, और ज्यादा से ज्यादा positive बाते करे। इसके बाद आप देखेंगे की आपका फ्रेंड सर्किल कितनी तेजी से बढता है और इसी के साथ आपका self confidence भी।

vi. **आगे बैठो (Seat on Front Row)** – स्कूलों, कार्यालयों, और दुनिया भर में सार्वजनिक सभाओं में, लोग कमरे के पीछे बैठने के लिए प्रयास करते हैं। वे इसलिए करते है क्योकि वह डरते है की इससे वह लोगो की नजरो में आ जायेंगे। यह एक आत्मग्लानी, डर और low confidence का बहुत ही बड़ा लक्षण है। इसीलिए हमेशा प्रयास करे की आप आगे बैठे। सिर्फ 3-4 बार के बाद ही आप देखेंगे की आपका डर ख़त्म होता जा रहा है। लोग आपको notice कर रहे है और self confidence तो आप खुद ही महसूस करोगे।

vii. **दुसरो की मदद (Help others)** – कई बार हमारा confidence इतना low होता है की हम सिर्फ अपने बारे में ही सोचते रहते है और डरते रहते है। हम दुसरे लोगो पर ध्यान देना ही बंद कर देते है यदि आप ऐसा करते है तो रुकिए। अपने आसपास देखिये, जरुरतमंदो की जिस भी तरीके से मदद कर सकते है करे, दुनिया से डरे नहीं बल्कि दुनिया का एक हिस्सा बने। तब आप वास्तव में जानोगे की confidence क्या होता है और आप क्या कर सकते हो।

अभ्यास प्रश्न

4. आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए_____को आगे रखना पड़ता है ।

3.6 Freedom Experienced by Learners Respectively(स्वतंत्रता: शिक्षार्थियों द्वारा स्वयं अनुभव)

ऐसे किसी समय को याद करें जब आपके अपने अंतर (जाति, शिक्षा, भाषा, वर्ण, लिंग आदि), या शायद आपके करीबी या पहचान वाले किसी व्यक्ति के अंतर ने विद्यालय के अनुभव पर नकारात्मक या अपेक्षा से कम वाँछित प्रभाव उत्पन्न किया था। शिक्षण संस्थानों में शिक्षार्थियों को एक आम अनुभव होता है वो है भेदभाव का ।संस्थानों में भेदभाव का अधिक व्यापक और छिपा हुआ स्तर हो सकता है जो विद्यालय की संस्कृति को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित कर सकता है। संस्थागत भेदभाव अक्सर निर्विवाद होता है, खास तौर पर यदि वह काम करने का सामान्य तरीका बन जाता है। उदाहरण के लिए, यह मान्यता काफी

विस्तृत हो सकती है कि लड़कियाँ गणित या विज्ञान में अच्छा प्रदर्शन नहीं करती हैं। यह बात स्पष्ट रूप से मिथ्या है, और फिर भी लड़कियों को अनिवार्य पाठ्यचर्या से परे इन विषयों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। एक और उदाहरण यह साझा मान्यता हो सकता है कि एक विशिष्ट जातीय समूह के छात्रों को हमेशा हाथ से की जाने वाली नौकरियाँ ही मिलेंगी, इसलिए उनकी साहित्य और कलाओं की सराहना को विस्तृत करने का कोई मतलब नहीं है: इसलिए इस समूह के कवियों और कलाकारों को कभी पहचाना या प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। संस्थागत भेदभाव इस धारणा पर काम करता है कि हर चीज जैसे है वैसे ही सही है और किसी भी चीज को बदलने की जरूरत नहीं है। आपको सावधानी से आकलन करना होगा कि क्या इसे सामूहिक स्थिति में या वैयक्तिक रूप से करना सर्वोत्तम होगा, और आपको सुनिश्चित करना चाहिए कि वे तनावमुक्त महसूस करें और आपकी प्रतिक्रिया से या उनके द्वारा कही गई बात के मूल का पता लगाकर अन्य लोगों की प्रतिक्रिया से डरे बिना निस्संकोच बात करें। तथापि, इन छात्रों की बातें प्रत्यक्ष रूप से सुनना आवश्यक है, क्योंकि उन्हें उनके सामने आ रही विशिष्ट कठिनाइयों की बहुत अच्छी पकड़ होने की संभावना है और वे संभवतः आपको बता सकते हैं कि कौन से हस्तक्षेप कारगर हो सकते हैं। निम्नलिखित कारक विधार्थियों द्वारा पठन –पाठन के दौरान अर्जित किए अनुभवों का उल्लेख करते हैं:

i. **विद्यार्थी और अनुशासन-** मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । किसी समाज के निर्माण में अनुशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अनुशासन ही मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान करता है तथा उसे समाज में उत्तम स्थान दिलाने में सहायता करता है । विद्यार्थी जीवन में तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है क्योंकि यह वह समय होता है जब उसके व्यक्तित्व का निर्माण प्रांरभ होता है । दूसरे शब्दों में, विद्यार्थी जीवन को किसी भी मनुष्य के जीवनकाल की आधारशिला कह सकते हैं क्योंकि इस समय वह जो भी गुण अथवा अवगुण आत्मसात् करता है उसी के अनुसार उसके चरित्र का निर्माण होता है । कोई भी विद्यार्थी अनुशासन के महत्व को समझे बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है । अनुशासन प्रिय विद्यार्थी नियमित विद्यालय जाता है तथा कक्षा में अध्यापक द्वारा कही गई बातों का अनुसरण करता है । वह अपने सभी कार्यों को उचित समय पर करता है । वह जब किसी कार्य को प्रारंभ करता है तो उसे समाप्त करने की चेष्टा करता है ।अत: विधार्थियों को विधालय में अनुशासन में रहते हुए अपने चरित्र का निर्माण करना चाहिए तथा भविष्य में भी अनुशासन का पालन करते हुए एक प्रभावपूर्ण तथा सफलतापूर्वक जिन्दगी जीने की कोशिश करनी चाहिए।

ii. **विद्यार्थी और खेलकूद-** विधार्थी खेलकूद से अन्य शिक्षार्थीयों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करता है और समय –समय पर नए- नए अनुभव प्राप्त करता है जो उसके जीवन में वहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। शिक्षा से व्यक्ति यदि विद्वान (Learned) बनता है, तो खेलकूद से स्वस्थ (Healthy) और बलवान । शरीर को स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम (Exercise) और खेलकूद की बहुत जरूरत होती है । खेलकूद से हमारा मन भी स्वस्थ रहता है जिससे हमारे विचार त था दूसरों के साथ व्यवहार (Behavior) भी ठीक रहता है । मन और शरीर स्वस्थ रहने

पर ही हमारी पढ़ाई-लिखाई ठीक तरह से हो सकती है और हमारा भविष्य सुन्दर और सुखी बन सकता है। इसीलिए विद्यार्थी की पढ़ाई शुरू करने से पहले बचपन से खेलकूद की शिक्षा शुरू कर देनी चाहिए। अत: यह शिक्षकों का कर्त्तव्य (Duty) है कि वे विद्यालय में खेल-कूद के लिए विद्यार्थियों को जागरुक (Aware) करें और जो अभिभावक इसके विरुद्ध (Against) हैं उन्हें भी खेलकूद की जरूरत के बारे में बताएँ। आजकल अनेक विद्यालयों में इस पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है जो विद्यार्थियों के लिए लाभकारी (Beneficial) है।

iii. **विद्यार्थी जीवन और इंटरनेट-** आजकल विद्यार्थी जीवन में इन्टरनेट का अनुभव सबसे उपयोगी माना जाता है।आधुनिक शिक्षा में इंटरनेट का रोल अहम है आप मिनटों में इंटरनेट पर गूगल की सहायता से कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, आप कंप्यूटर सीख सकते हैं, अगर प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे हैं इससे पढाई करने वाले बच्चों को बहुत मदद मिलती है। आप घर बैठे यूट्यूब पर वीडियो देखकर कुछ भी बनाना सीख सकते हैं। Google Classroom जैसे कई इंटरनेट प्रोग्राम है जिसके माध्यम से स्टूडेंट और टीचर्स ऑनलाइन मिल सकते हैं क्लासरूम ऐप की मदद से न केवल होमवर्क का रिकॉर्ड रखा जा सकेगा, बल्कि इससे असाइनमेंट की तस्वीरें भी खींची जा सकती हैं। इसकी मदद से आप ड्राइंग या प्रोजेक्ट वर्क को पीडीएफ फॉरमेट में भी शेयर कर सकते हैं। अगर कोई ऐसा विषय है जिसके टीचर आपके शहर में नहीं हैं तो ऐसे कई बेवसाइट है जहां आप अपनी पंसद के टीचर से मनपसंद विषय पढ सकते हैं, इंटरनेट पर ऐसे कई डिस्टेंस लर्निंग कोर्स उपलब्ध है जिन्हें आप घर बैठे ही कर सकते हैं सर्टिफिकेट भी प्राप्त कर सकते हैं। विद्यार्थी इंटरनेट का भरपूर लाभ उठा सकते हैं, अगर कोई विषय पढकर समझ नहीं आ रहा है तो आप यूट्यूब पर उसका वीडियो देखकर भी समझ सकते हैं, इंटरनेट एक प्रकार से विद्यार्थीयों के लिये स्मार्टक्लास का काम कर सकता है

iv. **विद्यार्थी जीवन और राष्ट्र निर्माण-** विद्यार्थीयों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अर्जित किए हुए अनुभव राष्ट्र-निर्माण में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।अच्छे संस्कार ही धर्म, समाज और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यबद्ध होने की विद्यार्थी को प्रेरणा दिया करते हैं। इनसे प्रेरित होकर ही विद्यार्थी अपने प्राणों का समर्पण और उत्सर्ग किया करता है। इस प्रकार से दिव्य संस्कार का विकास प्राप्त करके विद्यार्थी समाज और राष्ट्र के प्रति अपना कोई न कोई योगदान करता ही रहता है। राष्ट्र के प्रति विद्यार्थी का योगदान बहुत बड़ा और विस्तृत भी है। वे अपने योगदान के द्वारा राष्ट्र को उन्नत और समृद्ध बना सकते हैं। राष्ट्र के प्रति विद्यार्थी तभी योगदान कर सकता है, जब वह अपनी निष्ठा और सत्याचरण को श्रेष्ठ और महान बनाकर इस कार्य क्षेत्र में उतरता है। राष्ट्र के प्रति विद्यार्थीयों का कर्म क्षेत्र बहुत ही अद्भुत और अनुपम है, क्योंकि वह शिक्षा ग्रहण करते हुए भी समाज और राष्ट्र के हित के प्रति अपना अधिक से अधिक योगदान दे सकता है। यह सोचते हुए यह विचित्र आभास होता है कि शिक्षा और राजनीति दोनों पहलुओं के लेकर विद्यार्थी कैसे आगे बढ़ सकता है। क्योंकि विद्या और राजनीति का सम्बन्ध परस्पर भिन्न और विपरीत है। अतएव विद्यार्थी का अपने समाज और राष्ट्र के प्रति योगदान देना और इसका निर्वाह करना अत्यन्त

विकट और दुष्कर कार्य है। फिर एक समाज चिन्तक और राष्ट्रभक्त विद्यार्थी विद्याध्ययन करते हुए भी अपना कोई न कोई योगदान अवश्य दे सकता है। अगर ऐसा कोई विद्यार्थी करने में अपनी योग्यता का परिचय देता है, तो निश्चय ही वह महान राष्ट्र-धर्मी, राष्ट्र का नियामक और राष्ट्र नायक हो सकता है।

v. **विद्यार्थी और उनके कर्तव्य-** विद्यार्थी जीवन मानव जीवन का स्वर्णिम काल होता है। जीवन के इस पड़ाव पर वह जो भी सीखता, समझता है अथवा जिन नैतिक गुणों को अपनाता है वही उसके व्यक्तित्व व चरित्र निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी का अपने माता-पिता के प्रति यह पुनीत कर्तव्य बनता है कि वह सदैव उनका सम्मान करे। सभी माता-पिता यही चाहते हैं कि उनका पुत्र बड़ा हौकर उनका नाम ऊँचा करे। वह बड़े होकर उत्तम स्वास्थ्य, धन व यश आदि की प्राप्ति करे। इसके लिए वे सदैव अनेक प्रकार के त्याग करते हैं। इन परिस्थितियों में विद्यार्थी का यह दायित्व बनता है कि वह पूरी लगन और परिश्रम सै अध्ययन करे तथा अच्छे अंक प्राप्त करें व अच्छा चरित्र धारण करने का प्रयत्न करे। अपने गुरुओं, शिक्षकों अथवा शिक्षिकाओं के प्रति विद्यार्थी का परम कर्तव्य है कि वह सभी का आदर करे तथा वे जो भी पाठ पढ़ाते हैं वह उसे ध्यानपूर्वक सुने तथा आत्मसात् करे। यह आवश्यक है कि वह किसी भी अन्य विद्यार्थी के साथ ईर्षा, द्वेष अथवा कटुता जैसी भावनाओं को न पनपने दे। यदि किन्हीं परिस्थितियों में इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है तो आपस में विचार करके अथवा अपने गुरुजन की सहायता से इस समस्या का हल निकालने का प्रयास करे। यह अनुभव विधार्थी विधालय में रहकर प्राप्त कर सकता है।

vi. **विद्यार्थी और समाज सेवा-** समाज सेवा से अभिप्राय है कि जिस समाज में हम रहते हैं,खाते हैं,पीते हैं व जीते हैं उन्ही लोगों की सेवा करना, उनकी मदद करना व उनका हित करना। तथा यह सब निस्स्वार्थ करना चाहिये। इससे पूरे राष्ट्र की व्यवस्था मे सुधार किया जा सकता है। समाज सेवा के द्वारा सरकार और जनता दोनों की आर्थिक सहायता की जा सकती है। पड़ोसियों की सेवा करना भी समाज सेवा ही है ।हमारा देश कृषि प्रधान देश है। हमारे ग्रामों की उन्नति हमारे देश की उन्नति है। हर एक भारतीय का कर्तव्य है कि उनकी उन्नति में सहयोग दें। विद्यार्थियों पर ही तो सारे देश का भविष्य निर्भर है, अतः समाज की सेवा करना हर विद्यार्थी का कर्तव्य है। समाज सेवकों का कर्तव्य है कि सच्चे दिल से समाज की सेवा करें।सच्चे हृदय से की गयी समाज सेवा ही इस देश व इस पूरे संसार का कल्याण कर सकती है।

vii. **विद्यार्थी और फैशन-** शिक्षा के साथ-साथ विधार्थी को अपने जीवन में फैशन का अनुभव भी होता रहता है। आदर्श विद्यार्थी वही कहलाता है जिसका उद्देश्य शिक्षा ग्रहण करना व अत्यधिक ज्ञान प्राप्त करना होता है। आज के समय में फैशन का बोलबाला है। जहाँ भी देख लीजिए लोग फैशन में सराबोर होते दिखाई दे रहे हैं। यह फैशन आज के विद्यार्थियों के सर चढ़कर बोल रहा है। इस फैशन से विद्यार्थी दिशाहीन हो रहे हैं। वे अपना अधिकतर समय फैशन से युक्त कार्यक्रम और पत्र-पत्रिका पढ़ने में लगाते हैं। विद्यार्थियों में बढ़ रहा फैशन का चलन उनकी शिक्षा के लिए

उचित नहीं है। अपने प्रति मनुष्य को सचेत होना चाहिए परन्तु ऐसा न हो कि स्वयं को बनाने में इतना व्यस्त हो जाओ कि शिक्षा को भूल जाए, तो यह श्रेयकर नहीं है। विद्यार्थी शब्द का उच्चारण करते हुए हमें ऐसे व्यक्ति का स्मरण हो आता है जिसका उद्देश्य शिक्षा प्राप्त करना होता है। वह विद्या-अनुरागी, परिश्रमी, सुशील, व्यक्ति होता है। वह अपनी पाठशाला को उसी प्रकार पूजता है जैसे भगवान को पूजा जाता है। अपने समय को बर्बाद न करके विद्या अध्ययन में समय व्यतीत करता हो। उसके लिए विद्या ग्रहण करना मजबूरी न हो, वह उसे रुचि लेकर पूरी तन्मयता से पठन व पाठन करता हो। परन्तु फैशन इस परिभाषा को ही बदलकर रख देता है। वह फैशन को इतना महत्व देता है कि बाकी अन्य कार्यों के लिए उसे समय ही नहीं मिलता है। विद्यार्थी को चाहिए कि फैशन के स्थान पर अपनी शिक्षा को महत्व दे। फैशन करने के लिए तो पूरी उम्र पड़ी होती है। परन्तु शिक्षा के लिए सही उम्र विद्यार्थीकाल है

viii. **विद्यार्थी और राजनीति**- राजनीतिक अनुभव भी विधार्थी शिक्षा के साथ–साथ ग्रहण करता रहता है। विद्यार्थी जीवन मानव जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय होता है । इस काल में विद्यार्थी जिन विषयों का अध्ययन करता है अथवा जिन नैतिक मूल्यों को वह आत्मसात् करता है वही जीवन मूल्य उसके भविष्य निर्माण का आधार बनते हैं । पुस्तकों के अध्ययन से उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है परंतु इसके अतिरिक्त अनेक बाह्य कारक भी उसकी जीवन-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं । विभिन्न प्रकार के आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक परिवेश उसके जीवन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं । विद्यार्थी जीवन में प्राप्त अनुभव व ज्ञान ही आगे चलकर उसके व्यक्तित्व के निर्माण हेतु प्रमुख कारक का रूप लेते हैं ।मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अत: जहाँ वह निवास करता है उसके अस-पास होने वाली घटनाओं के प्रभाव से वह स्वयं को अलग नहीं रख सकता है । उस राष्ट्र की राजनीतिक, धार्मिक व आर्थिक परिस्थितियाँ उसके जीवन पर प्रभाव डालती हैं । गाँधी जी एक कुशल राजनीतिज्ञ थे, हालाँकि वे साथ-साथ एक संत और समाज-सुधारक भी थे । आज के विद्यार्थियों को उनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।राजनीति में अपराधी तत्वों के समावेश को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि हम विद्यार्थी जीवन से ही छात्रों को राजनीति की शिक्षा प्रदान करें । शिक्षकों का यह दायित्व बनता है कि वह छात्रों को वास्तविक राजनीतिक परिस्थितियों से अवगत कराएँ ताकि वे बड़े होकर सही तथा गलत की पहचान कर सकें ।

ix. **विद्यार्थी और नैतिक मूल्य-** नैतिक मूल्य विधार्थी के जीवन में अनुभव से ही आते हैं।नैतिक शिक्षा मनुष्य के जीवन में बहुत आवश्यक है। इसका आंरभ मनुष्य के बाल्यकाल से ही हो जाता है। सब पर दया करना, कभी झूठ नहीं बोलना, बड़ों का आदर करना, दुर्बलों को तंग न करना, चोरी न करना, हत्या जैसा कार्य न करना, सच बोलना, सबको अपने समान समझते हुए उनसे प्रेम करना, सबकी मदद करना, किसी की बुराई न करना आदि कार्य नैतिक शिक्षा या नैतिक मूल्य कहलाते हैं। सभी धर्मग्रंथों का उद्देश्य रहा है कि मनुष्य के अंदर नैतिक गुणों का विकास करना ताकि वह मानवता और स्वयं को सही रास्ते में ले जा सके। एक बच्चे को बहुत पहले ही

घरवालों द्वारा नैतिक मूल्यों से अवगत करा दिया जाता है। जैसे-जैसे उसकी शिक्षा का स्तर बढ़ता जाता है। उसके मूल्यों में विस्तार होना आवश्यक हो जाता है। ये मूल्य उसे सिखाते हैं कि उसे समाज में, बड़ों के साथ, अपने मित्रों के साथ व अन्य लोगों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

5. किसी समाज के निर्माण में अनुशासन की महत्वपूर्ण _____होती है।
6. समाज सेवा से अभिप्राय है कि जिस समाज में हम रहते हैं,खाते हैं ,पीते हैं व जीते हैं उन्ही लोगों की सेवा करना, उनकी मदद करना व उनका हित करना। तथा यह सब _____करना चाहिये।

3.7 सारांश

अच्छा विद्यार्थी ही अच्छे नागरिक का पर्याप्त हो सकता है। अच्छा विद्यार्थी आदर्श बालक बालिका वही है जो बड़ों का सम्मान करे और छोटों से स्नेह रखे। जो सभी धर्मों का सम्मान करे और समभाव रखे। अपने देश के कानून और समाज का आदर करे और आत्म उन्नति एवं राष्ट्र उन्नति में सहायक हो। इस इकाई में आपने सीखा कि छात्रों में विविधता और भिन्नताओं को क्रियात्मक ढंग से संबोधित करके समावेश को कैसे प्रोत्साहित किया जाय ताकि प्रत्येक छात्र को समान शैक्षणिक अवसर प्रदान किए जा सकें और वह आपके विद्यालय में सीखने में भाग ले सके। कई छात्रों द्वारा अपने दैनंदिन जीवन में अनुभव की गई असमानताओं को संबोधित करना बेशक एक बहुत बड़ा काम है। लेकिन विद्यालयों में समानता की ओर बढ़ने और उनके जीवन में बदलाव लाने का वास्तविक अवसर है सीखने के लिए एक समावेशी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना, जिसे सारी स्टाफ टीम द्वारा साझा किया जाता है और उन छात्रों द्वारा देखा जाता है जो अपने समकक्षों का सम्मान करना और उन्हें महत्व देना सीख सकते हैं। विद्यालय नेता के रूप में आप बहुत कुछ कर सकते हैं, क्योंकि आप एक ऐसी अनोखी स्थिति में हैं जहाँ से आप कई हजार छात्रों के जीवन को प्रभावित कर सकते हैं और उसमें आवश्यक बदलाव ला सकते हैं ताकि वे अपनी क्षमताओं का पूरा लाभ उठा सकें और अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचें। इसके लिए साहस, समीक्षात्मक विश्लेषण, महत्वाकांक्षा और निष्कपट मूल्यांकनों की जरूरत पड़ती है। यदि कदम बहुत बड़े लगते हैं, तो नन्हे कदमों से शुरू करें और ऐसे विद्यालय का निर्माण करें जो उस निष्पक्षता और समानता के लिए मशहूर हो जिस पर आपको गर्व हो सकता है। पुस्तकों के अध्ययन से उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है परंतु इसके अतिरिक्त अनेक बाह्य कारक भी उसकी जीवन-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। विभिन्न प्रकार के आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक परिवेश उसके जीवन पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। विद्यार्थी जीवन में प्राप्त अनुभव व ज्ञान ही आगे चलकर उसके व्यक्तित्व के निर्माण हेतु प्रमुख कारक का

रूप लेते हैं। यदि एक देश का विद्यार्थी नैतिक मूल्यों से रहित होगा, तो उस देश का कभी विकास नहीं हो सकता। लेकिन विडंबना है कि यह नैतिक मूल्य हमारे जीवन से धूंधले होते जा रहे हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली से नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। क्योंकि इनमें नैतिक शिक्षा का अभाव है। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए हम किसी भी हद तक गिर जाते हैं। ये इस बात का संकेत है कि समाज कि स्थिति कितनी हद तक गिर चुकी है। चोरी, डकैती, हत्याएँ, धोखा-धड़ी, जालसाज़ी, बेईमानी, झूठ, दूसरों और बड़ों का अनादर, गंदी आदतें नैतिक मूल्यों में आई कमी का परिणाम है। हमें चाहिए नैतिक शिक्षा के मूल्य को पहचाने और इसे अपने जीवन में विशेष स्थान दे।

किसी समाज के निर्माण में अनुशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3.8 शब्दाबली

1. स्वायत्तता - अपने आप में कार्य करने की क्षमता का होना
2. निष्पक्षता - निष्पक्ष रूप से / विना भेदभाव के
3. बाल्यकाल – बाल्यवस्था का समय
4. दिशाहीन - सही दिशा से भटकना
5. सत्याचरण - सत्य का आचरण करना
6. आत्मग्लानी - स्वमं की गलती का अनुभव होना
7. अधिकारहीन - अधिकार से वंचित

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उज्जवल
2. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा
3. स्वायत्तता
4. आत्म-विश्वास
5. भूमिका
6. निस्स्वार्थ

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रामशक्ल पाण्डेय,करुणाशंकर मिश्र –विनोद पुष्तक मंदिर आगरा
2. रेनु चौधरी -मूल्य एवं नैतिक शिक्षण –अपोलो प्रकाशन जयपुर
3. Ainscow, M., Booth, T. and Dyson, A. (2006) Improving Schools Developing Inclusion. Abingdon: Routledge.

4. Artiles, A., Kozleski, E., Dorn, S. and Christensen, C. (2006). 'Learning in inclusive education research: remediating theory and methods with a transformative agenda', Review of Research in Education, no. 30, pp. 65–108.
5. Causton-Theoharis, J. (2009) 'The golden rule of providing support in inclusive classrooms: support others as you would wish to be supported', Teaching Exceptional Children, vol. 42, no. 2, pp. 36–43.

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. . विधालय में शिक्षार्थियों के आपसी सम्बन्धों के वारे में संक्षिप्त टिप्पणी करें।
2. स्वायत्तता क्या है तथा विधालय में शिक्षार्थी की स्वायत्तता का क्या महत्व है?
3. आत्म - सम्मान/ आत्मविश्वास क्या है तथा विधार्थी में इसका विकास कैसे होता है?
4. शिक्षार्थियों द्वारा स्वतंत्रत रहकर स्वयं अनुभव कैसे ग्रहण किया जाता है ? व्याख्या करें।

इकाई 4- शिक्षण एक व्यवसाय

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 शिक्षण एक व्यवसाय
  4.3.1 व्यवसाय का अर्थ
  4.3.2 व्यवसाय के मानक एवं विशेषताएँ
  4.3.3 शिक्षण की परिभाषा एवं प्रकार
  4.3.4 शिक्षण की विशेषताएँ
4.4 शिक्षण व्यवसाय का विश्लेषण
  4.4.1 व्यवस्थापक के रूप में
  4.4.2 सुगमकर्ता के रूप में
  4.4.3 परामर्शदाता के रूप में
  4.4.4 समाज में शिक्षक की भूमिका
4.5 शिक्षक के वृत्तिक या व्यवसाय उन्नयन की आवश्यकताएं एवं सुअवसर
  4.5.1 शिक्षक के व्यक्तिगत व व्यवसायिक गुण
  4.5.2 शिक्षकों का व्यवसायिक प्रशिक्षण उन्नयन
4.6 संस्थागत व्यवस्था में शिक्षकों के बहु-उत्तरदायित्व
4.7 शिक्षकों के विश्वास तथा प्रथाएँ, व्यावसायिक के रूप में
  4.7.1 शिक्षण के व्यावसायिक मानक
  4.7.2 शिक्षण में जवाबदेही
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

शिक्षण का अर्थ है शिक्षा देना या प्रशिक्षण देना। शिक्षण एक सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसका अंतिम लक्ष्य है बालक का संपूर्ण विकास। इसमें शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों ही सक्रिय रहते है। विद्यालय में शिक्षक की कई जिम्मेदारियाँ होती हैं। कक्षा में छात्राओं में विभिन्नताए पायी जाती है। वे अलग अलग वर्गो, परिवार तथा समुदाय से आते है। शिक्षक को उन्हें कैसे ढालना है ये बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार शिक्षण एक कला है जिसके दो प्रमुख तत्व है – पाठ्यवस्तु तथा कक्षा व्यवहार। इस इकाई में हम शिक्षण व्यवसाय के रूप में का अध्ययन करेंगे तथा शिक्षक के वृत्तिक बढोतरी की, उनके व्यक्तिगत गुण और उत्तरदायित्वों का वर्णन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. वृत्तिक का अर्थ बता सकेंगे एवं उसके विशेषताएँ का वर्णन कर सकेंगे।
2. शिक्षण का अर्थ एव विशेषताएँ बता सकेंगे।
3. शिक्षण व्यवसाय के विशेषताएँ का स्पष्टिकरण कर सकेंगे।
4. शिक्षक के वृत्तिक बढोतरी की आवश्यकताएं एवं सुअवसर के उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे।
5. शिक्षक के गुणों की व्याख्या कर सकेंगे।
6. संस्थागत व्यवस्था में शिक्षकों के बहुउत्तरदायित्वों को स्पष्ट कर सकेंगे

4.3 शिक्षण एक व्यवसाय

समाज में कोई भी व्यवसाय हो, उसकी सफलता सदा परिश्रम, लग्न एवं निरन्तर प्रयास करते रहने पर निर्भर रहती है। शिक्षक को भी उच्चस्तरीय शिक्षण एवं छात्रोन्ति हेतु सदा तत्पर एवं प्रयासरत रहने की आवश्यकता है।

4.3.1 व्यवसाय/ वृत्तिका का अर्थ

वृत्तिका शब्द वृत्ति से बना है जिसका अर्थ है व्यवसाय। अंग्रेज़ी शब्दकोश में व्यवसाय का अर्थ है किसी कार्यकौशल विशेष पर आधारित व्यवसाय का होना। इसे अपनाकर व्यक्ति अपना जीविकोपर्जन करता है। वह अपने अर्जित ज्ञान व प्रशिक्षण द्वारा आने ग्राहकों को सेवा प्रदान करता है जिसके एवज में वह निश्चित शुल्क लेता है। हलांकि कुछ व्यवसाय निशुल्क भी अपनी सेवा प्रदान करते हैं। आजकल डॉक्टरी व इंजीनियरिग की भाँति शिक्षण को भी एक वृति तथा शिक्षक को एक वर्तिक माना गया है। इस प्रकार व्यवसाय के भी कुछ मानक और विशेषताएँ होती है जिसकी हम चर्चा करेंगे।

4.3.2 व्यवसाय के मानक एवं विशेषताएँ

व्यवसयों की संस्थानों द्वारा कुछ निम्नलिखित मानक निर्धारित किये गए हैं जो इस प्रकार हैं –

i. निर्धारित योग्यता धारण करने के पश्चात् ही सम्बंधित व्यवसाय हेतु लाईसेंस देना।
ii. अनैतिक आचरण न करना।
iii. किसी ग्राहक का शोषण न करना।
iv. समाज कल्याण के कार्यों को बढ़ावा देना।
v. आवश्यकता पड़ने पर सेवा उपलब्द करना।
vi. सेवा कार्यों के बदले उचित शुल्क लेने का अधिकार।
vii. सामाजिक कार्यों में प्रतिवद्धता।

व्यवसाय की विशेषताएँ इस प्रकार है -

i. व्यवसाय अपने सदस्यों के निरंतर सेवाकालीन प्रशिक्षण की मांग करता है।
ii. व्यवसाय समाज सेवा प्रदान करता है।
iii. हर व्यवसाय की अपनी आचार संहिता होती है।
iv. व्यवसाय अपना खुद का संगठन गठित करता है।
v. व्यवसाय का अपना विशिष्ट ज्ञान का भण्डार होता है।
vi. व्यवसाय अपने सदस्यों के व्यवसाहिक जीविका का आश्वासन देता है।

4.3.3 शिक्षण की परिभाषा एवं प्रकार

संकुचित अर्थ में शिक्षण का तात्पर्य बालक को कक्षा में ज्ञान देना है। परन्तु शिक्षण केवल ज्ञान देना ही नहीं अपितु मनुष्य के जीवन में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इस दृष्टि से व्यापक शिक्षण में ओपचारिक तथा अनोपचारिक दोनों प्रकार के साधन निहित है। पाठक एवं त्यागी ने शिक्षण की संकुचित तथा व्यापक परिभाषा दी है –"अपने संकुचित अर्थ में शिक्षण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को एक निश्चित योजना के अनुसार, एक निश्चित समय तक, एक निश्चित बात का शिक्षण दिया जाता है।" "अपने व्यापक अर्थ में शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को अपने परिवार, विधालय, मित्रता, मनोरंजन और व्यवसाय से अपने वातावरण को अनुकूलन करने के लिए आजीवन शिक्षण प्राप्त करना होता है।"
कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षण को उसके प्रकार के अनुसार परिभाषित किया है। शिक्षण तीन प्रकार की होती है – एकतंत्रात्मक, प्रजातंत्रात्मक और मुक्तात्मक शिक्षण। एच. सी. मौरिसन ने एकतंत्र शिक्षण (Autocratic Teaching) की परिभाषा इस प्रकार दी, "शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें अधिक विकसित व्यक्तित्व कम विकसित व्यक्तित्व के संपर्क में आता है और कम विकसित व्यक्तित्व की अग्रिम शिक्षा के लिए विकसित व्यक्तित्व व्यवस्था करता है। इसमें शिक्षक का स्थान प्रधान माना जाता है और छात्र गौण होता है।

H.C.Morrison (1934), "Teaching is an intimate contact between a more mature personality and a less mature one which is designed to further the education of the later."

एन. एल. गेज ने प्रजातंत्रात्मक शिक्षण को परिभाषित करते हुए कहा, "एक के व्यवहारों को आवश्यक दिशा तथा मात्रा में प्रभावित करने हेतु पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना का स्वरूप ही शिक्षण है। इसमें शिक्षक एक पथ प्रदर्शक होता है और छात्र अधिक क्रियाशील रहता है।

"Teaching is a form of inter-personal influnce aimed at changing the behaviour potential of another person." N.L.Gage (1962)

ब्रुवेशर के अनुसार, "मुक्तात्मक शिक्षण उन परिस्थितियों की व्यवस्था एवं संचालन है जिसमें अंतराल तथा बाधाएँ होती है जिन्हें व्यक्ति दूर करने के प्रयासों के फलस्वरूप अधिगम करता है।" इसमें छात्र अधिक सक्रिय रहता है।

"Teaching is an arrangement and manipulation of a situatin in which there are gaps and obstructions which an individual will seek to overcome and from which he will learn in the course of doing so." John Brubacher

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर शिक्षण का निम्नलिखित स्वरूप पाया गया है -

1. शिक्षण ज्ञान प्रदान करता है।
2. शिक्षण एक मार्गदर्शन है। यह बालक को पथ प्रदर्शन करता है।
3. शिक्षण द्वारा बालक को उसके सामाजिक पर्यावरण के अनुकूल ढाला जा सकता है।
4. शिक्षण द्वारा बालक में सीखने की रूचि उत्पन्न किया जा सकता है।
5. शिक्षण द्वारा बालक को भावी जीवन के लिए तैयार किया जा सकता है।
6. शिक्षण सीखने के विभिन्न तत्वों जैसे विषय, शिक्षण विधियाँ, व्यक्तिगत विभिन्ताएँ आदि में सम्बन्ध स्थापित करता है।
7. शिक्षण एक कला है। व्यक्ति एक अच्छा शिक्षक तभी बन पाता है जब उसमे प्रतिभा, बुद्धि और योग्यता हो।
8. शिक्षण समाज सेवा है और शिक्षक एक समाजसेवी क्योंकि वह बालक के आचरण और व्यवहार को सही दिशा देकर उसे अच्छा नागरिक बनाता है।
9. शिक्षण एक कौशलपूर्ण कार्य है।
10. शिक्षण संवेगों का प्रशिक्षण है क्योंकि शिक्षक बालक के संवेगों को प्रशिक्षित करता है।

4.3.4 शिक्षण की विशेषताएँ

शिक्षण की विशेषताएँ इस प्रकार है –

1. शिक्षण निदानात्मक तथा उपचारात्मक होता है।

2. यह छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल देता है।
3. यह छात्रों को प्रोत्साहन प्रदान करता है।
4. यह छात्रों को सूचनाएं प्रदान करता है।
5. यह जीवनोपयोगी ज्ञान प्रदान करने में सहायक होता है।
6. यह शिक्षक तथा उसके छात्र के मध्य स्वस्थ और मधुर सम्बन्ध स्थापित करता है।
7. यह छात्रों में सृजनात्मक क्षमताओं का विकास करता है।
8. यह छात्रों को क्रियाशील बनाता है।
9. यह छात्रों के पूर्व ज्ञान पर आधारित होता है।
10. इससे सीखने के प्रति रोचकता उत्पन्न होती है।

शिक्षण वृत्तिक की विशेषताएँ

एक अच्छे शिक्षण व्यवसाय की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो निम्नलिखित हैं -

1. इसकी अपनी आचार संहिता होती है।
2. यह सेवाकालीन विकास उत्पन्न करता है।
3. यह ज्ञान के व्यवस्थित भंडार पर आधारित है।
4. यह एक सामाजिक सेवा है।
5. इसमें बोद्धिक क्रियाएं सम्मलित है।
6. यह उच्च मूल्यों का स्वायत्तता प्रदान करता है।
7. यह आत्म संगठन की ओर ले जाता है।
8. इसमें अध्ययन और प्रशिक्षण शामिल है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यवसयों की संस्थानों द्वारा निर्धारिती किन्हीं दो मानको का वर्णन कीजिए।
2. शिक्षण व्यवसाय की किन्हीं चार विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. शिक्षण के प्रकार कौन कौन से है ?
4. "मुक्तात्मक शिक्षण उन परिस्थितियों की व्यवस्था एवं संचालन है जिसमें अंतराल तथा बाधाएँ होती है जिन्हें व्यक्ति दूर करने के प्रयासों के फलस्वरूप अधिगम करता है।"यह कथन किसकी है -
    a. एन. एल. गेज
    b. एच. सी. मौरिसन
    c. ब्रुवेशर
    d. पाठक एवं त्यागी

4.4 शिक्षण व्यवसाय का विशलेषण (Analysis of Teaching)

चूँकि शिक्षण एक जटिल प्रक्रिया है इसके अध्ययन हेतु इसके अंगो का ज्ञान आवश्यक है शिक्षण के यह अंग निम्नलिखित हैं –

शिक्षक की भूमिका

4.4.1 शिक्षक एक व्यवस्थापक या प्रबंधक के रूप में

आई. के . डेवीज के अनुसार शिक्षक एक व्यवस्थापक या प्रबंधक है। इसे सत्यापित करने के लिए उन्होंने शिक्षक की कार्यो की व्याख्या की। उन्होंने कहा कि शिक्षक अधिगम शिक्षण वातावरण का निर्माण कर शिक्षण का नियोजन करता है। शिक्षण अधिगम साधनों की व्यवस्था करता है और उनको क्रियान्वित करता है। वह अपने छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करता है। वह उन सभी क्रियाओं को नियंत्रण करता है जिससे शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके और यदि उद्देश्यों की प्राप्ति में असफलता हो तो वह कोशिश करता है कि किस तरह उनमें सुधार लाया जाये। इस प्रकार शिक्षक कई भूमिका निभाता है। वह एक नियोजनकर्ता के रूप में, संगठनकर्ता के रूप में, एक प्रशासक के रूप में, एक निर्देशक के रूप में, एक परामर्शदता के रूप में , एक नियंत्रणकर्ता के रूप में और एक नेता के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार प्रबंधक के रूप में शिक्षक के कार्यो को चार सोपानों में विभाजित किया जाता है –

- नियोजन सम्बन्धी कार्य
- संगठन या व्यवस्था सम्बन्धी कार्य
- मार्गदर्शन या अग्रसर सम्बन्धी कार्य तथा
- नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य

1. **नियोजन सम्बन्धी कार्य Planning -** शिक्षण-अधिगम व्यवस्था का यह पहला और महत्वपूर्ण सोपान है। आई. के. डेवीज के शब्दों में – "नियोजन के अंतर्गत वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं जिन्हें शिक्षक सीखने के उद्देश्यों की स्थापना के लिए सम्पन्न करता है।"

   "In teaching, planning is the work a teacher does to establish learning objectives." - I.K. Davis

   नियोजन सम्बंधित क्रियाओं के अंतर्गत शिक्षक की क्रियाएँ निम्न प्रकार हैं –

   a. प्रणाली विश्लेषण (System Analysis),
   i. कार्य विश्लेषण (Task Analysis),
   ii. पूर्व योग्यताओ का बोध करना (Entering Behaviour),
   iii. ज्ञान, कौशल तथा अभिवृति का विशिष्टकरण करना (Specification of knowledge, skill and attitude),
   iv. आवश्यकताओं को पहचानना (Identifying needs),

v. उद्देश्यों की व्याख्या करना (Formulating objectives) तथा

vi. मूल्यांकन के लिए मानदंड परीक्षा का नियोजन करना (Criterion test)

2. **संगठन या व्यवस्था सम्बन्धी कार्य Organization-** इसके अन्तर्गत शिक्षक अधिगम स्त्रोतों की व्यवस्था करता है तथा शिक्षण को क्रियान्वित करता है जिनके माध्यम से वह अधिगम के स्त्रोतो को व्यवस्थित तथा संगठित करता है। इस प्रकार वह शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति प्रभावपूर्ण ढंग से करता है। आई. के. डेवीज ने इसका वर्णन इस प्रकार किया, "व्यवस्था शिक्षक का वह कार्य है जिसमें वह सीखने के साधनों को व्यवस्थित व सम्बंधित करता है जिससे सीखने के उद्देश्यों का बहुत प्रभावशाली, कुशलतापूर्वक तथा मितव्ययी ढंग से प्राप्त होना संभव हो।"

"Organisation is the work a teacher does to arrange and release learning resources so as to realise learning objectives in the most effective, efficient and economical way possible." - I.K. Davis

3. **मार्गदर्शन या अग्रसरण सम्बन्धी कार्य तथा Leading-** इसमें शिक्षक का कार्य शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में छात्रों को अग्रसर करना, मार्गदर्शन देना व प्रोत्साहित करना है। इसकी प्राप्ति के लिए वे विधियों तथा प्रविधियो का चयन करते है। आई. के. डेवीज के अनुसार, " अग्रसरण या मार्गदर्शन शिक्षक का वह कार्य है जिसमें वह अपने विद्यार्थियों को प्रेरित, प्रोत्साहित तथा उत्तेजित करता है, जिससे सीखने के उद्देश्यों को सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।"

"Leading is the work a teacher does to motivate, encourage and inspire his students so that they will readily achieve learning objectives." - I.K. Davis

4. **नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य Controlling-** यह शिक्षण-अधिगम व्यवस्था का अंतिम व महत्वपूर्ण सोपान है। इसमें शिक्षक यह देखता है की उद्देश्यों की प्राप्ति हुई की नहीं। इसके लिए वह शिक्षण प्रणाली का मूल्यांकन करता है, अधिगम प्रणाली का निरीक्षण करता है तथा शिक्षण अधिगम प्रणाली में सुधार लता है।

आई. के. डेवीज ने इस सन्दर्भ में कह –"शिक्षण में नियंत्रण शिक्षक का वह कार्य है जिसमें वह यह निर्धारित करता है कि उसकी योजनायें प्रभावपूर्ण ढंग से लागू की जा रही है, व्यवस्था शक्तिशाली है तथा अग्रसरण सही दिशा में है और यह सब कार्य पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल हैं।"

In teaching, controlling is the work a teacher does to determine whether his plans are being carried out effectively, organization is sound, realizing it in right direction and that how far these functions are successful in realizing the set objectives

- I.K. Davis

उपरोक्त व्याख्या द्वारा यह ज्ञात हुआ कि शिक्षण-अधिगम व्यवस्था के चार सोपान होते है जो भिन्न भिन्न होने पर भी एक दूसरे से सम्बंधित है। इन सोपानों का चक्रीय सम्बन्ध चित्र द्वारा प्रदर्शित की गयी है -

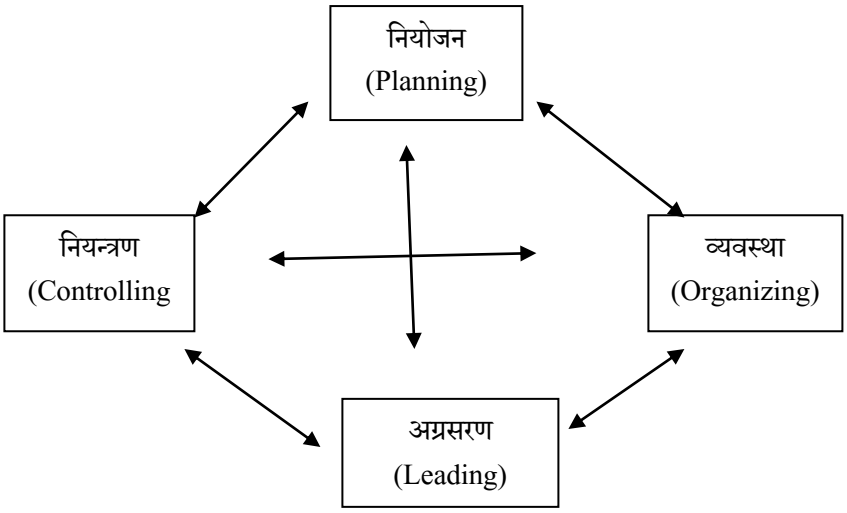

चित्र 1: शिक्षण-अधिगम व्यवस्था

4.4.2 सुगमकर्ता के रूप में

शिक्षक सदा से ही छात्र का मित्र, सहयोगी व मार्गदर्शक रहा है । उसे कुशलतापूर्वक छात्र के हितों, सीमाओं व लक्ष्य को ध्यान में रखकर उपयुक्त सहायतार्थ साधन उपलब्ध करने में सहायक होना है । सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक का कार्य अधिगम को सुगमता प्रदान करना है । वह छात्रों को उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है जिससे छात्र का वांछित विकास हो सके । वह परदे के पीछे से केवल एक पथदर्शक की भूमिका निभाता है।

उदाहरण के लिए, एक शिक्षक निर्देशक के रूप में छात्रों को पर्यावरण साफ-सुथरा रखने के विषय में व्याख्यान देता है और स्वंय शिक्षण का केंद्र बनकर छात्रों की गतिविधिओं को सीमित रखता है। जबकि एक अन्य शिक्षक छात्रों को पर्यावरण का फिल्म द्वारा गंदे वातावरण का ज्ञान प्रस्तुत करता है और इस विषय में छात्रों के वार्तालाप को प्रोसाहित कर, उनसे ही वातावरण व घर को स्वच्छ रखने हेतु निष्कर्ष निकलता है, तो वह एक अच्छा सुगमकर्ता कहलाता है।

एक सुगमकर्ता की तरह शिक्षक कई प्रकार की क्रियाओं को बढावा दे सकता है, जैसे कि –

i. पुस्तकालय द्वारा
ii. योजना पद्धति द्वारा
iii. प्रयोगों द्वारा

iv. गृह कार्य द्वारा, आदि

इन सब क्रियाओं में इस बात पर ध्यान देना होता है कि छात्र क्रियाओं को करने में मुख्य पदों को किस प्रकार व्यवस्थित करते है। वे अपने अधिगम को किस क्रम में रखते है, व शिक्षक से उस विषय पर वार्तालाप करके उपयुक्त निष्कर्ष पर कैसे पहुँचते हैं।

4.4.3 परामर्शदाता के रूप में

छात्र को एक प्रगतिशील इकाई मानते हुए उसके प्रायसों को उपयुक्त दिशा प्रदान करना एक अच्छे परामर्शदाता के रूप में शिक्षक का कार्य सदा उत्तरदायित्वपूर्ण माना जाता रहा है। छात्र में निहित गुणों, योग्यताओं व सीमाओं को आगे बढ़ाने हेतु शिक्षक द्वारा परामर्श दिया जाना शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण सोपान है।

परामर्शदाता के रूप में शिक्षक बालक को ज्ञान प्राप्ति के लिए परामर्श देता है। शिक्षक छात्रों को परामर्श दो दशाओं में देता है –

i. जब छात्र समस्या स्वयं हल न कर पाने पर शिक्षक से सहायता माँगने आते है।
ii. जब शिक्षक स्वयं छात्रों की समस्या को अनुभव करता है व उसे समस्या समाधान में सहायता प्रदान करता है।

एक उत्तम परामर्शदाता वह शिक्षक है, जो छात्रों को उसके समस्या समाधान में उसके सामर्थ व शक्ति का सही आलांकन करने पर सहायक हो। अतः शिक्षक को प्रभावशाली परामर्शदाता बनने के लिए एक अच्छा श्रोता, एक गहन निरीक्षक एवं सहानुभूतिपूर्ण, संवेदनशील व उद्देश्यपरक परामर्शदाता की भूमिका वहन करनी होती है।

अभ्यास प्रश्न

5. शिक्षक के कार्यो के चार सोपान क्या है ?
6. शिक्षण-अधिगम व्यवस्था का अंतिम सोपान है _____ ।
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखें -
   a. नियोजन सम्बन्धी कार्य
   b. संगठन सम्बन्धी कार्य
   c. शिक्षक साधन उपलब्धकर्ता के रूप में
   d. शिक्षक परामर्शदाता के रूप में

4.5 शिक्षक के वृत्तिक या व्यवसाय उन्नयन की आवश्यकताएं एवं सुअवसर (Need and Opportunities for Professional Growth of Teachers)

शिक्षको के कार्यो, उत्तरदायित्वों तथा अधिकारों का विश्लेषण करने से विदित होता है कि एक शिक्षक में कुछ विशेष गुण होने चाहिए। शिक्षक में कुछ आंतरिक गुण पाए जाते हैं तथा कुछ विकसित किये जा सकते हैं। आंतरिक गुण जैसे दृढ़ निश्चय वाला, नेतृत्त्व के गुण, संसाधनों को जुटा लेना, प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा दूसरों को प्रोत्साहित करने की प्रवृति, विशुद्ध चरित्र वाला आदि। अन्य गुणों का विकास अनुभव तथा प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जिसके लिये उसे प्रगतिशील होना चहिए व अपनी व्यवसायिक उन्नयन करते रहना चाहिए। शिक्षक के वृत्तिक उन्नयन की आवश्यकताएं एवं सुअवसर को समझने के लिए हमें उनके व्यग्तिगत व व्यवसायिक गुणों का वर्णन करना आवश्यक है।

4.5.1 शिक्षक के व्यक्तिगत व व्यवसायिक गुण

एक अच्छे शिक्षक में निम्ललिखित विशेषतायें होने चाहिए –

i. **व्यक्तिगत गुण -** एक अच्छे शिक्षक का व्यक्तिव प्रभावशाली होना चाहिए। उसका शारीरिक गठन उत्तम होना चाहिए। वह उत्तम चरित्र तथा उच्च आदर्श वाला हो। इसके अतिरिक्त उसमें कठिन परिश्रम करने की प्रवृति, अच्छी आदते, छात्रों के प्रति संवेदनशीलता तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होना चाहिए और सबसे अच्छे मानवीय सम्बन्ध बनाना चाहिए।

ii. **बौद्धिक तथा भावनात्मक गुण**

iii. एक अच्छे शिक्षक में उच्च बुद्धि-लब्धि होना तथा स्वोपकर्म की प्रवृति होना चाहिए। उसमे अभिव्यक्ति करने की योग्यता एवं क्षमताएँ , अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग होना, अधिक परिश्रमी, अन्य व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने की प्रवृति, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना, भावात्मक संतुलन, चिंतामुक्त, आशावादी, सकारात्मक दृष्टिकोण रखना, सामाजिक समस्याओं का बोध होना व व्यक्तिगत भिन्नताओं के प्रति जागरूक होना चाहिए।

iv. व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आचार संहिता के गुण - एक अच्छे शिक्षक में व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आचार संहिता के गुण होने चाहिए। इसके लिए जो गुण सम्मलित किए जाते है वह है – कुशलता, विश्वसनीय, निष्पक्ष व्यवहार और खुले मस्तिष्क का होना। इसके अतिरिक्त उसमें सहयोग की भावना, आदरपूर्ण व्यवहार, छात्र हितैषी, सामाजिकता के गुण, सुझाव देने की प्रवृति, स्वाभिमानी, अपनी त्रुटियों को स्वीकारना, दृढ़ निश्चय की प्रवृति, सृजनात्मकता और आत्मविश्वासी होना चाहिए।

v. *बाल मनोविज्ञान एवं अधिगम सिद्धान्तों का ज्ञान - आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बाल केन्द्रित शिक्षा को महत्व दिया जाता है। इस दृष्टि से अध्यापक के लिए आवश्यक है कि उसे बाल मनोविज्ञान का ज्ञान हो जिससे वह बालक की रूचि स्तर योग्यता व क्षमता के आधार पर शिक्षा प्रदान करे। अध्यापक को व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ज्ञान होना आवश्यक है जिससे छात्र को*

उचित व्यावसायिक व शैक्षिक निर्देशन दिया जा सके। इसके अतिरिक्त अध्यापक को सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन सिद्धान्तों के प्रयोग से वह शिक्षण को प्रभावशाली व रुचिकर बना सकता है।

vi. **विषयवस्तु का ज्ञान -** प्रभावशाली शिक्षक बनने के लिए शिक्षक को अपने विषय का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उन्हें अपने विषयवस्तु के ज्ञान प्राप्त करने के लिए निरंतर अध्ययन करते रहना चाहिए। अच्छी पुस्तकें, समाचार पत्र, शब्दकोश, विश्वकोश, पत्रिकाओं, अदि पढ़ते रहना चाहिए। सेवारत शिक्षकों को समय-समय में अपना उन्नयन के लिए नियमित प्रशिक्षण लेते रहना चाहिए। सेमिनार, कार्यशाला तथा परिचर्चाओं में भाग लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त रिफ्रेशर कोर्सेज़ और ओरिएंटेशन प्रोग्राम में भी भाग लेना चाहिए। इस प्रकार एक शिक्षक को अपने समस्त जीवन में विधार्थी बनना चाहिए जिससे कि वह नयी नीतियों से परिचित होता रहें।

vii. **शिक्षण कौशल का ज्ञान -** शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक को अनेक शिक्षण कौशलों का प्रयोग करना चाहिए। पासी एवं शाह ने कक्षा शिक्षण के निम्नलिखित कौशल बतलाये हैं –

- उद्दीपक में परिवर्तन (Stimulus variation)
- सैट इंडक्शन (Set Induction)
- समापन (Closure)
- मूक भाव तथा अशाब्दिक संकेत (Silence and Non-Verbal Cues)
- छात्र सहयोग का पुर्नबलन (Reinforcement of Student Participation)
- प्रश्न पूछने में धाराप्रवाहिता (Fluency in asking Questions)
- खोजपूर्ण प्रश्न (Probing Questions)
- उच्च स्तरीय प्रश्न (High Order Questions)
- बहकाने वाला प्रश्न (Divergent Questions)
- उदाहरणों का प्रयोग (Use of Examples)
- व्याख्यान (Lecturing)
- आयोजित आवृति (Planned Repetition)
- सम्प्रेषण की पूर्णता (Completeness of Communication)
- श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग (Use of Audio-Visual Aids)
- कक्षा कक्ष में शिक्षक की सजीवता (Teacher Liveliness in the Classroom)
- सामूहिक वाद विवाद को उन्नत बनाना (Promoting Group Discussion)

- शिक्षक व्याखया (Teacher Explanation)

उपयुक्त कौशलों द्वारा शिक्षण प्रभावशाली बनाई जाती है व शिक्षण में कुशलता आती है।

4.5.2 शिक्षकों का व्यवसायिक प्रशिक्षण उन्नयन

व्यवसायिक उन्नयन के संदर्भ में टैगोर ने कहा, " एक अध्यापक तब तक वास्तविक अर्थो में शिक्षा नहीं दे सकता जब तक वह स्वयं न सीखता रहे। जो दीपक अपनी लौ को प्रज्वलित नहीं रख सकता वह दूसरे दीपक को प्रकाशित कैसे कर सकता है ?" इसके लिए शिक्षक को निरंतर अपने विषय में उन्नयन (upgrade) करते रहना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अध्यापक-शिक्षा की गुणवत्ता में समय-समय पर सुधार लाना चाहिए। अध्यापक-शिक्षा की गुणवक्ता व शिक्षकों के व्यवसायिक उन्न्यन के लिए निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए -

1. शिक्षक को अपने विषय के नवीनतम ज्ञान से परिचित करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न अवसर प्रदान किये जाते है। इसके अंतर्गत सेमीनार, कार्यशाला एवं सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है जिनमें वह भाग ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त रिफ्रेशर कोर्सेज़, ओरिएंटेशन प्रोग्राम तथा ग्रीष्म-कालीन विद्यालयों की व्यवस्था की जाती है।
2. हाल ही में सेवारत शिक्षकों के लिए नियमित प्रशिक्षण के लिए प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों-तृतीय ग्रेड के लिए डाइटस, द्वितीय ग्रेड के शिक्षकों के लिए अध्यापक शिक्षा कॉलेज (CTES) तथा वरिष्ठ/जूनियर प्राध्यापकों के लिए उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों (IASES)की स्थापना की गई है।
3. शिक्षको को परिचर्चा में भाग लेने का अवसर प्रदान करना चाहिए।
4. शिक्षकों को अपने विषय से सम्बंधित नवीनतम पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। अच्छी पत्रिकाओं को पढ़ना चाहिए, उनमें लेख लिखना चाहिए।
5. नवीन पाठ्य-विधियों, शिक्षण संव्यूहों व शिक्षण प्रतिमानों से परिचय के साथ-साथ आवश्यकतानुसार उनके प्रयोग का अभ्यास कराया जाना चाहिए।
6. शैक्षिक तकनीकों, मल्टीमीडिया, हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर, श्रृव्य दृश्य सामग्री सहित शिक्षण को प्रभावशाली बनाने में उपयोग का प्रशिक्षण लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे नवीनतम शिक्षण विधियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।
7. शिक्षक प्रशिक्षण को प्रभावी बनाना तथा नवीन विकसित तकनीकों के अभ्यास शिक्षण में प्रयोग, इंटर्नशिप (Pre-service training) को व्यापक बनाने के लिए प्रशिक्षण अवधि को बढ़ाना चाहिए। NCTE ने हाल ही में बी.एड की प्रशिक्षण की अवधि एक साल से बढाकर दो साल का कर दिया है।
8. शिक्षक विभिन्न शैक्षिक संगठनों जैसे All India Association of Teacher Education, Centre for Teacher Education के क्रिया-कलापों में भाग लेकर अपनी व्यावसायिक क्षमता में अभिवृद्धि कर सकता है।

अतः कोठारी कमीशन द्वारा सही कहा गया है –

"शिक्षा के गुण तथा राष्ट्रीय विकास में शिक्षा की देन को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों में अध्यापकों की योग्यता, क्षमता, चरित्र की शुद्धता निःसंदेह रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है।"

अभ्यास प्रश्न

8. चार शिक्षण कौशलो के नाम लिखिए।
9. शिक्षक के वृत्तिक गुण कौन-कौन से है ?
10. " एक अध्यापक तब तक वास्तविक अर्थो में शिक्षा नहीं दे सकता जब तक वह स्वयं न सीखता रहे। जो दीपक अपनी लौ को प्रज्वलित नहीं रख सकता वह दूसरे दीपक को प्रकाशित कैसे कर सकता है ?" यह कथन किसने कहा-
    a. औरोबिंदो घोष
    b. महात्मा गाँधी
    c. रविन्द्रनाथ टैगोर
    d. स्वामी विवेकानंद
11. शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक को अनेक शिक्षण कौशलों का प्रयोग करना चाहिए। (सत्य /असत्य)

4.6 संस्थागत व्यवस्था में शिक्षकों के बहु-उत्तरदायित्व Multiple Responsibilities of a Teacher in an Institutionalized Setting

संसथान में शिक्षण के अतिरिक्त भी शिक्षक के कई प्रकार की उत्तरदायित्व होते है जो उनके भूमिका की वर्णन करते है। कुछ प्रमुख उत्तरदायितव निम्ललिखित है -

i. **शिक्षण कार्य के व्यवस्था व संचालन -** हर शिक्षक का मुख्य कार्य अध्यापन है। शिक्षण कार्यों का आयोजन करना और उसे समुचित रूप से संचालन करना शिक्षक का उद्देश होना चाहिए। प्राचार्य तथा कोऑर्डिनेटर को शिक्षक की अनुपस्थिति में अन्य शिक्षक को कार्य सोंपाना चाहिए जिससे शैक्षिण का वातावरण बने रहे। इसके लिए समय तालिका का निर्माण करना चाहिए व उसे समय-समय पर जाँचते रहना चाहिए। शिक्षक को छात्रों की परीक्षा करना, परीक्षा फल तैयार करना तथा उनका आलेख तैयार करना चाहिए। उन्हें कक्षा कार्य तथा गृह कार्य का मूल्यांकन भी निरंतर करना चाहिए और यदि छात्र किसी विषय में कमज़ोर हो तो उसकी सहायता करनी चाहिए।

ii. *प्रयोगशाला व पुस्तकालय का ज्ञान व रख रखाव - प्रयोगशाला विधालय का एक महत्वपूर्ण साधन है। विधालय में विभिन्न विषयों जैसे विज्ञान, गृहविज्ञान, समाज शास्त्र, भूगोल, लैंग्वेज लेबोरेटरी आदि प्रयोगशालाएँ होती है। प्रयोगशाला की व्यवस्था के साथ विभिन्न यंत्रो व उपकरणों का प्रयोग करने एवं उनकी उचित देखभाल करने की योग्यता शिक्षक में होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे प्रयोगशाला की सामाग्री का ज्ञान होना चाहिए। उसको मैनुअल व प्रयोगशाला निर्देशिका का उचित उपयोग करना चाहिए। शिक्षकों को विद्यालय में पुस्तकालय की व्यवस्था, विभिन्न क्लबों का संगठन तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करना चाहिए जिससे छात्रों की सृजनात्मकता व क्षमताओं का विकास हो सके इसके अतिरिक्त उसे छात्रों को पुस्तकालय का उपयोग करने के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए।*

iii. **अभिभावकों से सम्बन्ध -** छात्र की समस्या या कठिनाई उत्पन्न होने पर अभिभावक शिक्षक से संपर्क करता है। शिक्षक को अभिभावक के प्रति सहानुभूति प्रकट करना चाहिए व उनके समस्या का समाधान करना चाहिए। यदि कोई छात्र अनुशासनहीनता कर रहा हो तो उसे उसके माता-पिता से मिलकर उसका कारण ज्ञात करना चाहिए व उसका निवारण करना चाहिए। इस प्रकार शिक्षक तथा अभिभावक के सम्बन्ध छात्रों के हित में होना चाहिए।

iv. **सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप में शिक्षक की भूमिका -** आज के युग में अध्ययन के साथ-साथ सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप भी पाठ्यक्रम के ही अंगभूत है। इसके अतंर्गत सांस्कृतिक क्रियाएँ, साहित्यिक क्रियाएँ, शारीरिक क्रियाएँ सम्बंधित कार्यक्रम आते है। इन क्रियाएँ के अंतगर्त नाट्य, लोगगीत, वाद विवाद, संवाद, संगीत, नृत्य, झाँकियाँ, क्रीड़ाये आदि आती है। इनके द्वारा बालकों की विभिन्न मानसिक योग्यताएँ जैसे चिंतन, स्मरण, तर्क, विश्लेषण, निर्णय आदि विकसित होते है। इसके अतिरिक्त खेल कूद व व्यायाम से शारीर हष्ट-पुष्ट बनते है। ये क्रियाएँ बालक के हीन भावना की प्रवृति को दूर करता है तथा नेतृत्व के गुण विकसित करता है। इन कार्यक्रम की सफलता या असफलता शिक्षक की उत्साह पर निर्भर करता है क्योंकि छात्र शिक्षक के सहायता व परामर्श पाकर प्रेरणा लेता है व अपने गुणों का विकास करता है। शिक्षक को चाहिए की वे अपने छात्रों को इन कार्यक्रमों में प्रतिभागी बनाये जिससे उनके सम्पूर्ण विकास हो।

v. **वृर्तिक प्रशिक्षण-** शिक्षकों को निरंतर वृर्तिक प्रशिक्षण लेनी चाहिए , उन्हें अपने व्यवसाय उनयन्न के लिए किताबे, पत्रिका व अखबार पढना चाहिए। परिचर्चा व लेख लिखना चाहिए व शिक्षण तकनिकी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इसके लिए प्राचार्य तथा प्रशासन को सेमिनार व कार्यशालाओं का आयोजन करना चाहिए जिससे शिक्षको को वृर्तिक प्रशिक्षण तथा ज्ञान प्राप्त हो।

vi. **प्रशासनिक उत्तरदायितव -** शिक्षकों को अभिलेखों का रख रखाव, बजट बनाना, खरीदारी व स्टोर कीपिंग आदि कार्य का ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक शिक्षक को रिकोर्ड रखने के लिए एक डायरी रखनी चाहिए जिनमें निम्न बातों का उल्लेख हो –पाठ्यक्रम, कक्षा का समय-सारणी, सत्र

के दौरान कार्य योजना, छात्र के कार्य की टिप्पणी, प्रयोगशाला व क्लब का कार्यक्रम, सप्ताह के प्रतिदिन के कार्यक्रम, छात्रों की समस्याएँ, प्रगति पत्र तथा परीक्षा परिणाम अभिलेख। अंत में विधालय का संचालन सही ढंग से हो सके, इसके लिए प्रधानाचार्य को वित्तीय योजना का निर्माण, आय-व्यय का बजट, कर्मचारियों के वेतन का विवरण रखना सभी कार्यों को सरलतापूर्वक करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

12. निम्नलिखित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखें -
    (अ) वृर्तिक प्रशिक्षण
    (ब) प्रशासनिक उत्तरदायित

4.7 शिक्षकों के विश्वास तथा प्रथाएँ, व्यावसायिक के रूप में Teacher's Beliefs and Practices as Professional

प्रत्येक अच्छे शिक्षक को अपनी व्यावसायिक भूमिका वहन करने हेतु कुछ निर्धारित मानकों को अपनाना होता है जिसे वह जिम्मेदारी से सदा निभाते रहे। इन मनकों को NCTE ने समयनुसार संसोधन किया है जिसका हम वर्णन करेंगे।

4.7.1 शिक्षण के व्यावसायिक मानक Norms in Teaching Profession

NCTE (2009) ने शिक्षकों शिक्षण के लिए व्यवसाहिक आचार संहिता का एक ड्राफ्ट 2010 में प्रस्तुत किया जिसमें शिक्षण व्यवसाय के मानकों का विस्तार से विवरण किया गया है। मानकों के अनुसार शिक्षक की जिम्मेदारियों को चार वर्गों में बाँटा जाया है जो इस प्रकार है –

i. शिक्षक द्वारा शपथ
ii. छात्रों के प्रति कृतज्ञता
iii. माता-पिता, समुदाय और समाज के प्रति कृतज्ञता
iv. व्यवसाय और सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता

शिक्षक द्वारा शपथ

मैं सहमत हूँ कि -

i. प्रत्येक बालक को अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार है।

ii. प्रत्येक बालक में विलक्षण प्रतिभा और कौशल है।
iii. शिक्षा, मानव व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करने वाली होनी चाहिए।
iv. हमारी राष्ट्रीय नीति- प्रजातंत्र, सामाजिक न्याय और समाजवाद के निर्देशक सिद्धांतो में विश्वास विकसित करने की आवश्यकता है।
v. भारत की मिली जुली संस्कृति और राष्ट्रीय पहचान की सूझ को शिक्षा के माध्यम से विकसित करने की आवश्यकता है।
vi. सामाजिक जिम्मेदारियों का हिस्सा होने के नाते शिक्षक को लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को समझना चाहिए।
vii. अध्यापकों के आत्म-उत्साहवर्धन की आवश्यकता है।
viii. शिक्षण को ऐसे व्यवसाय के रूप में संगठित करने की आवश्यकता है जिसमें कुशल ज्ञान, विशिष्ट कौशलों और समर्पण को प्राथमिकता दी जाये।
ix. समुदाय उन अध्यापको का 'जो पूर्ण रूप से शिक्षक व्यवसायिकता पर निर्भर है' सम्मान और सहयोग करता है।
x. शिक्षण समुदाय के सदस्यों में आत्म निर्देशन और आत्मनुशाशन की आवश्यकता है।

छात्रों के प्रति कृतज्ञता

i. छात्रों के साथ सहानुभूति तथा प्रेम का व्यवहार करना।
ii. छात्रों के शारीरिक , सामाजिक , बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक विकास को प्रोत्साहित करना।
iii. छात्रों को अपनी प्रतिभा और क्षमता को पहचानने हेतु प्रेरित करना।
iv. छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप अपने शिक्षण को अनुकूलित करना।
v. छात्रों को भय, चिंता तथा मानसिक, शारीरिक और भावनात्मक उत्पीडन से दूर रखना।
vi. छात्रों से सम्बंधित सूचनाओं को गोपनीय रखना।
vii. छात्रों के जाति, धर्म, लिंग आदि को सम्मान देना।
viii. भारत के संविधान में उल्लिखित मूल्यों के संदर्भ में पाठ्यक्रम का विकास करना।

माता-पिता, समुदाय और समाज के प्रति कृतज्ञता

i. छात्रों में भारतीय मिश्रित संस्कृति के सम्मान को विकसित करने का प्रयास करना।
ii. किसी भी ऐसी टिप्पणी से बचना जिससे छात्र तथा उसके अभिभावक के सम्मान को ठेस पहुँचती हो।
iii. किसी भी क्रिया में भाग लेने से बचना जिससे किसी समुदाय धर्म में गलत सन्देश जाये।

व्यवसाय और सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता

i. अपने व्यावासिक विकास के लिए निरंतर प्रयास करते रहना।
ii. ऐसी संस्कृति का सृजन करना जो सहपाठियों और संस्था-स्वामियों में उद्देश्यपरक सहयोग व वार्तालाप को प्रोत्साहित करे।
iii. शिक्षण व्यवसाय में गर्व महसूस करना और व्यवसाय के अन्य सदस्यों के साथ सम्मान व सहानुभूति का व्यवहार करना।
iv. निजि ट्यूशन में स्वयं को व्यस्त रखने से बचना।
v. सहयोगियों अथवा उच्च अधिकारियो के विरुद्ध अनावश्यक आरोप लगाने से बचना।
vi. सहयोगियों द्वारा दिए गये व्यावसाहिक सुझाव को सम्मन देना।
vii. सहयोगियों से सम्बंधित सूचनाओं को गोपनीय रखना।
viii. पक्षपात एवं विवादों से बचना।

4.7.2 शिक्षण में जवाबदेही Accountability in Teaching

विधालय में शिक्षक की नियुक्ति के साथ ही कुछ जवाबदेही की जिम्मेदारी भी बन जाती है। परन्तु जवाबदेही की समस्या बड़ी जटिल तथा संवेदनशील है। साथ ही बहुत महत्वपूर्ण भी। जवाबदेही की परिभाषा डेविस के अनुसार इस प्रकार है, "जवाबदेही किसी अधिकारी द्वारा सौंपे गए कार्यों को गुणात्मक एवं सर्वोतम रूप से अधिकारी के निर्देशन के अनुरूप करने के बंधन एवं कार्य है।"

According to Davis "Accountability is an obligation and responsibility of an individual to perform duties assigned to the best of his ability and capacity according to the direction of his executive."

जवाबदेही के कई प्रकार है जैसे – नैतिक, कानूनी, प्रशासनिक, वित्तीय और अंतर-आत्मिक जवाबदेही। शिक्षको की जवाबदेही निम्न तत्वों के सम्बन्धों में की जानी चाहिए –

i. परीक्षा फल
ii. पाठ्यक्रम का विकास एवं संचालन
iii. पाठ्यान्तर क्रियाओं का आयोजन
iv. छात्रों के कार्य का मूल्यांकन
v. छात्रों का शैक्षिक तथा व्यवसाहिक मार्गदर्शन
vi. छात्रों को चारित्रिक विकास
vii. छात्र तथा अन्य अभिलेखों का रख रखाव
viii. प्रभावशाली शिक्षक अधिगम
ix. कक्षा प्रबंध
x. व्यवसाहिक विकास

xi. विभाजीय नियमों का पालन
xii. प्रभावी सामुदायिक सम्बन्ध
xiii. विधालय में मानवीय सम्बन्ध स्थापिक करना
xiv. व्यक्तिगत अन्तरों का निराकरण तथा विकास
xv. विभागों के नियमों का पालन
xvi. सम्पूर्ण विधालयी व्यवस्था में भागीदारी

शिक्षकों की जवाबदेही, प्राचार्य द्वारा दी गई वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट से की जा सकती है। इसे चार भागो में विभाजित किया गया है जो निम्न प्रकार है -

वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट

वर्ष .....

भाग – 1

सामान्य विवरण

विद्यालय का नाम

i. शिक्षक का नाम.....
ii. पिता / पति का नाम.....
iii. जन्म तिथि .....
iv. योग्यताएँ .....
v. पद.....
vi. वेतनमान .....
vii. प्रथम नियुक्ति तिथि .....
viii. पदोन्नति की तिथि .....
ix. निवास स्थान का पता .....
x. स्कूल तथा घर में दूरी .....
xi. वर्तमान स्कूल में नियुक्ति की तिथि .....
xii. इस स्कूल में आने के पूर्व कार्य करने वाले स्कूल का नाम व पता .....

भाग - 2

परिक्षाफल

विषय	कक्षा पढाई	समय जिस अवधि में कक्षा को पढाया	छात्रों की संख्या	उत्तिर्ण छात्रों की संख्या	परिणाम प्रतिशत	विशिष्ट उपलब्धियों की संख्या

बोर्ड परिक्षा की तुलना

कक्षाओं में पढाये जाने वाले विषय		पिछले वर्ष का परिणाम		इस वर्ष का परिणाम		अन्तर
x	xii	x	xii	x	xii	
1	2	3	4	5	6	7

भाग – 3

स्वयं मूल्यांकन

1. पाठ्यक्रमीय क्रियाएँ

1 कक्षा शिक्षण

i. वर्ष के प्रारम्भ में क्या सलैबस तैयार किया गया ?

ii. सलैबस पूरा किया गया

iii. सलैबस का जो अंश पूरा नहीं किया गया और उसके कारण

iv. पाठ योजना

- क्या 5% आदर्श पाठ योजना ड़ायरी में दर्शायी गयी ?
- क्या ऊपर के अनुसार कक्षा में कार्य किया गया?
- क्या श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग किया गया ?
- क्या पहले से श्रव्य-दृश्य सामग्री तैयार की गया ?

v. गृह कार्य

- क्या कक्षा कार्य तथा गृह कार्य के लिए अलग अलग अभ्यास पुस्तक राखी जाती है ?
- औसत प्रति सप्ताह कितना गृह कार्य दिया जाता है
- कॉपिया जाँचने की क्या पद्दति है ?
- अनुवर्ती कार्य किया गया या नहीं ?

vi. कक्षा दत्त कार्य

- जाँच तथा अनुवर्ती कार्य

vii. प्रतिभाशाली तथा कमजोर छात्र की पहचान

- दोनों पक्षों में निष्पादन सम्बन्धी पग उठाये गए

viii. छात्रों मे पलायनशीलता रोकने सम्बन्धी पग

2. मूल्यांकन
   i. निरीक्षण
   ii. कक्षा कार्य तथा गृह कार्य का मूल्यांकन
   iii. परिक्षा उत्तर-पुस्तिका का मूल्यांकन
3. अभिलेखों का रख रखाव
   i. कक्षा उपस्थिति रजिस्टर
   ii. अध्यपक डायरी
   iii. परिक्षा परिणाम अभिलेख
   iv. अन्य अभिलेख
4. शैक्षिक निर्देशन
   - छात्रों व अभिवाकों को निर्देशन
5. वृत्तिक विकास
   गोष्ठी तथा कार्यशाला में हिस्सेदारी
6. सम्बन्धनात्मक विवरण
   - छात्र
   - प्रधानचर्या
   - साथी अध्यापक
   - अभिभावक
   - पाठ्यान्तर क्रियाएँ
   - पाठ्यान्तर क्रियाओं के नाम

- खेल/ स्कूल उत्सव
- उपलब्धियाँ
- समुदाय सेवाएँ
- समुदाय के लिए कार्य का ब्यौरा

तिथि शिक्षक के हस्ताक्षर

भाग – 4

विधालय मुख्ययाध्यापक द्वारा मूल्यांकन

1. भाग दो पर टिप्पणी – क्या आप इससे सहमत है ? यदि नहीं तो क्यों ?
2. समयनिष्ठा
   - स्कूल तथा कक्षा में
3. ईमानदारी तथा समग्रता
4. तत्परता तथा पहल शक्ति
5. वर्ष में प्राइवेट ट्यूशन किये या नहीं
6. वर्ष में अति उत्तम कार्य किया या नहीं
7. मौखिक रूप में अथवा लिखित रूप में शिक्षक की भर्त्सना की या नहीं
8. अध्यापक के बारे में अन्य विवरण
9. रेटिंग: उत्कृष्ट/ बहुत उत्तम / उत्तम / साधारण / असंतोषजनक

तिथि प्रधानाचार्य के हस्ताक्षर

अभ्यास प्रश्न

13. जवाबदेही का अर्थ बताएं।
14. जवाबदेही कितने प्रकार की होती है ? वर्णन कीजिए।
15. NCTE 2010 मानकों के अनुसार शिक्षक की जिम्मेदारियों के चार वर्ग कौन कौन से है?
16. शिक्षकों की जवाबदेही, प्राचार्य द्वारा दी गई वार्षिक गोपिनीय रिपोर्ट से नहीं की जा सकती है। (सत्य/ असत्य)
17. जवाबदेही से तात्पर्य उत्तरदायित्यों का निर्वहन करना है। (सत्य/ असत्य)

18. NCTE (2009) ने शिक्षकों शिक्षण के लिए व्यवसाहिक आचार संहिता का एक ड्राफ्ट_____में प्रस्तुत किया।

4.8 सारांश

समाज में शिक्षक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराओं और तकनीकी कौशल सौंपने की प्रक्रिया का केंद्र बिंदु है। वह केवल बालकों का ही मार्गदर्शन नहीं करता, बल्कि राष्ट्र के भाग्य को भी दिशा प्रदान करता है। शिक्षक को अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा व प्रतिबद्धता होना चाहिए। उसे अपने विद्यार्थीयों के प्रति सकारात्मक मनोवृति एवं दृष्टीकोण रखना चाहिए। चूँकि वह अपने विद्यार्थीयों की आवयश्कताओं, लक्ष्यों, कमजोरियों तथा क्षमताओं को समझता है, वह उन्हें मार्गदर्शन देता है। इस प्रकार यह देखा जाता है कि शिक्षण कार्य कोई सरल कार्य नहीं। यदपि यह कहा जाता है कि शिक्षक में जन्मजात गुण होते हैं, परन्तु तकनीकी के इस युग में प्रशिक्षण द्वारा एक कुशल शिक्षक बनाया जा सकता है। अतः शिक्षक को समाज के प्रति अपने विशिष्ट उत्तरदायित्व को समझना चाहिए। इस इकाई में हमने शिक्षण की परिभाषाएँ, उसकी विशेषताएँ, शिक्षक के कार्यों, गुणों, उत्तरदायितयों, व्यावसायिक उन्यन्न तथा जवाबदेही की चर्चा की।

4.9 शब्दावली

1. **जवाबदेही (Accountibility) -** किसी अधिकारी द्वारा सौंपे गए कार्यों को गुणात्मक एवं सर्वोतम रूप से अधिकारी के निर्देशन के अनुरूप करने के बंधन एवं कार्य है को जवाबदेही कहते है।
2. **एकतंत्र शिक्षण (Autocratic Teaching) -** इसमें शिक्षक का स्थान प्रधान माना जाता है और छात्र गौण होता है।
3. **नियन्त्रण (Controlling) -** इसमें शिक्षक यह देखता है की उद्देश्यों की प्राप्ति हुई की नहीं। इसके लिए वह शिक्षण प्रणाली का मूल्यांकन करता है, अधिगम प्रणाली का निरीक्षण करता है तथा शिक्षण अधिगम प्रणाली में सुधार लता है।
4. **प्रजातंत्रात्मक शिक्षण (Democratic Teaching) -** इसमें शिक्षक एक पथ प्रदर्शक होता है और छात्र अधिक क्रियाशील रहता है।
5. **मुक्तात्मक शिक्षण (Laissez-faire Teaching) -** यह उन परिस्थितियों की व्यवस्था एवं संचालन है जिसमें अंतराल तथा बाधाएँ होती है जिन्हें व्यक्ति दूर करने के प्रयासों के फलस्वरूप अधिगम करता है। इसमें छात्र अधिक सक्रिय रहता है।
6. **अग्रसरण (Leading) -** अग्रसरण या मार्गदर्शन शिक्षक का वह कार्य है जिसमें वह अपने विद्यार्थियों को प्रेरित, प्रोत्साहित तथा उत्तेजित करता है, जिससे सीखने के उद्देश्यों को सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सके।

7. **व्यवस्था (Organisation) -** व्यवस्था शिक्षक का वह कार्य है जिसमें वह सीखने के साधनों को व्यवस्थित करता है जिससे सीखने के उद्देश्यों का बहुत प्रभावशाली, कुशलतापूर्वक तथा मितव्ययी ढंग से प्राप्त होना संभव हो।
8. **व्यवसाय (Profession) -** अंग्रेज़ी शब्दकोश में व्यवसाय का अर्थ है किसी कार्यकौशल विशेष पर आधारित व्यवसाय का होना। इसे अपनाकर व्यक्ति अपना जीविकोपर्जन करता है। वह अपने अर्जित ज्ञान व प्रशिक्षण द्वारा आने ग्राहकों को सेवा प्रदान करता है जिसके एवज में वह निश्चित शुल्क लेता है।
9. **नियोजन (Planning) -** इसके अंतर्गत वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं जिन्हें शिक्षक सीखने के उद्देश्यों की स्थापना के लिए सम्पन्न करता है।
10. **शिक्षण (Teaching) -** संकुचित अर्थ में शिक्षण का तात्पर्य बालक को कक्षा में ज्ञान देना है। परन्तु शिक्षण केवल ज्ञान देना ही नहीं अपितु मनुष्य के जीवन में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इस दृष्टि से व्यापक शिक्षण में ओपचारिक तथा अनोपचारिक दोनों प्रकार के साधन निहित है।
11. **शिक्षण कौशल (Skills) -** शिक्षण कौशल उन परस्पर सम्बन्धित शिक्षण क्रियाओं का समूह हैं जो विधार्थी के अधिगम में सहायता देते हैं।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवसयों की संस्थानों द्वारा कुछ निम्नलिखित मानक निर्धारिती किये गए है जो इस प्रकार है-
   a. निर्धारित योग्यता धारण करने के पश्चात् ही सम्बंधित व्यवसास हेतु लिईसेंस देना।
   b. किसी ग्राहक का शोषण न करना।
2. (अ) इसकी अपनी आचार संहिता होती है।
   (ब) यह एक सामाजिक सेवा है।
   (स) इसमें बोद्धिक क्रियाएं सम्मलित है।
   (द) इसमें अध्ययन और प्रशिक्षण शामिल है।
3. शिक्षण तीन प्रकार की होती है – एकतंत्रात्मक, प्रजातंत्रात्मक और मुक्तात्मक शिक्षण।
4. ब्रुवेशर
5. शिक्षक के कार्यो को चार सोपानों में विभाजित किया जाता है-
   i. नियोजन सम्बन्धी कार्य
   ii. संगठन या व्यवस्था सम्बन्धी कार्य
   iii. मार्गदर्शन या अग्रसर सम्बन्धी कार्य तथा
   iv. नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य
6. नियन्त्रण

7. (अ) नियोजन के अंतर्गत वे सभी क्रीयाएँ सम्मलित होती हैं जिन्हें शिक्षक सीखने के उद्देश्यों की स्थापना के लिए सम्पन्न करता है जैसे –कार्य विश्लेषण, पूर्व योग्यताओ का बोध करना, ज्ञान, कौशल तथा अभिवृति का विशिष्टकरण करना, आवश्यकताओं को पहचानना, उद्देश्यों की व्याख्या करना तथा मूल्यांकन के लिए मानदंड परिक्षा का नियोजन करना।

(ब) संगठन सम्बन्धी कार्य के अन्तर्गत शिक्षक अधिगम स्त्रोतों की व्यवस्था करता है तथा शिक्षण को क्रियान्वित करता है जिनके मध्यम से वह अधिगम के स्रोतो को व्यवस्थित तथा संगठित करता है।

(स) शिक्षक साधन उपलब्धकर्ता के रूप में: शिक्षक सदा से ही छात्र का मित्र, सहयोगी व मार्ग दर्शक रहा है। उसे यह कुशलतापूर्वक छात्र के हितों, सीमाओं व लक्ष्य को ध्यान में रखकर उसे उपयुक्त सहायतार्थ साधन उपलब्ध करने मे सहायक होना है।

(द) शिक्षक परामर्शदाता के रूप में : छात्र को एक प्रगतिशील इकाई मानते हुए उसके प्रायसों को उपयुक्त दिशा प्रदान करना एक अच्छे परामर्शदाता के रूप में शिक्षक का कार्य सदा उत्तरदायित्वपूर्ण माना जाता रहा है। छात्र में निहित गुणों व योग्यताओं को व सीमाओं को आगे बढ़ाने हेतु शिक्षक द्वारा परामर्श दिया जाना शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण सोपान है।

8. छात्र सहयोग का पुर्नबलन, प्रश्न पूछने में धाराप्रवाहिता, खोजपूर्ण प्रश्न, उदाहरणों का प्रयोग

9. शिक्षक के वृत्तिक गुण निम्लिखित है –
   - (अ) अपने व्यवसाय का पूर्ण ज्ञान होना
   - (ब) शिक्षकों के प्रति सहानुभूति रखे
   - (स) शिक्षण अधिगम प्रक्रिया आधुनिकतम होना चाहिए
   - (द) प्रशासनिक, पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण का वृत्तिक ज्ञान होना

10. (स) रविन्द्रनाथ टैगोर

11. सत्य

12. (अ) शिक्षकों को निरंतर वृर्तिक प्रशिक्षण लेनी चाहिए। उन्हें अपने व्यवसाय उनयन्न के लिए किताबे, पत्रिका व अखबार पढना चाहिए। परिचर्चा व लेख लिखना चाहिए, शिक्षण तकनिकी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए तथा सेमिनार व कार्यशालाओं में भाग लेना चाहिए।

(ब)शिक्षकों को अभिलेखों का रख रखाव, बजट बनाना, खरीदारी व स्टोर कीपिंग आदि कार्य का ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक शिक्षक को रिकोर्ड रखने के लिए एक डायरी रखनी चाहिए जिनमें निम्न बातों का उल्लेख हो –पाठ्यक्रम, कक्षा का समय-सारणी, सत्र के दौरान कार्य योजना, छात्र के कार्य की टिप्पणी, प्रयोगशाला व क्लब का कार्यक्रम, सप्ताह के प्रतिदिन के कार्यक्रम, छात्रों की समस्याएँ, प्रगति पत्र तथा परीक्षा परिणाम अभिलेख।

13. जवाबदेही किसी अधिकारी द्वारा सौंपे गए कार्यों को गुणात्मक एवं सर्वोतम रूप से अधिकारी के निर्देशन के अनुरूप करने के बंधन एवं कार्य को कहते है।

14. जवाबदेही के कई प्रकार है जैसे – नैतिक, कानूनी, प्रशासनिक, वित्तीय और अंतर-आत्मिक जवाबदेही।
15. NCTE 2010 मानकों के अनुसार शिक्षक की जिम्मेदारियाँ चार वर्गों में बाँटी गई है जो इस प्रकार है –
    (अ) शिक्षक द्वारा शपथ
    (ब) छात्रों के प्रति कृतज्ञता
    (स) माता-पिता, समुदाय और समाज के प्रति कृतज्ञता
    (द) व्यवसाय और सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता
16. असत्य
17. सत्य
18. 2010

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, जे. सी. (2009). एसेंशियल्स ऑफ़ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी. इनोवेशन इन टीचिंग लर्निंग, विकास पब्लिशिंग हाउस, नॉएडा ।
2. ईगनू , शिक्षक एवं स्कूल, इकाई 2 & 4
3. क्रो, ल. द. एंड क्रो, ऐलिस (2008) इंट्रोडक्शन तू एजुकेशन, सुरजीत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. पचौरी, गिरीश (2012). शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबंधन, आर. लाल. बुक डिपोट, मेरठ।
5. पाण्डेय, शशि किरण (2011), विज्ञान शिक्षण, आर. लाल. बुक डिपोट, मेरठ।
6. सिन्हा, जे. सी. शैक्षिण अधिगम का मनोवैज्ञानिक आधार, श्रीकविता प्रकाशन, जयपुर।
7. सक्सेना, न. र. और ओबेरॉय, स. सी. (1996) टेक्नोलॉजी ऑफ़ टीचिंग, आर. लाल. बुक डिपोट, मेरठ।
8. शर्मा आर. ए. (2006) शिक्षा तकनिकी के मूल तत्व, निर्देशन एवं प्रबंधन, आर. लाल. बुक डिपोट, मेरठ।
9. शर्मा आर. ए. (2012) शिक्षा प्रशासन एवं प्रबंधन, आर. लाल. बुक डिपोट, मेरठ।
10. वर्मा, जे. पी. (2011) विद्यालय प्रबंधन, आर. लाल. बुक डिपोट, मेरठ।

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षण-अधिगम नियोजन से आप क्या समझते है? प्रभावी शिक्षण-अधिगम हेतु अपनी एक कार्य योजना प्रस्तुत कीजिए।
2. आचार संहिता का अर्थ बताओं तथा शिक्षण व्यवसाय के मानकों कि व्याख्या कीजिए।

3. शिक्षा में जवाबदेही का क्या अर्थ है ? शिक्षक की विधालय सम्बन्धी जवाबदेही का विवेचन कीजिए।
4. संस्थागत व्यवस्था में शिक्षकों के बहुउत्तरदायित्व क्या हैं ? व्याख्या कीजिए।
5. 'शिक्षकों की जवाबदेही उनकी उत्तरदायित व विद्यालय की गुणवत्ता की बखान करती है।'विस्तार से इसकी व्याख्या कीजिए तथा एक 'स्वयं मूल्यांकन रिपोर्ट' का उदाहरण दीजिए।